श्रीमद् अमरसूरि काव्यम्

रचयिता
राजस्थानकेसरी अध्यात्मयोगी उपाध्याय
श्री पुष्कर मुनिजी महाराज

सम्पादक
पं० रमाशंकर शास्त्री

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय पुष्प—१२८

श्रीमद् अमरसूरि काव्यम्

रचयिता
उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी महाराज

सम्पादक
पं० रमाशंकर शास्त्री

प्रस्तावना
देवेन्द्र मुनि शास्त्री

प्रथम प्रवेश
सन् १९८०, जनवरी
वि० स० २०३६ वीर निर्वाण स० २५०६

मूल्य
पन्द्रह रुपए

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
शास्त्री सर्कल, उदयपुर (राजस्थान) PIN—313001

मुद्रक
श्रीचन्द सुराना के लिए
श्री विष्णु प्रिंटिंग प्रेस, राजामण्डी, आगरा-२

प्रकाशकीय

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय साहित्य की विविध विधाओ मे नित नूतन ग्रन्थ प्रकाशित कर साहित्यिक क्षेत्र मे अपना कीर्तिमान स्थापित कर रहा है। साहित्य की हर विधा मे उसने उत्कृष्ट ग्रन्थ प्रकाशित किए हैं जिनकी विज्ञो ने मुक्तकण्ठ से प्रशसा की है और भावुक भक्तो ने उसे प्रेम से अपनाया है। इसके फलस्वरूप हमारे मन में अभिनव जागृति का संचार हुआ और हमने उत्साह के साथ एक के वाद एक ग्रन्थ प्रकाशित कर यह वताने का प्रयास किया कि लगन के साथ कोई भी कार्य किया जाय तो उसमे अवश्य ही सफलता प्राप्त होती है।

"श्रीमद् अमरसूरि काव्यम्" श्रद्धेय उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी की एक मौलिक कृति है जो विविध छन्दो में रचित है। यह काव्य सन् १६३८ मे प्रकाशित हुआ था और उसी समय प्रस्तुत काव्य की प्रतियाँ समाप्त हो गईं। इसे पुन. प्रकाशित करने की चिरकाल से इच्छा थी, पर गुरुदेवश्री चाहते थे कि इस काव्य को जो बहुत ही सक्षेप में है, इसलिए इसका पुनर्लेखन किया जाय। पर समयाभाव से इस कार्य में विलम्व होता गया। सन् १६७६ (रायचूर), १६७७ (वेंगलोर), १६७८ (मद्रास) वर्पावासो में पुन. उसका नवीन दृष्टि से लेखन हुआ और गुरुभक्त प० प्रवर रमाशकर जी शास्त्री ने ग्रन्थ का सपादन किया। इस प्रकार हमारी वर्षो की मगल कामना पूर्ण हुई।

ग्रन्थ का मुद्रण कलात्मक दृष्टि से सम्पन्न करने का श्रेय हमारे परम स्नेही श्रीचन्दजी सुराना को है। ग्रन्थ प्रेस मे जाने पर भी लम्बे समय तक विद्युत् सकट के कारण मुद्रित नही हो सका। ग्रन्थ का ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व है। जैन सस्कृति के ज्योतिर्धर आचार्य अमरसिंह जी महाराज की पावन-गाथा पर यह काव्य आधृत है। सस्कृत भाषा मे जैन मूर्धन्य मनीषियो ने विपुल साहित्य का सृजन किया है। उसी परम्परा मे प्रस्तुत काव्य भी है। श्रद्धेय सद्गुरुवर्य उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी महाराज सस्कृत भाषा के अधिकारी विद्वान् हैं। उनके द्वारा

लिखित प्रस्तुत काव्य विज्ञ समाज मे पूर्ण रूप से समादृत होगा—ऐसा हमें आत्मविश्वास है।

प्रस्तुत ग्रन्थ पर श्रद्धेय गुरुदेवश्री के सुशिष्य देवेन्द्र मुनि शास्त्री ने विस्तार से प्रस्तावना लिखकर ग्रन्थ की शोभाश्री मे अभिवृद्धि की है। इसलिए हम उनका आभार मानते हैं।

जिन दानी महानुभावो ने उदारतापूर्वक प्रकाशनार्थ अर्थ-सहयोग प्रदान किया जिसके फलस्वरूप ग्रन्थ के प्रकाशन मे सहूलियत रही, एतदर्थ उनके मधुर सहकार की भी हम भूरि-भूरि प्रशसा करते है, और सदा उनका स्नेहपूर्ण सहकार मिलता रहेगा ऐसी आशा है।

—मन्त्री

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय

उदयपुर



गीर्वाण गिरा के यशस्वी कवि और सफल समालोचक मङ्खक ने समालोचक के सम्बन्ध मे चिन्तन करते हुए लिखा है – किसी भी कवि के काव्य के मर्म को समझने की योग्यता समालोचक मे होती है। सफल साहित्यकार ही कवि के कमनीय सद्‌गुणो की सौरभ दिग्‌दिगन्त मे फैला सकता है। जैसे एक तैलविन्दु विना जल के विस्तार नही पाता वैसे ही समालोचक के अभाव मे कवि के काव्य का रहस्य जनता समझ नही पाती। समालोचक कवि के काव्य की कसौटी करता है। वह सहृदयी होता है। उसका मानस उदात्त और हृदय विराट् होता है।

आचार्य राजशेखर ने "काव्य मीमासा" मे, आचार्य रुय्यक ने "साहित्य मीमासा" मे, पण्डित विश्वनाथ ने "साहित्य दर्पण" मे काव्य के समस्त अगो पर चिन्तन-मनन किया है। काव्य एक कला है। उसमे उदात्त भावानुभूति और रसानुभूति होती है। वह वुद्धि और तर्कप्रधान नही, अपितु अनुभूतिप्रधान होता है। उसमे कवि के अन्त करण का अनन्त आनन्द अठखेलियाँ करता रहता है। एतदर्थ ही महाकवि भवभूति के हृत्तन्त्री के सुकुमार तार झनझनाये है कि मैं उस विमल वाणी को वन्दना करता हूँ जिसमे आत्मा की दिव्य और भव्य कला अमृत रूप मे विद्यमान है। कवीन्द्र रवीन्द्र ने भी कहा है—काव्य में कलाकार अपने को अभिव्यक्त करता है।

समवायाग, नायाधम्मकहा, राजप्रश्नीय, औपपातिक, जवूद्वीपप्रज्ञप्ति, कल्पसूत्र और उनकी वृत्तियों मे कला के सम्वन्ध मे गहराई से विश्लेषण किया गया है। पुरुषो के लिए वहत्तर कलाएँ और महिलाओ के लिए चौसठ कलाओ का विधान है। उन कलाओ मे 'काव्य कला' भी एक कला है। 'ललित विस्तर' ग्रन्थ मे काव्य करण विधि को कला मे परिगणित किया है। भर्तृहरि ने तो काव्य कला रहित व्यक्ति को पशु की सज्ञा प्रदान की है।[1] कलाओ मे काव्यकला श्रेष्ठ

---

१. साहित्य संगीत कला विहीन
साक्षात् पशु पुच्छविपाणहीन ॥

कला है। 'काव्यालकार' ग्रन्थ मे आचार्य भामह ने स्पष्ट रूप मे लिखा है—ऐसा कोई शब्द नही, ऐसा कोई वाक्य नही, ऐसी कोई विद्या नही और ऐसी कोई कला नही जो काव्य का अग होकर न आये।

काव्य क्या है ? इस प्रश्न पर अतीत काल से ही चिन्तन चलता रहा है। विभिन्न मनीषियो ने विभिन्न दृष्टियो से उत्तर देने का प्रयास किया है। किन्तु काव्य की सर्वसम्मत परिभाषा अभी तक निश्चित नही हो सकी। आचार्य भामह ने "काव्यालकार" मे शब्द और अर्थ को काव्य कहा है।[2] आचार्य दण्डी ने "काव्यादर्श" मे शब्दार्थ रूपी शरीर को अलकृत करने वाले अलकारो को सर्वाधिक महत्त्व देकर उसे काव्य की सज्ञा से अभिहित किया है।[3] आचार्य कुन्तक ने "वक्रोक्ति जीवितम्" मे साहित्य उसे माना है जिसमे शब्द और अर्थ का शोभाशाली सम्मिलन होता है जब कवि अपनी प्रकृष्ट, प्रतिभा से उपयुक्त स्थान पर उपयुक्त शब्द समाविष्ट करता है। जो कुछ भी लेखबद्ध हो जाय वह साहित्य नही है, अपितु साहित्य वह है जिसमे हृदय की निर्मल भावना का विस्फोट होता है। साहित्य का श्रेष्ठतम रूप काव्य है। क्योकि काव्य सुन्दर, सरस और मधुर होता है। उसमे व्याकरणशास्त्र की तरह नीरसता नही होती, दर्शन और तर्कशास्त्र की तरह गभीरता नही होती, और गणितशास्त्र की तरह जटिलता नही होती। काव्य मे लोकजीवन का मगल और अखण्ड आनन्द का पयोधि उछाले मारता है। विदग्धता और सौन्दर्यपूर्ण अभिव्यजना शैली काव्य का प्राण है।[4] आनन्दवर्द्धन के अनुसार—काव्य वह है जिसमे वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यग्यार्थ की प्रधानता हो।[5] वामन ने रीति को काव्य की आत्मा माना है।[6] आचार्य मम्मट ने दोषरहित गुणयुक्त अलकार से समलकृत शब्दार्थमयी रचना को काव्य की अभिधा दी है।[7]

---

२ शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।

३. तै शरीर च काव्यानामलकाराश्च दर्शिता।
शरीर तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली॥

—दण्डी, काव्यादर्श

४ वक्रोक्ति काव्यजीवितम्।

—कुन्तक, वक्रोक्ति जीवितम्

५ काव्यस्यात्मा ध्वनि।

—ध्वन्यालोक

६ रीतिरात्मा काव्यस्य।

—वामन, अलकार सूत्र

७. तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलकृती पुन क्वाऽपि।

—मम्मट, काव्यप्रकाश

विश्वनाथ ने रसात्मक वाक्य को काव्य कहा है।[8] पडित जगन्नाथ ने 'रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाले शब्दो को काव्य कहा है।[9] इसी तरह अग्निपुराणकार[10] तथा रुद्रट,[11] भोज,[12] जयदेव,[13] आचार्य हेमचन्द्र,[14] वाग्भट,[15] आदि ने भी काव्य की परिभाषाएँ निर्माण की है।

आचार्य राजशेखर ने लिखा है शास्त्र को समझने के लिए शब्द की अभिधा शक्ति पर्याप्त है, किन्तु काव्य को समझने के लिए केवल अभिधा ही पर्याप्त नही है, कही अभिधा, कही व्यजना और कही लक्षणा आवश्यक है। काव्य मे शब्द और अर्थ दोनो रहते हैं। वे दोनो एक दूसरे पर आधृत है । शब्द विना अर्थ के नही रह सकता और अर्थ की अभिव्यक्ति शब्द के बिना सभव नही है। शब्द और अर्थ दोनो का सहभाव ही काव्य नही हैं। काव्य मे रस, अलकार, रीति, गुण, दोप-शून्यता आवश्यक है। काव्य मे रसात्मकता होती है। सासारिक जितने भी आनन्द हैं, वे क्षणिक हैं। प्रथम क्षण मे उनकी जैसी अनुभूति होती है, वैसी अनुभूति वाद मे नही होती। पर काव्य के आनन्द को देश-काल की सकीर्ण सीमा आवद्ध नही कर सकती। उस आनन्द की तुलना पुत्रजन्म, धनागमन, पद-प्राप्ति, प्रतिष्ठा की उपलब्धि और प्रमदा की उपलब्धि से भी कही अधिक है।

---

८ वाक्य रसात्मक काव्यम्।

—विश्वनाथ, साहित्यदर्पण

९ रमणीयार्थप्रतिपादक शब्द काव्यम्।

—जगन्नाथ, रसगंगाधर

१०. सक्षेपाद्वाक्यमिष्टार्थ-व्यवच्छिन्ना पदावली ।
काव्य स्फुरदलकारं गुणवद्दोपवर्जितम् ॥

—अग्निपुराण

११. ननु शब्दार्थौ काव्यम्।

—रुद्रट, काव्यालंकार

१२ निर्दोष गुणवत् काव्यमलकारैरलकृतम्। रसान्वित।

—भोज, सरस्वती कण्ठाभरण

१३ निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूपिता ।
सालकाररसानेकवृत्तिर्वाक् काव्यनामभाक् ॥

—जयदेव, चन्द्रालोक

१४. हेमचन्द्र, काव्यानुशासन।

१५ वाग्भट, काव्यानुशासन।

आचार्य मम्मट और विश्वनाथ ने काव्य के मुख्य रूप से माधुर्य, ओज और प्रसाद ये तीन गुण माने है। भरत और वामन ने दस गुणो का उल्लेख किया है। पर वे सभी गुण इन तीन गुणो मे समाविष्ट हो जाते हैं। काव्य की आत्मा रस है। जिसके कारण रस मे वाधा उपस्थित होती हो वह दोप है। मम्मट ने पद-दोप, पदाश-दोप, वाक्य-दोष, अर्थ-दोप और रस-दोप ये पांच दोप के प्रकार वताये है। 'काव्य प्रकाश' के सप्तम उल्लास मे उन्होने उनका विस्तार से विवेचन भी किया है।

काव्य के प्राणतत्त्व के सम्वन्ध मे काव्य-मनीपियो ने अत्यन्त गभीरता से चिन्तन करते हुए रसवादी, अलकारवादी, रीतिवादी, ध्वनिवादी, वक्रोक्तिवादी और औचित्यवादी इन छह सम्प्रदायो का उल्लेख किया है। हम यहाँ पर सभी का विस्तार से विश्लेषण न कर सक्षेप मे यही कहना चाहेगे कि काव्य के विविध रूप, विविध अग, विविध विधा के सम्वन्ध मे हजारो वर्पो से उस पर चिन्तन किया जा रहा है।

भारतीय चिन्तको ने काव्य के मुख्य दो भाग किये है—प्रेक्ष्यकाव्य और श्रव्यकाव्य। जो काव्य रगमच पर अभिनय करने योग्य हो वह प्रेक्ष्यकाव्य है।[16] ऐसे काव्यो की पूर्ण आनन्द की उपलब्धि आँखो से देखने पर ही हो सकती है। श्रव्य-काव्य वह है जो कानो से सुना जाय।[17] मधुर स्वर से जो गाया जाता है और जिसे सुनकर आनन्द की अनुभूति होती है वह श्रव्यकाव्य है। प्राचीन काल मे लेखन की परम्परा कम थी। इसलिए स्मृति के सहारे ही काव्य को स्मरण रखा जाता था, इसलिए वह श्रव्यकाव्य कहलाता था। आज श्रव्यकाव्य को अधिकाश रूप मे पढा ही जाता है, पर उसे पाठ्यकाव्य न कहकर श्रव्यकाव्य ही कह जाता है। प्रेक्ष्यकाव्य भी पढे जाते हैं, किन्तु उसका वास्तविक आनन्द देखने मे आता है। आचार्य हेमचन्द्र ने प्रेक्ष्यकाव्य के[18] पाठ्य और गेय ये दो भेद किये है—पाठ्य मे नाटक, प्रकरण, नाटिका, समवकार, ईहामृग, व्यायोग, डिम, उत्सृष्टिकाग, प्रहसन,

---

१६ प्रेक्ष्यमभिनेयम्।

—काव्यानुशासन ८-१ की वृत्ति (आ० हेमचन्द्र)

१७ श्रव्यमनभिनेयम्।

—वही० ८-१

१८ प्रेक्ष्य पाठ्य गेय च।

—हेमचन्द्र, काव्यानुशासन ८-२

भाण, वीथी तथा सट्टक आदि हैं ।[19] और गेय मे डोम्बिका, प्रस्थान, शिगक, भाणिका, प्रेरण, रामाक्रीड, हल्लीसक, रासक, गोष्ठी, श्रीगदित और राग काव्य आदि हैं ।[20] यहाँ पर हम उन सभी के भेद और प्रभेदो पर चिन्तन न कर, श्रव्य-काव्य के तीन भेद हैं—गद्य, पद्य और मिश्र[21] उस पर विचार करते हुए मूल विषय पर प्रकाश डालेंगे ।

गद्य वह है जो आवश्यक काव्य गुणो से अलकृत हो । साथ ही उसमे छन्द योजना का अभाव होता है ।[22] गद्यकाव्य को कथा और आख्यायिका इन दो विभागो मे विभक्त कर सकते हैं । आचार्य हेमचन्द्र के मतानुसार आख्यायिका गद्य-मय रचना होती है । जिसमे धीरोदात्त नायक अपने जीवनवृत्त को अपने मुँह से अपने मित्र आदि को वताता है । उसमे रोमाचक तत्त्व कन्यापहरण, सग्राम आदि होते हैं । सस्कृत साहित्य के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "हर्ष चरित्र" को इसमे लिया जा सकता है ।[23]

कथा वह है जहाँ कवि स्वयं नायक के जीवनवृत्त का वर्णन गद्य मे करता है । जैसे दशकुमार चरित्र, पचतत्र, कादम्वरी आदि ।[24] कथा मे भी रोमाचक तत्त्व की प्रधानता रहती है ।

छन्दोवद्ध रचना पद्य है । छन्दोवद्ध होने से उसमे सगीत की सरसता रहती है जिससे सुनने मे वह वहुत मधुर लगती है । पद्य के भी दो विभाग हैं—प्रवन्ध-काव्य और मुक्तककाव्य ।[25] प्रवन्धकाव्य मे एक कथा रहती है और सभी पद्य एक दूसरे से सवधित होते हैं । उसमे वर्णन भी होता है, प्राक्कथन भी होता है,

---

१९. पाठ्य नाटकप्रकरणनाटिकासमवकारेहामृगडिमव्यायोगोत्सृष्टिकाकप्रहसन भाण-वीथी सट्टकादि ।

—वही० अध्याय ८ सूत्र ३

२० गेय डोम्बिकाभाणप्रस्थानशिगकभाणिकाप्रेरणरामाक्रीडहल्लीसकरासगोष्ठी श्रीगदितरागकाव्यादि ।

—वही० अध्याय ८, सूत्र-४

२१. तच्च गद्य-पद्य-मिश्रभेदैस्त्रिधा ।

—वाग्भट, काव्यानुशासन

२२. गद्यमपाद-पदसन्तानच्छन्दो रहितो वाक्यसदर्भ ।

—वाग्भट, काव्यानुशासन

२३ काव्यानुशासन ८-१० वृत्ति हेमचन्द्र ।

२४ वही० ८-८ वृत्ति ।

२५ वही० पृ० १७ ।

पारस्परिक सम्बन्ध होने के कारण प्रभाव का प्राधान्य रहता है। किन्तु मुक्तककाव्य स्वतन्त्र सत्ता लिये हुए होता है। उसके पद्य एक दूसरे से मिलते नही है। वे पूर्ण रूप से स्वतन्त्र होते है।

प्रवन्धकाव्य के भी महाकाव्य और खण्डकाव्य ये दो प्रकार है। महाकाव्य मे सर्वांगीण जीवन का चित्र होता है। वह सर्गवद्ध, विशाल, अलकारयुक्त श्लिष्ट भाषा का प्रयोग, राज दरबार, दूतप्रेषण सैन्यप्रयाण, युद्ध, जीवन के विविध रूपो व अवस्थाओ का चित्रण, महाकाव्य का नायक, कुलीन, वीर, विद्वान्, उसके उदात्त गुणो का वर्णन, होता है। उसमे समस्त रसो का परिपाक होता है और लोक स्वभाव की अभिव्यक्ति होती है। चार पुरुषार्थों को स्थान दिया जाता है। इस प्रकार भामह ने 'काव्यालकार'[26] मे, दण्डी ने 'काव्यादर्श' मे[27], रुद्रट ने 'काव्यालकार' मे[28] और वाग्भट,[29] आचार्य हेमचन्द्र,[30] आचार्य अमरचन्द्र,[31] विश्वनाथ[32] प्रभृति विद्वानो ने महाकाव्य के स्वरूप पर विभिन्न दृष्टियो से चिन्तन किया है।

भारतीय चिन्तको ने महाकाव्य को सर्गवद्ध होना आवश्यक माना है। आचार्य हेमचन्द्र और वाग्भट के अभिमतानुसार वह आश्वासकवद्ध भी हो सकता है। सर्ग न अधिक वडे होने चाहिए न अत्यन्त लघु ही। विश्वनाथ ने सर्गो की सख्या के सम्बन्ध मे चिन्तन किया है, पर अन्य आचार्यो ने नही। कथानक के सम्बन्ध मे रुद्रट का मानना है कि वह महती घटना होनी चाहिए। उसमे पाँच नाट्य-सधियो की योजना होनी चाहिए जिससे कथानक विस्तृत हो सके। कथानक ऐतिहासिक या पुराण पर आधृत होना चाहिए। रुद्रट की दृष्टि से कल्पना प्रधान भी हो सकता है। रुद्रट और हेमचन्द्र के मतानुसार महाकाव्य मे अवान्तर कथाएँ होनी चाहिए जिससे गम्भीर और व्यापक अनुभवो का परिज्ञान हो सके। महाकाव्य मे प्राकृतिक सौन्दर्य सुषमा का सजीव चित्रण होता है। आचार्य हेमचन्द्र का मानना है 'यदि मूलकथा मे प्राकृतिक सौन्दर्य आदि पर चिन्तन न हो सके तो अवान्तर कथाओ मे इसका समावेश करना चाहिए।' भोजदेव का अभिमत है 'इन सभी विषयो का समावेश करना कठिन है। किन्तु यदि कवि काल का वर्णन कर देता है

---

२६ काव्यालकार, परि० १, श्लो० १६-२३।

२७ काव्यादर्श परि० १, श्लो० १४-१६।

२८ काव्यालकार अ० १६, श्लो० २-१६।

२९ काव्यानुशासन।

३० काव्यानुशासन अ० ८।

३१ काव्यकल्पलता वृत्ति।

३२ साहित्य दर्पण परि० ६, श्लोक ३१५-३२८।

तो देश का वर्णन करना उतना आवश्यक नही है। कालवर्णन आवश्यक है। अमरचन्द्र ने षट्ऋतुओ का वर्णन और अन्य वर्णन विस्तार से करने का सूचन किया है। रुद्रट और विश्वनाथ का मानना है अतिप्राकृतिक और अलौकिक तत्त्वो का होना आवश्यक है।

महाकाव्य का आरम्भ किस प्रकार करना चाहिए इस सम्बन्ध मे भामह और भोजदेव ने कुछ भी प्रकाश नही डाला है। दण्डी का मन्तव्य है महाकाव्य मे आशीर्वचन, नमस्कार, वस्तुनिर्देशन आदि होना चाहिए। वाग्भट, हेमचन्द्र और विश्वनाथ इसके साथ ही खल-निन्दा और सज्जन-प्रशसा भी आवश्यक मानते हैं। महाकाव्य के उपसहार के सम्बन्ध मे अन्य सभी आचार्य मौन रहे हैं किन्तु रुद्रट और हेमचन्द्र ने लिखा है कि कवि को अपना उद्देश्य प्रकट करना चाहिए, अपने आराध्य देव का भी स्मरण करना चाहिए तथा मंगलप्रद शब्दो का प्रयोग होना चाहिए। रुद्रट का मानना है 'अन्त मे नायक का अभ्युदय दिखाना चाहिए।'

सर्ग समाप्ति के सम्बन्ध मे विश्वनाथ का कहना है कि अन्त मे अगले सर्ग की सूचना देनी चाहिए। वाग्भट का मानना है प्रत्येक सर्ग के अन्तिम पद मे कवि द्वारा अभिप्रेत शब्द, 'श्री', 'लक्ष्मी' आदि का प्रयोग होना चाहिए। नामकरण के सम्बन्ध मे विश्वनाथ का मानना है कि कि कथावस्तु या चरित्रनायक के नाम पर होना चाहिए। दण्डी, भोज, वाग्भट और हेमचन्द्र के अनुसार नायक चतुर और उदात्त होना चाहिए। भामह की दृष्टि से नायक कुलीन, वीर और विद्वान् हो। विश्वनाथ की दृष्टि से नायक धीरोदात्त गुणो से युक्त, उच्च कुल मे उत्पन्न क्षत्रिय होना चाहिए। रुद्रट का मन्तव्य है कि महाकाव्य मे नायक के समान प्रतिनायक भी आवश्यक है जो नायक की क्रोधाग्नि को भडका सके। प्रतिनायक के अतिरिक्त भामह, दण्डी, रुद्रट, वाग्भट, हेमचन्द्र और विश्वनाथ का मानना है कि मन्त्री, दूत, सैनिक, कुमार, कुमारपत्नी, राजकन्या आदि भी आवश्यक हैं। महाकाव्य में नवो रसो को आवश्यक माना है। विश्वनाथ का मानना है कि शृगार, वीर और शान्त मे से कोई एक रस प्रमुख होना चाहिए, अन्य गौण। सभी आचार्यों ने रस के साथ अलंकार भी आवश्यक माने हैं। कितने ही विज्ञ अपनी विद्वत्ता प्रदर्शित करने के लिए अलकारो का प्रदर्शन करते थे। इसलिए रुद्रट, वाग्भट और विश्वनाथ का मन्तव्य था कि अलकार आवश्यक तो हैं किन्तु अनिवार्य नही। महाकाव्य का छन्दोवद्ध होना आवश्यक है। दण्डी का मानना है महाकाव्य का छन्द-अत्यन्त श्रुति-मधुर होना चाहिए और सर्ग के अन्त मे भिन्न छन्द का प्रयोग होना चाहिए। आचार्य हेमचन्द्र का मन्तव्य हैं अर्थ के अनुकूल छन्द का प्रयोग होना चाहिए। यदि समस्त काव्य मे एक छन्द भी हो तो एतराज नही है। विश्वनाथ और दण्डी यह भी मानते हैं कि एक ही सर्ग मे विविध छन्दो का प्रयोग भी हो सकता है।

महाकाव्य मे प्रसग के अनुसार माधुर्य, प्रसाद और ओज गुणवाली भाषा का प्रयोग होना चाहिए। भामह का मानना है महाकाव्य मे साहित्यिक भाषा अपेक्षित है। उसमे ग्राम्य शब्दो का प्रयोग नही होना चाहिए। दण्डी और हेमचन्द्र की दृष्टि से भाषा सरल, सरस और बोधगम्य होनी चाहिए। रति के प्रकर्ष के लिए कोमलकान्त पदावली का प्रयोग हो। उत्साह के प्रकर्ष के लिए प्रौढ और क्रोध के लिए कठोर शब्दो का प्रयोग आवश्यक है। कवि को भाषा पर असाधारण अधिकार होना चाहिए जिससे वह अपने मन्तव्य को साधिकार व्यक्त कर सके।

विश्वनाथ के अतिरिक्त सभी आचार्यों ने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार पुरुषार्थों की उपलब्धि महाकाव्य का उद्देश्य माना है। विश्वनाथ किसी एक पुरुषार्थ को भी महाकाव्य का उद्देश्य मानते है।

भारतीय मूर्धन्य मनीषियो ने जिस प्रकार महाकाव्य के बारे मे चिन्तन किया है। उसी तरह पाश्चात्य विद्वानों ने भी उस पर चिन्तन किया है। लार्ड केम्स के अनुसार[33] वीरतापूर्ण कार्यों का उदात्त शैली मे वर्णन महाकाव्य है। लवस्सू[34] (फ्रेंच विद्वान्) के अनुसार महाकाव्य ऐसा रूपक है जिसमे प्राचीन महत्वपूर्ण घटनाओ का वर्णन पद्यबद्ध रूप से किया जाय। हाब्स[35] की दृष्टि मे वीरतापूर्ण समाख्यानात्मक कविता महाकाव्य है। लैफकैडियो हर्न[36] का मन्तव्य है कि महाकाव्य सपूर्ण जाति के आदर्शों की पद्यबद्ध अभिव्यक्ति करने वाला काव्य है। विलियम रोज बेनिट[37], वालटेयर[38], एबर क्रोम्बी[39], वाल्टर पेपर[40], सी० एम० बावरा[41], डब्ल्यू० पी० केर[42], एम० डिक्सन[43], टिलयार्ड[44] प्रभृति पाश्चात्य

---

३३ M Dixon, English Epic & Heroic Poetry, Page 18.
३४ Ibid, Page 2.
३५ Ibid, Page 22
३६. हिन्दी महाकाव्य एव महाकाव्यकार, ले० श्री रामचरण महेन्द्र पृ० १४ से उद्धृत।
३७. Mr William Rose Benit "The Reader's Encylopedia" Page 345
३८ डा० शभुनाथसिह कृत 'हिन्दी महाकाव्य के स्वरूप-विकास' से उद्धृत, पृ० १०४।
३९ Abercrombie, The Epic, Page 40-41
४०. Appreciation, Page 36.
४१ C M. Bowara, From Virgil to Milton', Page 1.
४२. W P. Ker 'Epic & Romance' Page 17.
४३. M. Dixon—'English Epic & Heroic Poetry', Page 9.
४४ सरस्वती सवाद, महाकाव्य विशेषाक पृ० ३९-४० ।

चिन्तको ने महाकाव्य के विविध पहलुओ पर गहराई से अनुचिन्तन किया है। विस्तार भय से हम उन सब पर यहाँ चिन्तन न कर सक्षेप मे यही कहना चाहेगे कि प्रायः सभी मूर्धन्य मनीपियो ने मूलतत्त्व एक सदृश माना है, यत्किचित् अन्तर महाकाव्य के वाह्य रूप को लेकर ही है। मुख्य तथ्य पाश्चात्य और पौवत्यि दोनो मे समान हैं।

अतीतकाल से ही जैन मनीपीगण गीर्वाण गिरा मे काव्यो का सृजन करते रहे है। क्योकि अनुयोगद्वार मे[15] प्राकृत और सस्कृत दोनो ही भापाओ को समान रूप से महत्त्व दिया है। इसलिए जैनाचार्यों की लेखनी दोनो भाषाओ मे अविराम गति से चलती रही। [ईसवी सन् की प्रारभिक शताब्दियो मे सस्कृत भापा का अध्ययन अत्यधिक आवश्यक माना जाने लगा। विज्ञो की मान्यता है एकादश अगो की भापा अर्धमागधी थी और पूर्वों की भापा सस्कृत थी। इस दृष्टि से सस्कृत और प्राकृत दोनो ही भापाओ को जैन साहित्य मे गौरवपूर्ण पद मिला है। जैन मनीपियो ने प्राकृत और अपभ्र श भापा मे विराट साहित्य का सृजन किया तो सस्कृत भापा मे भी विपुल साहित्य सृजन कर अपनी प्रकृष्ट प्रतिभा का परिचय दिया है। यह सत्य है कि जैन परम्परा अध्यात्मप्रधान रही है। उसका मुख्य लक्ष्य मोक्ष रहा है। और मोक्ष को प्राप्त करने के लिए धार्मिक साधना आवश्यक है। इस दृष्टि से जैन साहित्य मे त्याग, वैराग्य के स्वर अधिक मुखरित हुए हैं।

जैन काव्य साहित्य की अनेक विशेषताएँ हैं। इसकी कथावस्तु मे विस्तार की अपेक्षा गहनता अधिक होती है। सूक्ष्म भावो का आख्यान और वर्णन के साथ ही विश्लेपण प्रधान होता है। कथाओ मे पूर्व जन्मो की कथाएँ चमत्कार उत्पन्न करने वाली होती हैं जो किसी पक्ष का मार्मिक उद्घाटन करती है। शृगारिक जीवन का वर्णन करने पर भी वासना का विरेचन, प्रशम और निर्वेद पर अधिक वल दिया गया है। भोग पर त्याग की विजय, राग पर विराग की विजय वताई गई है। चरित्र मे प्रेम, विवाह, मिलन, युद्ध, सैनिक अभियान, दीक्षा, तपश्चरण, विविध उपसर्ग पर विजय वैजयन्ती फहराते नायक आध्यात्मिक उत्क्राति की ओर आगे वढता है। काव्य का मूल उद्गम स्रोत आगम, प्रागैतिहासिक व ऐतिहासिक महापुरुषो के जीवन चरित्र और ऐसे विशिष्ट व्यक्तियो के जीवन-वृत्त उसमे होते हैं जो जन-जीवन को निर्मल प्रेरणा प्रदान करने वाले होते है।

---

४५ सक्कया पायया चेव भणिईओ होति दोण्णि वा।
सरमडलम्मि गिज्जते पसत्था इसिभासिया ॥

—अनुयोगद्वारसूत्र, सूत्र १२७

आचार्य हरिभद्र, आचार्य हेमचन्द्र, आचार्य मलयगिरि, आचार्य सिद्धसेन दिवाकर, उपाध्याय यशोविजय, समयसुन्दर गणी, आचार्य [illegible], आचार्य समन्तभद्र, विद्यानन्द प्रभृति शताधिक जैन मनीषियों ने संस्कृत भाषा मे साहित्य का निर्माण किया है। उनके द्वारा सहस्राधिक ग्रन्थों का प्रणयन हुआ है। आधुनिक विद्वानों ने उसके सम्बन्ध मे शोध कार्य भी किया है जिससे सैकड़ों ऐसे ग्रन्थों का, जो अज्ञात थे, उनका पता लगा है।

आधुनिक युग मे संस्कृत साहित्य का उतना प्रचार नहीं जितना प्राचीन काल मे था। संस्कृत साहित्य का अध्ययन तो होता है, किन्तु ग्रन्थों का प्रणयन बहुत ही कम मात्रा मे हो रहा है। क्योंकि संस्कृत भाषा-साहित्य की सरसता समाप्त होती चली जा रही है। जब जनता को संस्कृत भाषा का परिज्ञान नहीं है तो काव्य का आनन्द उन्हें किस प्रकार आ सकता है और बिना आनन्द के [illegible] को प्रोत्साहन नही मिल सकता। जब कवि के अन्तर्मानस मे काव्य-निर्माण के प्रति अत्युत्कट जिज्ञासा होती है, तभी काव्य का प्रणयन होता है।

प्रस्तुत काव्य की कथावस्तु

श्रद्धेय सद्गुरुवर्य राजस्थान केसरी अध्यात्मयोगी उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी महाराज का प्रस्तुत काव्य अपने आप मे एक अनूठा काव्य है। प्रस्तुत काव्य श्रद्धेय गुरुवर्य ने आचार्यसम्राट श्री अमरसिंह जी महाराज के पवित्र चरित्र को लेकर तेरह सर्गो मे लिखा। स्रग्धरा शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका प्रभृति विविध छन्दो का उपयोग हुआ है। और साथ ही रूपक, वक्रोक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि विविध अलकारो का प्रयोग हुआ है।

प्रस्तुत काव्य की कथावस्तु श्वेताम्बर स्थानकवासी परम्परा के महान ज्योतिर्धर नक्षत्र आचार्य श्री अमरसिंह जी महाराज से सम्बन्धित है। आचार्य श्री अमरसिंह जी महाराज प्रबल प्रतिभा के धनी, महान् क्रियोद्धारक थे। उन्होंने मरुधर धरा मे स्थानकवासी समाज के शुद्ध चिन्तन व आचरण का प्रचार किया था। स्थानकवासी समाज एक अध्यात्मप्रधान क्रान्तिकारी सम्प्रदाय है। इसमे यम, नियम, सयम की प्रधानता है। मानवजीवन के मूल्य और महत्व का इसमे सही-सही अकन किया गया है। इसका उद्देश्य मानव को भोग से योग की ओर, संग्रह से त्याग की ओर, राग से विराग की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमरता की ओर, असत्य से सत्य की ओर ले जाना है।

श्रद्धेय अमरसिंह जी महाराज युगप्रवर्तक थे। वे श्रमण संस्कृति के एक सतेज सन्त रत्न थे। वे विद्वान्, विचारक तथा गभीर तत्त्ववेत्ता थे। उनके अगाध पाडित्य की सौरभ दिग्दिगन्त मे फैल चुकी थी, और आज भी वह जन-मानस को अनुप्रेरित एव अनुप्राणित करती है। आपका ज्ञान निर्मल था। सिद्धान्त अटल था। आपका जन्म देहली मे हुआ था। आपके पिता का नाम देवीसिंह जी और माता

का नाम कमलादेवी था। स० १७१६ मे आश्विन शुक्ला चतुर्दशी रविवार को आपका जन्म हुआ था। आचार्य लालचन्द जी महाराज के पावन-उपदेश से प्रभावित होकर आपने स० १७४१ मे आर्हती दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा ग्रहण करते ही सयम और तप की आराधना प्रारम्भ की। जैन आगम साहित्य का गहरा अध्ययन किया। आपकी वुद्धि पैनी थी। प्रखर प्रतिभा तथा तर्कपूर्ण मेधा शक्ति से अल्पकाल मे ही आगम के साथ दर्शन, न्याय, व्याकरण, साहित्य का विशेष अध्ययन-चिन्तन-मनन किया है।

आचार्य श्री लालचन्द जी महाराज की आज्ञा से आपने अपनी ज्ञान राशि को पजाव और उत्तर प्रदेश के जन-जीवन मे महामेघ के समान हजार-हजार धाराओ मे वरसाकर जन-जीवन को त्याग वैराग्य से सरसब्ज वनाया। अनेक स्थलो पर, वेश्या-नृत्य, मृत्युभोज, जातिवाद, वलिप्रथा आदि को वन्द करवाया। आपकी वाणी मे ओज था, सत्य का तेज था, विवेक का विशुद्ध प्रकाश था। आप जिस विपय पर भी वोलते साधिकार वोलते। सफलता देवी आपके चरण चूमने के लिए लालायित रहती। सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी, अरवी इन छ भापाओ पर आपका पूर्ण अधिकार था। आपने अनेक श्रमण-श्रमणी, श्रावक-श्राविकाओ को अध्ययन करवाया। आप मानव रूप मे साक्षात् वहती हुई ज्ञान-गगा थे। जिधर भी वह ज्ञान-गगा प्रवाहित हुई उधर अध्ययन, मनन व चिन्तन के सूखे और उजडे हुए खेत हरे-भरे हो गये।

आचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज प्रकाण्ड पण्डित, महान् प्रभावक, प्रसिद्ध प्रवचनकार और यशस्वी साधक थे। जैन-अजैन जनता आपको एक दिव्य महापुरुप मानती थी, तथापि आप उतने ही नम्र थे। आप गुरुजनो के प्रति अत्यन्त श्रद्धालु थे और लघु जनो के प्रति आपके हृदय मे प्रेम का सागर ठाठें मारता था। अहकार-ममकार के दुर्गुणो से आप वहुत दूर थे। आपने वीस व्यक्तियो को आर्हती दीक्षा प्रदान की। स० १७६१ मे आचार्य श्री लालचन्दजी महाराज ने आपश्री को युवाचार्य पद प्रदान किया और स० १७६२ मे आपश्री आचार्य वने।

सवत् १७६७ मे आपका वर्पावास देहली मे था। उस समय हिन्दुस्तान के वादशाह शहनशाह वहादुर थे। वे दक्षिण से अजमेर आये थे। उस समय जोधपुर के महामन्त्री खीवसिंहजी भण्डारी अजमेर आये और शहजादा अजीम के मार्फत सवत् १७६७ मे वादशाह से मुलाकात की। वादशाह भण्डारी जी के साथ लाहोर होते हुए दिल्ली पहुँचे। और एक वार भण्डारी जी के द्वारा आचार्यश्री की सेवा मे पहुँचे और आचार्य प्रवर के जादू भरे व्यक्तित्व से अत्यन्त प्रभावित हुए। आचार्य श्री के उपदेश से प्रभावित होकर प्राणिवध न करने का नियम ग्रहण किया। आचार्य श्री खीवसिंह भण्डारी के अत्यधिक आग्रह पर मारवाड़-राजस्थान के लिए प्रस्थित

हुए। अनेक उपसर्ग उन्हे सहन करने पडे। सोजत और जोधपुर मे देवकृत उपसर्गों का सामना करना पडा। पाली मे यतियो को शास्त्रार्थ मे पराजित किया। और मारवाड मे सर्वप्रथम स्थानकवासी जैनधर्म का प्रचार किया।

इस प्रकार प्रस्तुत कथानक अत्यन्त दिलचस्प है। ऐतिहासिक होने के साथ ही अत्यन्त प्रेरणाप्रद है।

काव्य का नायक धीर, वीर और उदात्त गुण विशिष्ट है। उनके उदात्त गुणो का सजीव चित्रण प्रस्तुत काव्य मे हुआ है। यह काव्य घटनाप्रधान होने पर भी सुखान्त है। त्रयोदश सर्ग मे आवद्ध होने के कारण उसे महाकाव्य की कोटि मे रखा जा सकता है। यद्यपि सर्ग का एक क्रम नही रहा है, कुछ सर्ग वडे हुए हैं तो कुछ लघु भी हैं। किन्तु विषय-सामग्री को देखते हुए गुरुदेवश्री को ऐसा करना पडा है।

प्रस्तुत काव्य को महाकाव्य मे परिगणित करना या नही यह भले ही विज्ञो के लिए चिन्तनीय प्रश्न हो सकता है, पर जहाँ तक काव्य का प्रश्न है प्रस्तुत काव्य एक उत्कृष्ट काव्य है। विविध वृत्तो का उपयोग साधिकार किया गया है। वृत्तो मे यति भग आदि दृग्गोचर नही होता है। कठिन से कठिन वृत्त को भी सहज रूप से दिया गया है।

भाषा की दृष्टि से गुरुदेवश्री की भाषा वहुत ही सरल, सरस और अनुप्रास युक्त है। भाषा आपकी सहचरी है। गहन भावो को व्यक्त करने के लिए भाषा सक्षम है। उसमे कही पर भी वनावटीपन नही है और न भाषा मे दुरूहता ही है। भाषा-शैली पाठको के दिल को लुभानेवाली है। पाठक पढते-पढते झूमने लगता है। लेखक ने व्याकरण के नियमो की कही भी उपेक्षा नही की है। भाषा की सरसता और सरलता के कारण पाठक को तनिक मात्र भी वौद्धिक व्यायाम करने की आवश्यकता नही है। उसे गहन भाव भी सहज ही हृदयगम हो जाते हैं। सस्कृत काव्य साहित्य मे व्यग्यार्थ प्रधान काव्य श्रेष्ठ माना जाता है। प्रस्तुत ग्रन्थ रत्न इस दृष्टि से उत्तम काव्य है। यत्र-तत्र व्यग्य का प्रयोग हुआ है और वह निगूढ-तम भाव-को अभिव्यक्त करनेवाला है।

नौ रसो मे काव्य मे एक रस की प्रधानता होती है, पर अन्य रस यत्र-तत्र विषय की अभिव्यक्ति के लिए आते हैं। श्रद्धेय गुरुदेव श्री जैन श्रमण है। जैन श्रमण होने के नाते आपश्री का प्रस्तुत काव्य शान्त रस-प्रधान है। शान्त रस का पूर्ण परिपाक काव्य मे हुआ है।

अर्थ के चमत्कार को अभिव्यक्त करने के लिए अलकार की आवश्यकता है। किन्तु अलकार सहज होना चाहिए। जो अलकार-सहज होते हैं वे ही वास्तविक चमत्कार पैदा करते हैं। जव तक अलकार अर्थ के साथ घुल मिल नही जाता

वहाँ तक उसमे अभिनव चमत्कृति पैदा नही होती। स्वाभाविक रूप से यत्र-तत्र अलकारो का प्रयोग हुआ है। कवि लिखता है—"ससार मे प्रशस्त ब्रह्मचर्य ने महान् आश्चर्य उत्पन्न किया है। ब्रह्मचर्य के विश्वविख्यात वैशिष्ट्य को कोई भी कहने मे समर्थ नही हो सकता। यहाँ तक कि रमणीय रूप भी लज्जित होकर तिनके तोडने लगता है। किन्तु यह अपने अस्तित्व को इसी प्रकार रखकर उस ब्रह्मचर्य के सामने नृत्य करता है अर्थात् ससार मे ब्रह्मचर्य ही महान् है।

"बह्वाश्चर्य जगति तनुते ब्रह्मचर्य प्रशस्तम् ,
यस्योत्कर्षं भुवनविदित कोऽपि वक्तु न शक्त ।
रम्य रूप स्पशति तृणकं लज्जमान परन्तु ,
स्वस्यास्तित्व कथमपि धरन् नृत्यतीदं तदग्रे ॥"

कवि ने बताया है कि इस विराट विश्व मे मानव के दु ख का मूल कारण क्या है ? दैवो विपदाओ के कारण मानव दु खी नही है, और न प्राकृतिक प्रकोपो के कारण ही दु:ख की काली घटाएँ मँडराती रहती हैं। दुःख का मूल है इच्छाएँ। इच्छाओ का वातचक्र इतना गहरा है जो मानव की शाति को नष्ट कर देता है। कवि के शब्दो मे देखिए—

इच्छाबद्ध विकृतहृदयश्चिन्तया पोडितोऽयम् ,
श्रेष्ठ वस्तु प्रभवति सदा स्वात्मने निग्रहीतुम ।
सर्वस्व मे भवतु निखिलं सर्वमेव विचिन्वन् ,
स्वार्थी जीवो ग्रहणनिरत. जायते दु खदग्ध ॥

कवि ने संसार को मदोन्मत्त अन्धे हाथी की उपमा दी है। एक ओर विराट् वैभवशाली गुलछर्रे उडाते हैं, पैसे को पानी की तरह बहाते है। अर्थ से अनर्थ कर अपने आपको आनन्दित अनुभव करते है। पर उन्हे यह सत्य-तथ्य ज्ञात नही है कि वे कर्मो को बाँध रहे हैं। दु ख के बीज वपन कर रहे है। दूसरी ओर वे महान् त्यागी सन्त है, उत्कृष्ट तप की साधना कर रहे है, जन्म और मरण के बन्धन से मुक्त होने के लिए प्रबल प्रयास कर रहे है। पर यह ससार रूपी हाथी तो झूमता हुआ चला जा रहा है। देखिए, कवि ने कितना सुन्दर कहा है—

प्रीणन्त्यन्ते चयितविभवा भुक्त भोगप्रपंचा ,
धन्यमन्या स्वकृतिविवशा पापकृत्यानि कर्त्तुम् ।
सन्त्येकेऽमी विरतहृदया मृत्युजन्मैक चिन्ता ,
ससारोऽय विविधविपय व्याप्तचित्तोऽन्धहस्ती ॥

इस प्रकार प्रस्तुत काव्य मे विभिन्न अलकारो का प्रयोग अत्यन्त सफलता के साथ हुआ है। सर्वत्र श्रद्धेय सद्गुरुवर्य की प्रतापपूर्ण प्रतिभा झलक रही है।

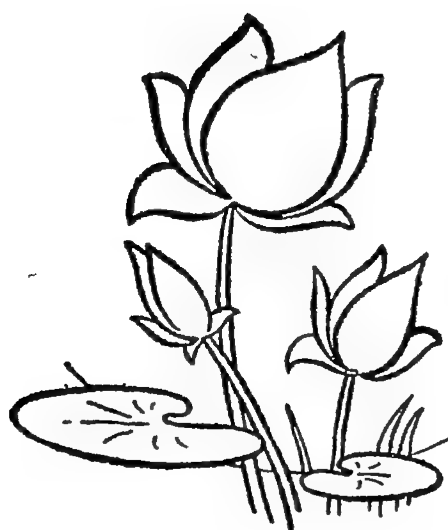
आपके काव्य मे प्रसाद और माधुर्य इन दोनो गुणो की प्रधानता है। कही-कही पर ओज गुण भी परिलक्षित होता है ।

मेरे स्नेहपूर्ण आग्रह को सन्मान देकर प० प्रवर रमाशकरजी शास्त्री ने ग्रन्थ का सुन्दर सम्पादन किया। उनके अन्तर्मानस मे श्रद्धेय सद्‌गुरुवर्य के प्रति अगाध निष्ठा है। जब उन्होने यह काव्य देखा तो उनका मन इसके सपादन के लिए ललक उठा और उन्होने भक्ति भावना से विभोर होकर सपादन किया, तदर्थ मैं उन्हे साधुवाद प्रदान करता हूँ।

प्रस्तुत काव्य सस्कृत साहित्य मे अपना अनूठा स्थान प्राप्त करेगा, ऐसा मुझे पूर्ण आत्म-विश्वास है। श्रद्धेय गुरुवर्य के अन्य ग्रन्थो की तरह यह ग्रन्थ भी श्रद्धालुओ के हृदय का हार बनेगा, इसी मगल आशा के साथ—

जैन स्थानक, सिकन्दराबाद
आश्विन शुक्ला चतुर्दशी
सवत् २०३६

—देवेन्द्र मुनि



प्राक्कथन

अयि मे विद्वन्मूर्धन्या रसिका कविमहोदया !

किमह वदेय भवतां पुर यत् कवे कार्यं कियद् दुष्करम् तथापि सर्वमेवमविगणय्याहमस्मिन् काव्यकर्मणि प्रवृत्तोऽभवम्। समवाप्तयशसा महाकवीनामन्यै काव्यै पुनश्च प्रेरितोऽभवमहम् । किन्तु तेषां वर्णन तु वर्णनमेव, किमह तेषा काव्यस्यानुकृतिमपि कर्त्तुं प्रभुर्भवेयम् । नैतच्छक्य-कालत्रयेऽप्यस्मादृशाना कवीना कृते । किन्तु तेऽपि मानवा एवासन्, अहमपि मानवेष्वेकतमोऽस्म्येव । यदात्मान साक्षात्कर्त्तुं यते, तमात्मानमवाप्तुं शक्नोमि वा न वा, तथापि तद्वदिहाहमपि काव्य करोम्येव ।

यदाहमधीयान एवासममरभारतीम्, तदा मम गुरुदेवो महास्थविर श्रीमद् ताराचन्द्रो मुनिरप्येवमुत्साहयन्नह्न्येकस्मिन् मामेवमवोचत्, यत्त्व-मप्येकस्मिन् समये कविरवश्य भावी विद्यसे । हेतु तु त एव जानीयुर्ये मामवेक्ष्य गुरु मदीयं समुपगत्य केऽपि प्राशसन्त यदवश्य भवतोऽय शिष्य पुष्करो मुनि. कविपुष्करो भवेदिति ।

किमपि स्यादह तु सोत्साह सन्नात्मनीना वाणी पुनानो मामकीन-स्याद्याचार्य्यस्य श्रीमतोऽमरसिंहस्य मुनेरेव यशःप्रख्यापकमेकम् 'अमरसूरि काव्य' व्यरचयम्, किन्तु न जाने अह कस्मात् कारणात् समुद्विग्नोऽभवम् । मनसि कमप्यन्य निश्चयमवलम्ब्याहमेतावन्त काल समक्षिप्नुवम् । अथ समयोऽयं महान् वलवानस्ति, किमह वर्णये यस्य माहात्म्यम् ।

वर्षावासाय गतेऽब्दे पुण्यपत्तनान्महाराष्ट्राद् रायचूर कार्णाटकमुद्दिश्य विहारमाचरन्नहमधिपथि तमेव निश्चय समस्मरम् । मामकीनेन मुनि-मण्डलेन सह विहरता मयोक्तस्य काव्यस्य स्थाने श्रीमदाचार्य्यामरसिंह नामकस्यास्य पुनरारम्भो व्यधायि। साम्प्रत सर्वे एव परिचिन्वन्त्येता तु जैनमुनेरिमा प्रक्रिया विहारस्य ।

पदातिरह प्रतिस्थान मार्गे रात्र्यावास समाचर्य दिन एव समयमधिगम्य च श्लोकान् विरच्य मदीयस्य गुरुकुलस्य पण्डित श्रीमन्त रमाशङ्करशास्त्रिण सगह्राय समर्पयम् । अयमपि कविरेवास्ति, पाण्डित्यस्य विषयेऽस्य किमु वर्णयेयमहम् । तदेतद् सर्व तु साक्षात्कारेणैवास्य प्रत्यक्ष लक्ष्यते, किन्तु विशिष्टोऽय विदुषा समाजेऽस्त्यहमिम मन्ये । ममैवाय भक्तोऽस्ति, अतोऽस्य किमह वैशिष्ट्यमधिक ख्यापयेयम् । यतोऽय स्वय स्वीया प्रसिद्धिमतिवाहयति ।

सोऽयमस्मिन् काव्ये परमं विशिष्ट योग प्रदाय काव्यमदो व्यवस्थितमकरोत् । तस्मादहमिम सम्पादकमेव व्यवास्थापयम् । निश्चयोऽयमस्ति यदस्मिन् काव्ये स्वाभाविकास्त्रुटयोऽवश्य भवेयु । यतो हि जैनो मुनिरहमस्मि, जन्मना ब्राह्मण , तत्रापि बालब्रह्मचारी, सहैवाचतुर्दशवर्षदेशीयो दीक्षित, तथापि विद्याव्यवसायादेव यथाकथञ्चिदह व्यवर्णयमिति विचार्यैव मर्मज्ञा कवयो मामनुगृह्णीयुरित्यप्यह विनयेन सन्तिष्ठे ।

विश्वसिमि पुनरह समुत्साहित सन्नप्यन्यत् काव्य सस्कृतसाहित्यस्यावरमधिकृत्य समुपस्थितो भवेयमिति । करोमि किमह समयस्य पुनरियानभाव. मुनिमर्यादामेव पुरस्कृत्याह सस्कारेण ब्राह्मणस्य निष्कारण षडङ्गो वेदोऽध्येतव्यश्चेति वृत्यावश्य प्रेरितोऽस्म्येवेति निवेदये—

भवतामेवाहम्—

पुष्कर मुनिः



सम्पादकीय

संस्कृत भापा-वाङ्मय अत्यधिक प्रशस्त और गौरव पूर्ण है। इस भाषा के कवि भी विश्वकवि के रूप मे यशस्वी हुए है। सस्कृत भापा के माधुर्य की प्रशसा तो विश्व के भापा-शास्त्री भी मुक्तकण्ठ से करते चले आ रहे है। ससार के भापा-मर्मज्ञ पण्डित-प्रकाण्ड तो सस्कृत को विश्व भापा मानते है।

किन्तु भारत की मूल राष्ट्रीय धारा मे सस्कृत की प्रतिष्ठा सर्वमान्य एव सर्वोत्कृष्ट रही है। अत भारतीय सस्कृतियो के धर्म-दर्शन और साहित्य के ग्रन्थो के प्रणेताओ ने सस्कृत भापा को ही प्रामुख्य प्रदान किया। अतएव अधिकारी विद्वान् होने के लिए सस्कृतज्ञान को मानदण्ड के रूप मे स्थिर किया गया है।

इस प्रथा के अनुसार मुनिराज श्री पुष्करमुनि महाराज साहब ने सर्वप्रथम सस्कृत का गम्भीर अध्ययन किया और मुनि जीवन के साथ उसका व्यावहारिक उपयोग लिया और लेते आ रहे हैं। प्रकृत मे सस्कृत-काव्य की चर्चा का विषय है, इसलिए सस्कृत के ज्ञान का यहाँ वर्णन किया गया है। वैसे मुनिश्री जी अनेक भारतीय भापाओ के ज्ञाता हैं। यह बात दूसरी है।

आपश्री ने अनेक वर्प पूर्व सस्कृत मे ही अपने सम्प्रदाय के पूज्य आचार्यश्री अमरसिंह मुनि महाराज के विपय मे 'अमरसूरि काव्य' की रचना की थी। उसका प्रकाशन भी हुआ। उससे हृदय को सन्तोप तो मिला; किन्तु परितोप प्राप्त न हो मका। अतएव आपश्री ने यह विचार रख छोडा था कि कभी अवसर प्राप्त होगा तो फिर इस काव्य की रचना की जायेगी। सयोग से यह अवसर गतवर्प रायचूर (कर्णाटक) के वर्पावास पर आपहुँचा, और 'श्रीमदाचार्यामरसिंह महाकाव्यम्' 'अमरसूरिकाव्य' के स्थान पर सजधजकर जम गया। इस बात का उल्लेख आपश्री ने स्वय अपने काव्य-समर्पण मे भी किया हैं।

मुनिश्री जी हृदय से कवि है, स्वभाव से व्याख्याता हैं, प्रयत्न से लेखक और व्यवहार से अनेक भापाभिज्ञ हैं। अपने व्याख्यानो मे स्वरचित कविता का पाठ करते हैं। प्रसङ्गत कोई पद अथवा स्तवन किसी अन्य कवि का

स्मरण आ गया, सुना दिया, तो वह कोई दूसरी बात है। शेष, सदा स्वरचित कविता का ही प्रयोग लेते है। इसी प्रवृत्ति के वशीभूत हो, आपश्री ने इस काव्य की रचना की है, यह एक स्पष्ट बात है। इस काव्य की कथावस्तु कल्पना के आधार पर नहीं है, अपितु यह स्थानकवासी श्वेताम्बर श्रमणोपासक जैन मुनियो के इतिहास मे वर्णित है।

आचार्य श्रीअमरसिंह जी महाराज मरुधर-प्रदेश मे उक्त श्रमण-परम्परा के प्रथम प्रवर्त्तक आचार्य माने गये है। आपका जब उक्त प्रदेश मे प्रवेश हुआ तब जैन यतिओ का स्थानीय जनता पर बडा प्रभाव था। वे अपने अज्ञानान्ध श्रद्धालुओं को स्थानकवासी जैनमुनियो के प्रति कुछ का कुछ समझाकर भडकाते थे। वास्तव मे बात यह थी कि ये यति लोग अपने वास्तविक कर्त्तव्य को भूल चुके थे और आचरण-च्युत होकर ससार मे लिप्त थे। इन जैनमुनियो की उपस्थिति से उनके आचरण की पोल खुलती थी। इसलिए वे स्थानकवासी जैनमुनियो का जान-बूझ कर युक्तियो के द्वारा विरोध करते थे।

एक वार जोधपुर राज्य के दीवान श्री खिवसीजी साहब उस समय के वादशाह वहादुरशाह से किसी राजकीय कार्य के लिए मिलने के लिए देहली पहुँचे थे। उस समय वर्षावास के हेतु से पूज्य श्रीअमरसिंह जी महाराज अपने मुनिसघ के साथ विराज रहे थे। पूज्य श्री के व्याख्यानो की उस समय देहली मे धूम मची हुई थी। दीवान साहब भी प्रशसा सुनकर व्याख्यान सुनने पहुँचे। पूज्यश्री समय के प्रभाव से उर्दू-फारसी के माहिर थे। दरबारी दीवान साहब मुनिमहाराज के व्याख्यान, दर्शन आदि से आकृष्ट होकर प्राय प्रतिदिन मुनिराजश्री की सेवा मे पहुँचने लगे। इस प्रकार धीरे-धीरे वे मुनिमहाराज के भक्त वन गये। जैन तो थे ही सस्कार अच्छे थे, और फिर जोधपुर-राज्य के दीवान, इन सब वातो से मुनिमहाराज भी उनकी पूछ-ताछ का ध्यान रखते थे।

एक दिन वे दीवान साहब वडे दु खी-से आचार्यश्री की सेवा मे पहुँचे। देखते ही आचार्यश्री ने प्रश्न किया कि आज आप वडे खिन्न-से दिख रहे हैं? दीवान साहब ने बताया कि वादशाह ने अपनी कुमारी राजपुत्री के गर्भ रह जाने से प्राणदण्ड का आदेश कर दिया है। साथ ही महलो की देखभाली के सिपाही राजकुमारी को सच्चरित्र और भोली बताते है। इससे दरबार का हाल बेहाल हो गया है और उधर वादशाह अपने आदेश को अनेक अनुनय-विनय के रहने पर भी स्थगित किया नही चाहते। इस कारण से मुझे दु ख हो रहा है। दूसरे जिस कार्य से मैं यहाँ आया हूँ, उसमे भी इस से रुकावट आ गई है। मैं वास्तव मे वहुत दु खी हूँ। इसलिए आपने मुझे दु खी वताया सो वास्तव मे सत्य है।

आचार्यश्री ने स्पष्ट किया कि विना पुरुष-ससर्ग के भी गर्भस्थिति होती है, ऐसा शास्त्रो मे और वैद्यक-ग्रन्थो मे उल्लेख है। अत मेरे विचार से तो यह गर्भ-स्थिति यथार्थ मे राजमविकार के कारण निस्सार है। देखना कुछ ही मासो मे यह निस्सार राजसमात्र का गर्भ घण्टो मे विकीर्ण हो जायेगा। क्योकि विना वीर्य के अस्थि आदि नही वन पाती। स्थिति को देखते हुए आपके वादशाह को प्राणदण्ड स्थगित कर देना चाहिये। यह सुनकर जव दीवान साहव दूसरे दिन दरवार मे उपस्थित हुए तो उन्होने वादशाह को वताया कि मेरे गुरुदेव श्रीअमरसिंह जी महाराज ने फरमाया है कि विना पुरुष-ससर्ग के भी गर्भस्थिति होती है, जो कुछ ही मासो मे राजस लोथ जैसा फफूँद पैदा होता है, और घण्टो मे विकीर्ण होकर नष्ट हो जाता है। इसलिए राजकुमारी के प्राणदण्ड को स्थगित कर कथित गर्भ के परीक्षण के लिए प्रतीक्षा की जानी चाहिये। वादशाह ने भी वात की सचाई देखने के लिए प्राणदण्ड को तव तक के लिए स्थगित कर दिया और प्रवन्ध कर दिया कि इसमे किसी प्रकार का कोई षड्यन्त्र न होने पाए।

समय आया, राजस गर्भ का निरीक्षण हुआ, परीक्षण से वादशाह को मुनि-महाराज के कथन की सचाई पर आश्चर्य हुआ। उन्होने दीवान साहव श्रीखिवसीजी से कहा कि मैं स्वय मुनिमहाराज के दर्शन आपके साथ चलकर करना चाहता हूँ। जानने के लिए वादशाह ने प्रश्न किया कि दीवान साहव! ये मुनिजी महाराज, कौन हैं? कहाँ के हैं? और किस धर्म के हैं? दीवान साहव ने उत्तर दिया कि श्रीमन्! ये हम जैनो मे से ही एक हैं और इसी देहली के सेठ श्रीदेवसिंहजी साहव के पुत्र है। किन्तु आप भरी जवानी मे विवाह होने पर भी सव कुछ छोड, आज्ञा लेकर जैन मुनि हो गए है। अव आपका घर-परिवार से कोई सम्वन्ध नही है। केवल आप आत्मकल्याण के मार्ग पर पर आरूढ हैं और मोक्ष प्राप्त करने का प्रयास कर रहे है। ससारियो को अहिंसा के द्वारा विरक्ति का पाठ पैदल घूम-घूम कर पढाते है। वास्तव मे ये महान् सन्त हैं।

वादशाह स्वय मुनिमहाराज की सेवा मे दर्शन करने के लिए दीवान साहव श्रीखिवसीजी के साथ पहुँचे। मुनिमहाराज ने अपने नियम के अनुसार धर्मध्यान का उपदेश किया और वादशाह ने उपदेश ग्रहण कर प्रतिज्ञा की कि मैं अपने जीवन मे कभी जीवहिंसा नही करूँगा।

कुछ समय के वाद दीवान साहव ने आचार्य श्री से मरुधर क्षेत्र के स्पर्श करने के लिए अनेक प्रकार से विनति की। किन्तु विनति पर ध्यान देने से पूर्व आचार्यश्री ने दीवान साहव को वताया कि मरुधर प्रदेश मे सुख-शान्ति के साथ विहार करना वडा कठिन कार्य है। अत विहार करने से पूर्व सभी सम्भाव्य वाधाओ को रोकने के लिए प्रवन्ध आवश्यक है। इस वात को उचित समझकर दीवान साहव ने वादशाह से अवसर पाकर निवेदन किया कि मुनि महाराज मरुधर-

प्रदेश की ओर विहार करना चाहते है और उस ओर विहार के लिए मार्ग मे अनेक वाधाएं सम्भावित है। इसलिए यदि आपकी ओर से मरुधर-नरेश को सूचनात्मक फरमान भिजवा दिया जाय तो उचित होगा। क्योकि वादशाह मुनि महाराज के प्रति भक्ति रखने लगे थे। इसलिए वे कहने लगे कि मुनि महाराज यहाँ पर ही विराजें तो अच्छा है। यहाँ क्या कष्ट है? यदि कोई यहाँ पर कष्ट हो तो मुझे वताइये। मैं उसको अभी समाप्त कर देता हूँ। इसलिए मेरे विचार मे मरुधर-नरेश को फरमान भेजने की कोई आवश्यकता प्रतीत नही होती।

इस प्रसङ्ग पर वादशाह को वताया गया कि वरसात के चार महीनों के अतिरिक्त जैन मुनि विना कारणविशेष के किसी एक स्थान पर जमकर नही वैठ सकते। मुनिधर्म के अनुसार विहार आवश्यक है। यह सुनकर वादशाह ने आवश्यकता के अनुसार मरुधर-नरेश के लिए फरमान भिजवा दिया। जिसमे आचार्यश्री के विहार-मार्ग मे किसी प्रकार की रुकावट न हो और न किसी प्रकार का कष्ट हो। साथ ही आवश्यकता के अनुसार सुरक्षा का भी प्रवन्ध हो।

इस फरमान के पश्चात् आचार्यश्री अपने मुनिमण्डल के साथ विभिन्न स्थानो, ग्रामो और नगरो मे विहार करते हुए देहली से जयपुर पहुँचे। जयपुर मे आचार्यश्री के व्याख्यानो का वडा प्रभाव पडा। जिससे धार्मिक भावना जगी और वडी-वड़ी तपस्याएँ, त्याग और दान हुए। त्याग के प्रसङ्ग से साथ धन की सीमा को लेकर सेठ श्री रङ्गलालजी पटवा का नाम आचार्यश्री के माहात्म्य से जुडा हुआ है।

जयपुर के एक स्थानक मे जहाँ पर आचार्यश्री विराजे हुए थे, सेठ श्री रङ्गलालजी पटवा स्वत धन की कुछ सीमा करने के लिए उद्यत हुए। दूरद्रष्टा आचार्यश्री ने सेठजी को उद्‌वोधन देते हुए कहा कि सेठजी धन की सीमा करते समय विचार कर लीजिए। क्योकि सीमा कर लेने के पश्चात् व्रत भग न हो यह आवश्यक है। सेठ साहव को अपनी स्थिति को देखते हुए सीमा को वढाने का विश्वास नही होता था। अत वे कहने लगे कि इतने कम धन की सीमा, गुरुदेव! ठीक ही है। सेठजी के इतना कहने पर भी आचार्यश्री ने पटवा साहव से कहा कि सेठजी अव भी धन की सीमा के सम्वन्ध मे चिन्तन कीजिए। कही फिर ऐसा न हो कि पीछे पछताना पड़े। अस्तु-वेमन से यह जानकर कि आचार्यश्री फरमा रहे हैं, तो मुझे कुछ और अधिक सीमा वढा देनी चाहिए। फिर कुछ धन की सीमा और वढा दी। अन्त मे फिर आचार्यश्री के फरमाया कि देखो सेठ साहव! अव भी समय है, अव तो सेठजी के आग्रह पर जितना अधिक वढा था, शेष धन का प्रत्याख्यान आचार्यश्री ने करा दिया। कुछ ही दिन प्रत्याख्यान करने के व्यतीत हुए कि सेठ श्रीरङ्गलालजी पटवा के यहाँ रुपयो की वाढ-सी आने लगी। वे अव सोचने लगे, कि गुरुदेव इसीलिए मुझे धन की सीमा पर चिन्तन करने के लिए कह रहे थे। जब

कि मुझे इतने धन की आय का विश्वास नही था। किन्तु अव क्या होता है ? उस प्रत्याख्यान के फलस्वरूप सीमा से अधिक आय का दान, पटवा साहव की हवेली पर होने लगा। पटवा साहव ने स्वय जहाँ आचार्यश्री विराज रहे थे, वहाँ पहुँच कर, दर्शन कर वन्दना करते हुए श्रावको के सम्मुख अपनी वात को प्रकट किया।

आगे किशनगढ, अजमेर स्पर्श करते हुए आचार्यश्री जव चण्डावल पधारे तो फिर जैनयतियो मे हल-चल पैदा होने लगी। क्योकि आचार्यश्री की कीर्ति-पताका सारे मरुधर-प्रदेश मे लहराने लगी थी। अव करे भी तो क्या करे ? ये आचार्यश्री तो मरुभूमि पर तूफान होकर चढे ही चले आ रहे थे। मरता क्या नही करता ? इसलिए उन्होने सोचा कि न रहे वाँस, न वजेगी वाँसुरी। अत आचार्यश्री के जीवन की समाप्ति की योजना स्थिर की गई। किन्तु काम भी हो, और मालूम न हो—इस नीति के अनुसार उन्होने आचार्यश्री की भाव-भक्ति का सहारा लिया। और सोजत नगर को उन्होने योजना को मूर्त्तरूप देने का स्थल चुना।

विहार करते हुए आचार्यश्री जव दोपहर समाप्त होते होते सोजत पहुँचे ही थे कि ये वने-वनाए भक्त सामने आए। वन्दना आदि के पीछे आचार्यश्री को मुनिमण्डल के साथ ठहराने की चर्चा करने लगे। और इधर-उधर के स्थानो का नाम लेकर सवसे वढिया स्थान अपनी योजना के अनुसार एक मस्जिद, जो कि जिन्द के रहने की वजह से उजडी पडी थी, आचार्यश्री को सुखसाता का स्थान वताकर जवरन टिका दिया। किन्तु आचार्यश्री इन को ताड गए कि आखिर मुझे मुनिमण्डल के साथ किसलिए ठहराया जा रहा है। साथ ही वे यह भी वताना चाहते थे कि कुछ भी करलो, किन्तु ये तुम्हारे हथकाण्डे कभी सफल नही हो सकेंगे। क्योकि उनको अपने ऊपर विश्वास था। सच्चे तपस्वी और साधक मे अपार आत्मवल होता है। वह किसी भी वाधा का डट कर सामना कर सकता है।

योजना के अनुसार वे कृत्रिम भक्त मुनिमण्डल के साथ आचार्यश्री को मस्जिद मे ठहरा कर एक-एक करके सटक गए। इधर आचार्यश्री अपने मुनियो के साथ अपने सायन्तन कृत्य के सम्पादन मे सलग्न हो गए। धीरे-धीरे सायन्तन कृत्य भी पूर्ण हुए। गुरुसेवा के पश्चात् मुनिजन भी रात्रि अधिक होने पर अपने-अपने स्थान पर जाकर सो गए, किन्तु आचार्य श्री अकेले अपने ध्यान मे मग्न थे। आधी रात वीती होगी कि जिन्द ने अपना उपद्रव प्रारम्भ किया। जिन्द इस वात पर क्रुद्ध था कि आप सव मेरे स्थान पर आकर क्यो ठहरे हैं ? उत्तर न मिलने पर क्रुद्ध जिन्द ने आचार्यश्री के ऊपर अनेक शारीरिक वल प्रयोग किए। किन्तु आचार्यश्री अविचल शान्तभाव से वीजसहित मन्त्र-जप मे ही सलग्न रहे। जिन्द इस मस्जिद मे ठहरने वालो को सदा-सदा के लिए सुलाता आ रहा था। किन्तु आचार्य श्री के सामने उसकी कुछ भी नही चल रही थी। वह अपनी मनमानी

कर कर के थक गया। किन्तु आचार्यश्री ज्यो-के-त्यो ध्यानस्थ विराजमान हैं, अन्त मे लाचार होकर हाथ जोडते हुए, अपने किए पर पछताने लगा और कहने लगा, कि मैंने आपको निरर्थक कष्ट दिया, पर्याप्त शारीरिक यातनाएँ दी, किन्तु मैं फिर भी आपका कुछ न कर सका। इस सबसे मैं बहुत लज्जित हूँ। साथ ही अपनी भूल के लिए क्षमा चाहता हूँ। और फिर आगे अपने आप कहने लगा कि मैं सच्चा मुसलमान हूँ तो फिर कभी किसी मुनि को यहाँ ठहरने-बसने पर आपत्ति नही करूँगा। असल बात यह है कि मैं आज से इस मस्जिद को छोडकर जा रहा हूँ। अब यह सदा स्थानक ही रहेगा। मुसलमान इस मस्जिद को अपने-आप छोड देंगे।

इस प्रकार वह जिन्द वहां से चला गया। मस्जिद का स्थानक बन गया। जो आज भी मस्जिद का स्थानक के नाम से सोजत नगर मे विद्यमान है।

वे षड्यन्त्री यतिप्रेरित भक्त धीरे-धीरे प्रभात मे वहां आकर देखने लगे कि हमारी योजना सफल हुई कि नही। उन्हे यह देखकर बडा आश्चर्य हुआ कि आचार्यश्री अपने मुनिमण्डल के साथ सानन्द अपनी निर्धारित मुनिक्रियाओ मे व्यस्त हैं। यतिप्रेरित वे भक्त अब समझे, कि हमको ऐसे सन्त के प्रति यतियो के जाल मे फँसकर कभी कोई कार्य भविष्य मे नही करना चाहिये। प्रत्युत हमको अपने इस सच्चे मुनि महाराजो की आज्ञा मे रहना चाहिये।

बात कभी कोई छिपी नही रहती। इस घटना को जानकर स्थानीय जैन-जगत् एक साथ सजग हो गया। अतएव श्रद्धा भक्ति के साथ श्रावकजन मुनिराजश्री के व्याख्यानवाणी का आनन्द लेने लगे और सत्य सनातन जैनधर्म के तत्त्व को समझ कर आगे बढने का प्रयास करने लगे।

इस प्रकार मरुधर-प्रदेश मे एक आन्दोलन-सा उठ खडा हुआ कि सत्य जैन-धर्म को पहचान कर आचरण करो और जीवरक्षा के लिए मुखपत्ति आदि का उपयोग लो। इस प्रकार के वायु-वेग को बहते हुए देखकर प्रख्यात यतियो ने स्थिति पर अधिकार पाने के लिए कहना प्रारम्भ किया कि ये सब बातें आगमो और शास्त्रो के विरुद्ध है। यदि कोई इस विषय पर शास्त्रार्थ करना चाहता हो तो हम शास्त्रार्थ के लिए कृतसकल्प हैं। जब यह बात धीरे-धीरे फैलती हुई आचार्यश्री के शुभ कानो तक पहुँची, तो उन्होने भी इस चुनौती को स्वीकार कर लिया। साथ ही यह भी आचार्यश्री ने उद्घोष किया, कि यतिजन जब चाहे तब शास्त्रार्थ कर लें। हम अपनी ओर से सदा सन्नद्ध हैं।

यतियो ने अपने प्रमुख विद्वज्जनो को इसके लिए सूचना-पत्र भेजे और साथ ही दूसरे प्रयत्न भी किए, जिससे वे शास्त्रार्थ मे सम्मिलित हो। शास्त्रार्थ के लिए स्थान और दिन का निश्चय कर आचार्यश्री को भी सूचित किया गया। सूचना प्राप्त करते हुए आचार्यश्री निर्विलम्ब विहार कर निर्दिष्ट स्थान और समय

पर पहुँचे । एकत्र जनसमूह के सम्मुख आचार्यश्री ने शास्त्रो के प्रमाण प्रस्तुत करते हुए युक्तियो से भी, मुखपत्ति आदि का औचित्य सिद्ध कर दिया तो भी वे यतिजन सहमत नही हुए, प्रत्युत आग्रहवश यही कहते रहे कि मुनिजनो का प्रतिपादन आगमो और शास्त्रो के विरुद्ध है। इस बात को अनुचित समझते हुए विवेकी जनसमूह ने आचार्यश्री अमरसिंहजी महाराज की जय हो, कहकर विजेता उद्घोषित कर दिया और जय-जयकार करते हुए नगर भर मे आचार्यश्री का स्वागत किया गया ।

इसके पश्चात् हर्ष-शोक से दूर रहने वाले आचार्यश्री ने मरुधर-प्रदेश के छोटे-मोटे सभी ग्रामो का स्पर्श कर पुरातन जैन धर्म की स्थिति-काल के अनुकूल पुन. प्रवर्तना स्थापित की । सहस्रो-सहस्रो की सख्या मे आचार्यश्री के सम्यक्त्वांकित शिष्य बने ।

इस ओर आकर दीवान साहब खिवसीजी की जोधपुर पधारने की विनीत ने जोर पकडा । स्थिति पर विचार करते हुए आचार्यश्री अपने मुनिमण्डल के साथ विहार कर जोधपुर पहुँचे । उस समय आचार्यश्री और मुनिमण्डल के स्वागत के लिए स्वय जोधपुर-नरेश अपने राजमान्य सरदारो और प्रतिष्ठित नागरिको के साथ पधारे । धार्मिक जनता का तो कहना ही क्या ! स्त्री-पुरुष सभी हर्ष के साथ स्वागत और दर्शन-वन्दन के लिए उपस्थित थे ।

अन्त मे दरबार के आग्रह पर सभी मुनियो के साथ आचार्यश्री को राजमहल के मुख्य द्वार के गोखडे पर ठहराया गया । क्योकि जोधपुर-नरेश आचार्यश्री के दर्शनमात्र से ही भक्त हो गये थे । था कोई अनूठा चमत्कार उस दिव्यपुरुष मे, जो देखते ही उनके भक्त बन जाते थे ।

किन्तु कुछ मनुष्य ऐसे सब स्थानो और समयो मे देखे और सुने गये हैं कि जो किसी न किसी रूप मे महान् से महान् पुरुष के साथ अकारण दुर्भावनाएँ स्थिर कर लेते हैं, और विरोध अथवा कोई न कोई हेतु खडा कर देते हैं, जिससे कि उस विशिष्ट पुरुष को कुछ तो कष्ट हो । यह युग-युग का लेखा-जोखा है । इधर वैसे भी यतियो के सकेत से घूमने वाले लोग थे ही, कुछ कहा नही जा सकता ।

किन्तु जोधपुर-नरेश को इन लोगो ने भिडाया कि जब आप राजमहल के द्वार से पधारते है तो आचार्यश्री गोखडे मे विराजे रहते हैं, यह तो श्रीमान् का अपमान है । कहते हैं कि दरबार ने पहले तो इस बात पर ध्यान ही नही दिया और कहा कि पूज्य महात्मा हैं, विराजते है तो विराजे । इससे हमारा कोई अपमान नही होता । किन्तु बार-बार घुमा-फिराकर कहने से उस समय जोधपुर-नरेश ने यही अच्छा समझा कि आचार्यश्री को अन्य राजकीय भवन पर ठहरा दिया जाए। जिससे इन सब का बार-बार कहना-सुनना बन्द हो । अन्त मे तो वे नरेश ही थे ।

दूसरे दीवान साहव श्री खिवसीजी भी यहाँ नही थे, कोई नरेश को समझाता भी तो कैसे समझाता। इस प्रकार विरोधियो का यह षड्यन्त्र सफल हुआ। नरेश का आदेश हुआ कि आचार्यश्री को आदर के साथ अन्य किसी राजकीय भवन मे ठहरा दिया जाना चाहिये।

षड्यन्त्र का पता तब चला, जबकि आचार्यश्री को उनके मुनियो के साथ आसोप ठाकुर साहव की हवेली मे ठहराया गया। स्मरणीय वात यह है कि यह स्थान भी सोजत नगर की मस्जिद से भी अधिक विकट था। यह स्थान अपने नाम पर पहले ही से कलङ्कित था। इस स्थान पर बसने अथवा ठहरने वाले अनेक प्राणी अपने प्रिय प्राणो की आहुति दे चुके थे। कारण यह था कि इस के निर्माता ठाकुर साहव मरने के पश्चात् पिशाच बनकर इस हवेली मे आ जमे थे। ऐसे दुष्प्रसिद्ध स्थान पर आचार्यश्री को ठहराया गया।

यहाँ पर मुनियो के साथ आचार्यश्री दिन मे तो सुख-शान्ति के साथ विराजे, किन्तु रात्रि मे पिशाच का घोर उपद्रव प्रारम्भ हुआ। क्रूर पिशाच ने अपनी पैशाचिकता का अतिरेक कर दिया। किन्तु आचार्यश्री ने अपने आत्मबल, तप और जप से सब शारीरिक यातनाएँ सह ली और पिशाच ने भी अपना पराजय मान लिया। अन्त मे स्वत पिशाच ने कहा कि अच्छा आप तो यहाँ ठहर सकेंगे, किन्तु स्त्रियों को फिर भी नही आने देंगे। आचार्यश्री ने उत्तर दिया कि जहाँ हम ठहरते है, वहाँ पर स्त्री-पुरुष सभी आते हैं और हम किसी को मना नही करते। तब फिर पिशाच ने कहा, अच्छा स्त्रियाँ भी आ सकेंगी, किन्तु मासिकधर्म से युक्त स्त्रियाँ तो फिर भी नही आ सकेंगी। इस पर भी आचार्यश्री ने फरमाया कि हम इसमें भी कुछ नही कर सकते। क्योकि कौन किस स्थिति मे है यह हम नही जान सकते। इस पर पिशाच ने कहा, कि इस वात को मैं देख लूँगा, किन्तु आप तो सानन्द विराजिए।

कुछ भी हो, आचार्यश्री अपने मुनिमण्डल के साथ जब तक जोधपुर नगर में विराजे, वहाँ ही विराजे थे। यह आज भी हवेली विद्यमान है। वहाँ पर वह पाट भी आज तक विद्यमान है, जिस पर विराज कर आचार्यश्री व्याख्यान फरमाते थे। कहते हैं कि पाट का एक पाया, जो पिशाच ने तोड डाला था, शान्त होने पर उसने ही जिसको छोडा था, वैसा का वैसा आज भी उस स्थान मे प्रस्तुत है।

दीवानसाहव श्री खिवसीजी राजकीय कार्य समाप्त कर जब जोधपुर पहुँचे, तो सदा के अनुसार महल के द्वार के गोखडे पर आचार्यश्री के दर्शन करने के लिए गए। पहुँचने पर उन्हे बताया गया कि आचार्यश्री ने यहाँ से आसोप ठाकुर साहव की हवेली के लिए प्रस्थान कर दिया है। उन्हे यह जानकर बडा दुःख हुआ कि वे वहाँ पर कैसे ठहराये गए हैं? क्योकि उनको उस स्थान की वास्तविकता का परिचय

था। वे उसी समय आचार्यश्री के दर्शन करने के लिए पहुँचे और आचार्यश्री को सानन्द सुख-शान्ति के साथ विराजते हुए देखकर प्रसन्न हुए।

उन्होंने स्थिति पर प्रकाश डालने के लिए पूज्यश्री से अधिक आग्रह किया कि यह सब ऐसा कैसे हुआ ? किन्तु पूज्यश्री ने सब प्रश्नो का एक ही उत्तर दिया कि यहाँ पर आनन्द ही आनन्द है। साथ ही उन्होने स्पष्ट किया कि यदि हम यहाँ नही आते तो जोधपुर के स्पर्श करने मे कमी रह जाती। इस घटना से आचार्य श्री की महत्ता का सकेत प्राप्त होता है।

पूज्यश्री बड़े प्रभावी व्याख्याता आचार्य थे। उन्होंने हजारो भूले-भटके लोगो को सही रास्ता दिखाया और भ्रान्तियाँ दूर कर उन्होने मानव जाति का जो उपकार किया है, उसके लिए मरुधर-प्रदेश साक्षी एव ऋणी है।

उनके मरुधर प्रदेश के प्रवेश के समय बडी विकट स्थिति थी। कोई यतियो के पाखण्डो के विरोध मे अपना मुख नही खोल सकता था। ऐसी स्थिति मे भी आचार्य श्री अमरसिंह जी महाराज ने स्थानकवासी जैन मुनियों के मार्ग को प्रशस्त किया और श्रमण परम्परा की पुन स्थापना की, यह उत्कर्ष आचार्यश्री के चरित्र मे और भी श्रीवृद्धि करता है। वैसे उन्होने मुनिराजो मे अनेक स्वस्थ परम्पराओ का श्रीगणेश किया, इस बात को ऐसा कौनसा जैनमुनि-सम्प्रदाय है, जो नही जानता !

उपर्युक्त कथावस्तु से सम्बद्ध कतिपय अन्य विशेषताओ का मुनिश्रीजी ने यथास्थान सूत्ररूप मे वर्णनात्मक परिचय दिया है। यह इस काव्य के अध्ययन से विवेकी विद्वज्जन स्पष्ट रूप मे अवगम कर आनन्दित हो सकते हैं—ऐसा हमारा विश्वास है।

अन्त मे आचार्य श्रीअमरसिंहजी महाराज को आद्यसम्प्रदाय का आचार्य मानकर आचार्यपट्टावली प्रस्तुत की गई है। पट्टधर आचार्य की विशेषता का भी चित्रण किया गया है, यह इस पट्टावली की विशेषता है। अधिक जानने के लिए कृपया पट्टावली देखिए।

साथ ही उक्त कथावस्तु मे वर्णन के साहाय्य के लिए मुनिश्रीजी ने कवि के अधिकार के अन्तर्निहित योगी जैसे पात्र की विशेष सृष्टि के द्वारा पात्र की विशेषता को व्यक्त किया है, जिससे रोचकता प्रतीत होती है।

इसके स्पष्ट करने का अभिप्राय यह है कि इतिहास के पृष्ठो पर अक्षरित वृत्त से इस अश का कोई सम्बन्ध नही है। यह काव्य है और काव्य के सौष्ठव के लिए कल्पना का विशेष अधिकार कवि के अधिकार क्षेत्र मे स्वत निहित है। इसलिए इतिहास के अक्षरित वृत्त को कवि के विशेषाधिकार की परिधि का उल्लघन करने का दायित्व अपने ऊपर नही लेना चाहिए—यह हमारा सविनय अनुरोध है।

संस्कृतभापा के साहित्य के लक्षणग्रन्थो के निर्माता आचार्यों ने महाकाव्य के स्वरूप का निर्णय करते समय यह निश्चय किया है, कि किसी धीर उदात्त नायक को लेकर सर्गो मे बँधा हुआ प्रबन्ध होना चाहिए। इसलिए मुनिश्रीजी ने अपने आद्य सम्प्रदाय के आचार्य श्रीअमरसिंह मुनिमहाराज का चयन किया है। साथ ही सर्गों की संख्या और आकार की भी निर्धृति की गई है। इससे ऐसा लगता है कि मुनिश्रीजी ने साहित्याचार्यो के निश्चय का यथासम्भव पालन कर काव्य के स्वरूप को उचित दिशा मे सँवारने का प्रयत्न किया है। यह बात दूसरी है कि सर्गों के आकार-प्रकार मे अन्तर है।

एक विचार है कि यदि कोई खटकती हुई भी बात हो, किन्तु विवशता-विशेष से उसको सह्य मानकर विवेकी साहित्य के आचार्य उस कृति का भी मान करने लगे तो कितना उत्तम हो! ऐसा लगता है कि संस्कृत के साहित्याचार्यो की अनुदारता के कारण संस्कृत के काव्य की मन्दाकिनी का प्रवाह रुका ही नही सूख भी गया है। किन्तु समय की माँग है कि संस्कृत के कवियो को मुनिश्रीजी के समान निर्भीक होकर काव्य के प्रवाह को कम से कम सूखने तो नही देना चाहिए। प्रवाह अन्वर्थ बन सके तब तो कहना ही क्या है! सम्भवतः ऐसी ही बातो को देखकर किसी नीतिकार ने कहा है—

गच्छतः स्खलन क्वापि, भवत्येव प्रमादत ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र, समादधति साधवः ॥

'गोपुच्छसमानाकार' की भावना के अनुसार काव्य का आकार वास्तव मे उचित है। क्योकि पूँछ का आदि भाग मोटा होता है और क्रम से नीचे को पतला होता जाता है। सो वैसा ही आकार इस काव्य का है। क्योकि पूर्व के सर्गों मे मोटे-मोटे छन्द हैं और फिर क्रम से पतले से पतले होते चले गए है। और यदि पूँछ के बालो वाले भाग से आकार का सम्बन्ध है, तो भी कोई काव्य के आकार मे अन्तर नहीं आता। अभिप्राय यह है कि काव्य का आकार भी निश्चय के अनुसार ही है।

किन्तु कुछ भी हो, एक बात तो माननी पडेगी, कि वर्ण्य विषय के अनुसार मुनिश्री जी ने अपने कविकर्त्तव्य का निर्वाह बडे सुन्दर ढग से किया है। इस काव्य को महाकाव्य की श्रेणी मे स्थिर किया जा सकता है, कि नही, इसमे भले ही विवाद हो, यह हो सकता है, किन्तु काव्य की प्रतिष्ठा को एक कवि के रूप मे मुनिश्री जी ने जिस योग्यता से निभाया है, यह कुछ कम प्रशसा की बात नही है। आज के समय मे एक संस्कृत के काव्य की रचना स्वय मे भी कुछ कम स्तुत्य नही है।

जहाँ तक काव्य के छन्दो का प्रश्न है, वहाँ तक उत्तर मे कहा जा सकता है, कि मुनिश्री जी निरपवाद है। छन्दो के नियमो के निर्वाह मे परम नैपुण्य की झलक

कोधती-सी जान पडती है। इसका प्रमाण है कि काव्य के आदि से अन्त तक देखने पर यतिभङ्ग ढूंढने-से भी नही मिलता, गण-दोष की वात तो वहुत दूर की है।

वर्णन के लिए किसी छन्द विशेप की प्रियता स्थिर करना कठिन है। क्योकि काव्य मे उन्होंने यत्र-तत्र इस वात को स्पष्ट कर दिया है, कि किमी भी छन्द मे अपने भाव को व्यक्त किया जा सकता है। फिर भी वंशस्थ वृत्त और उपेन्द्रवज्रा वृत्त तो आपके सधे हुए-से लगते हैं।

महाकवियो के समान, छन्द-पूर्ति के लिए 'तु, हि, च, स्म, खलु, वै' का प्रयोग मुनिश्री जी की प्रवृत्ति मे है ही नही। अपितु और अर्थ के लिए 'च' का अध्याहार करना पडता है, जहाँ परम आवश्यकता ने ही वाधित कर दिया हो, तभी 'च' शब्द का उपयोग किया हो, यह वात कोई और है।

मुनिश्री जी की भापा सीमित और सरल है, किन्तु वह व्याकरण-सम्मत अवश्य है। साहित्य की विधा से कुछ यह अखरती-सी वात लगती है, किन्तु अपनी-अपनी क्षमता के अनुमार ही तो व्यक्ति शब्द-योजना कर पाता हैं। इमलिए भापा का सीमित विशेपण युक्तियुक्त प्रतीत होता है। सस्कृत के काव्यसाहित्य मे इसलिए महाकवि माघ के लिए प्रशमा के प्रकरण मे **'नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते।'** कहा जाता है। हमारी कल्पना मे यहाँ काकूक्ति है। जैसे कि **नवसर्गगते माघे** अर्थत् **माघरचिते काव्ये नवशब्द** अर्थात् नवीन शब्द **न विद्यते इति न, अपितु विद्यते एव**।

इतने पर भी दुरुहार्थता का नाम नही लिया जा सकता, यह मुनिश्री जी की एक विशेपता है। साथ ही दूरान्वयिता अवश्य है, इम वात का प्रतिवाद भी नही किया सकता। किंतु सहृदय कविजन —

'एको हि दोषो गुणसन्निपाते, निमज्जतीन्दो किरणेष्विवाङ्कः' के न्याय से इसको सह मकेंगे, ऐसा विश्वास हम कर सकते हैं।

पुनरपि सस्कृत के व्याकरण के नियम वड़े जटिल हैं। इनसे यशस्वी महाकवि भी उलझे विना नही रहे। किन्तु इसका यह अर्थ नही समझ लेना चाहिए, कि उन्होंने जान-वूझ कर व्याकरण के नियम की उपेक्षा की, किन्तु स्वाभाविक रूप मे उपेक्षा वन गई। इसके साथ व्याकरण ऐसा उपकारक भी है कि उनके समाधान का उपाय भी वता देता है। इतने पर भी एक महाकवि के प्राशस्त्य मे व्याकरण के नियम का निर्वाह भी सगृहीत। इस दृष्टि से देखे तो यह काव्य स्तरगत है, ऐसा प्रतीत होता है। 'किन्तु, किन्तु' की कुटिलता से कौन वचा है और वच सकता है!

अत एव गण-व्यतिरेक और पद की प्रतिष्ठा नही वच सकी। तथापि प्रजातन्त्र के समान कवितन्त्र मे वहुमत का आदर होता है। इसलिए जो एक वार चुन लिया गया, वह चुन गया। तदनुसार गण और पद एव इट् और अनिट् जहाँ चिन

गये, चिन गये । यह हो सकता है कि वे अति प्रयत्न से सन्निहित न किए जाएँ, तो भी वे गण और पद के हित मे चुन हुए सहज उपादान तो हैं ही । इस प्रकार वे भी अपना महत्व रखते है । क्योंकि वे काव्य मे चिन गए हैं । [illegible] ने इस प्रकार के निर्वाचन मे अपने समाधान का मत प्रकट कर दिया है ।

भाव अधिक स्पष्ट है । इसलिए पढ़ने के साथ आगे क्या है ? इसके जानने की इच्छा होती है । अर्थ के परिज्ञान मे किसी प्रकार के बौद्धिक व्यायाम की आवश्यकता का अनुभव नही होता । क्योंकि सरल, सरस और अनुकूल शब्दो के वाक्यों की रचना सर्वाधिक है । किन्तु वर्णन के साथ व्यग्य अर्थ स्वत. अभिव्यक्त होता है, यह बात तो इस काव्य के लिए सुवर्ण मे सुगन्ध का कार्य करती है । अत एव प्रसाद गुण की विशेषता है । शान्त रस प्रधान है, किन्तु प्रसंगात् अन्य रस भी सहकारी बने हुए हैं । इस बात को हम काव्य के उद्धरण के साथ प्रस्तुत करें, यह हम उचित नही समझते । क्योंकि हम को आपकी योग्यता पर अपनी योग्यता से अधिक विश्वास है । दूसरे वह समीक्षा के क्षेत्र के अधिकार की बात है । सम्पादक के क्षेत्र के अधिकार को अतिक्रमण करने का व्यर्थ मे साहस क्यों करना चाहिए ?

अलङ्कारो के समावेश की मुनिश्रीजी को कोई चिन्ता नही है । स्वाभाविक अनेक अलङ्कार शब्द और अर्थ की प्रधानता के साथ वर्णन से आकृष्ट होकर प्रविष्ट हो गए हैं । सम्भवत हमारे इस कथन पर सहसा विश्वास न भी हो, भले ही न हो, किन्तु काव्य मे अर्थान्तरन्यास तो बलात् प्रवेश प्राप्त कर ही रहा है, क्या कोई इस काव्य को देखकर निषेध कर सकता है ? यहाँ पर भी हम उद्धरण प्रस्तुत नहीं करेंगे । क्योकि काव्य आपके सम्मुख है । सम्भवत. इन सब बातो को लेकर ही महाकवि जगन्नाथ पाण्डितराज ने कहा है कि—

'न हि कस्तूरिकामोद शपथेन विभाव्यते ।'

सम्प्रति सबके अन्त मे सम्पादन का भार मुझ जैसे अनाधिकारी व्यक्ति पर रखकर पूज्य मुनिश्रीजी ने अनाधिकारी को अधिकारी होने का आशीर्वाद दिया है । मुनिश्रीजी महाराज गुरुदेव भी है, उपाध्याय भी हैं, अध्यात्मयोगी भी हैं और सर्वाधिक ध्यानतपोऽधिराज हैं, इसलिए—

मूक करोति वाचाल पङ्गु लङ्घयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमह वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥

जैसा दृश्य उत्पन्न हो, तो कोई आश्चर्य की बात नही है । किन्तु अल्पज्ञ होने के कारण हृदय मे थोडा-बहुत सकोच तो है ही ।

परन्तु वास्तविक प्रेरक एव विशेपोत्साहक श्रीयुत देवेन्द्र मुनिजी महाराज हैं । आप श्री स्वय विशिष्ट साहित्य मनीषी, जैन साहित्य, दर्शन, आगम और शास्त्रो के

तो प्रतिभावान् अधिकारी लेखक है ही, किन्तु प्रकारान्तर से हिन्दी साहित्य की मूक सेवा के भी उपासक हैं, सो इन मुनि महाराज ने, जो गुरुदेव के प्रधान शिष्य है, सकेत दिया कि गुरुदेव जिस काव्य की यथास्थिति रचना करते जा रहे है, आप उसको देखकर सकलित करते चलिए।

इस प्रकार सम्पादन का कार्य रायचूर (कर्णाटक) मे वर्षावास पर पूर्ण हुआ। मुनिजन पदविहार के समय सभी बातो का ध्यान रखते हैं और विभिन्न प्रकार के परीषह धारण करते हैं, यह आजनवेद्य विषय है। इन परिस्थितियो के रहते हुए भी गुरुदेवश्री की काव्यसाधना, उनके संस्कृत भाषा के अनुराग का एक उदाहरण है।

भविष्य में भी एक महाकाव्य की रूपरेखा का बिखरा हुआ चित्र गुरुदेवश्री के मानस-पटल पर छाया हुआ है, उसे मूर्त्तरूप देने के लिए धीरे-धीरे प्रयत्न चल रहा है। आशा ही नही, विश्वास है, कि वह प्रयत्न सस्कृत-काव्य-भडार की श्री वृद्धि मे सहायक होगा और धार्मिक जनता के स्वाध्याय का अवलम्बन होगा।

किमधिकं विद्वत्सु—

दीपावली
वर्षावास
बेंगलूर

रमाशंकर शास्त्री

[सम्पादक]





उदार-अर्थ सहयोगी

श्री धनराजजी चुन्नीलालजी बाठिया : एक परिचय

भारतीय सस्कृति के मननशील मनीषियो ने जीवन के सम्बन्ध में गहराई मे चिन्तन करते हुए कहा है 'जीवन खिले हुए फूल की तरह सुगन्धित होना चाहिए, जो अपनी मधुर सौरभ से दिग्दिगन्त को सुवासित करता रहे। तप, जप, ध्यान, दान, शील भाव आदि सद्गुणो से जीवन महकता रहे।

प्रस्तुत कसौटी पर जव हम धर्मप्रेमी सुश्रावक धनराज जी बाठिया के जीवन पर चिन्तन करते है तो उनका जीवन एक परम यशस्वी जीवन प्रतीत होता है।

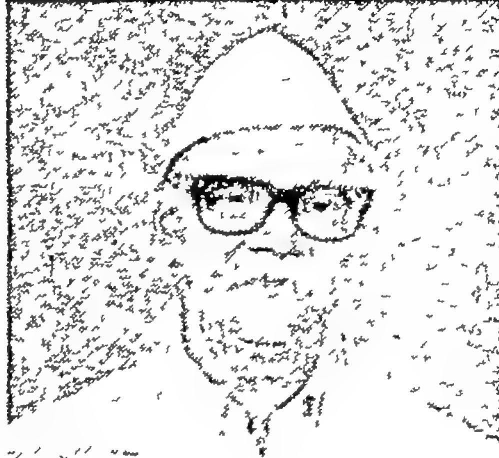
आपका जन्म पूना जिले के औध नामक ग्राम में दिनाङ्क २ मार्च १९२२ मे हुआ। आपका अध्ययन हाईस्कूल तक हुआ। उसके पश्चात् 'टैलरिंग कोर्स' मे विशेष योग्यता प्राप्त की और आपने सन् १९६० मे रेडिमेड कपड़े बनाने के लिए कार्य प्रारम्भ किया। आज आपकी फर्म में सौ से भी अधिक व्यक्ति कार्य करते है। फर्म का नाम है के० जी० बाठिया ब्रादर्स, ८९।१ भवानी पेठ, पुणे (महाराष्ट्र) ४११००२। आप बिन्नी मिल्स (मद्रास) के होलसेल वितरक भी है। आपने अपने प्रवल पुरूपार्थ से व्यापार मे चार चाँद लगाए है। आपका स्वभाव वहुत ही मिलनसार, मधुर है। साथ ही आप सच्चरित्रनिष्ठ व्यक्ति है। जैन धर्म के प्रति आपकी गहरी निष्ठा है और अन्य धर्म सम्प्रदायो के प्रति भी आपके मन में सहानुभूति है। अनेक सामाजिक, धार्मिक कार्यों के प्रति आपकी रुचि है और यथाशक्ति आप सहयोग भी प्रदान करते रहते हैं।

आपकी धर्मपत्नी का नाम झमकाबाई है, जो अत्यन्त भद्र प्रकृति की धर्म परायणा महिला है। आपको सदा धार्मिक कार्यों के लिए सहयोग और प्रेरणा प्रदान करती रहती है। आपके तीन सुपुत्र हैं, गुलाबचन्द जी, फूलचन्द जी, और सुहासचन्द जी। ये तीनो भाई त्रिमूर्ति की तरह हैं। आपका सम्पूर्ण परिवार परम श्रद्धेय सदगुरुवर्य प्रसिद्धवक्ता राजस्थान केसरी अध्यात्मयोगी उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी के प्रति अत्यन्त श्रद्धालु है।

श्री अमरसूरि काव्य ग्रन्थ रत्न के प्रकाशनार्थ आपका हार्दिक अर्थ सहयोग हमें सप्राप्त हुआ है तदर्थ हम सस्था की ओर से आपका आभार मानते है। पूर्व भी आपका सहयोग सदा मिलता रहा है और भविष्य मे भी सदा मिलता रहेगा, इमी मगल आशा के साथ पुन आभार मानता हूँ।

—चुन्नीलाल धर्मावत





गुरुभक्त, उदारचेता, धर्मप्रेमी, सुश्रावक

श्रीमान धनराज जी चुन्नीलाल जी बांठिया

[पूना]



श्रद्धा के दो बोल

परम श्रद्धेय सद्गुरुवर्य उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी म० स्थानकवासी जैन समाज के एक जगमगाते नक्षत्र है। वे जीवन के अमर कलाकार है। वे पारस पुरुष हैं, उनके सम्पर्क मे आते ही जीवन मे पाप की कालिमा नष्ट हो जाती है और पुण्य की पावन प्रभा जगमगाने लगती है।

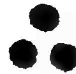
सन् १९७५ के पूना वर्षावास के सुहावने अवसर पर मैं सद्गुरुवर्य के निकट सम्पर्क मे आया। उसके पूर्व भी उनके दर्शन किये थे पर सेवा का लाभ नही ले सका था। जब से मैं और मेरा परिवार सद्गुरु देव श्री के सम्पर्क मे आया तब से हमारे जीवन मे एक अभिनव परिवर्तन हो गया है। धर्म के प्रति सहज लगाव हो गया है। महापुरुषो के जीवन की यह महान विशेषता है कि उनके जीवन का कण-कण और अणु-अणु प्रेरणा प्रदान करता है। सद्गुरु श्री का जीवन प्रेरणा का पावन स्रोत है।

श्रद्धेय सद्गुरु देव के विराट् काय अभिनन्दन ग्रन्थ मे मैं अपनी अनन्त श्रद्धा सद्गुरुवर्य के पावन चरणो में समर्पित करना चाहता था पर ग्रन्थ छप चुका था इसलिए चाहते हुए भी मैं अपने विचार-पुष्प समर्पित न कर सका, किन्तु आपश्री की असीम कृपा से प्रस्तुत ग्रन्थ रत्न के प्रकाशन मे 'पत्र पुष्प' के रूप मे अर्थ सहयोग प्रदान करने का सुनहरा अवसर मुझे सम्प्राप्त हुआ एतदर्थ मैं अपने आपको गौरवान्वित अनुभव करता हूँ।

सद्गुरुदेव की असीम कृपा मेरे पर और मेरे परिवार पर रही है। जिसके फल स्वरूप हम प्रतिपल प्रतिक्षण प्रगति के पथ पर निरन्तर बढ रहे हैं। उनकी अपार छत्रच्छाया हमारे पर सदा बनी रहे यही मेरी उनके श्रीचरणो मे सविनय प्रार्थना है।

—धनराज चुन्नीलाल बांठिया, पूना

अनुक्रमणिका



श्रीमद् अमरसूरि काव्यम्

काव्यम्

इदं पुरा कल्पितमेवमासीद्,
अवाप्तकाले रचना-विशेषम् ।
कृतेऽपि काव्ये पुनरेव काव्यम्,
रचेयमेवं मनसोऽनुकूलम् ॥

पुनर्मयैतद् रचितं सुकाव्यम्,
शुभेषु मासेषु चतुर्षु वृष्टेः ।
न्यवासि कर्णाटक-राज्यकान्तर्-
गते पुरे सम्प्रति रायचूरे ॥

अतो मया वर्णितमेतदेवम्,
मनःप्रसादाय पुनर्मुनीनाम् ।
विपश्चितां चित्तमुपासितुं वा,
निरेनसो मे मनसस्तृषायै ॥

न नाम सामर्थ्यमिहेदमाप्तम्,
कवेश्चमत्कारिकृतेर्मयाहो ।
तथापि काचिन्मम शब्दसृष्टिर्-
भवेदमीषां विदुषां समाजे ॥

समर्प्यतेऽन्तःकरणेन तेन,
प्रकृष्टभावेन मया नतेन ।
गुरोः प्रभोर्मे तपसो विधातुः,
पदाब्जयोस्तारकचन्द्रनाम्नः ॥

—पुष्करमुनिना

प्रथमः सर्गः[1]

(१)

रागद्वेषौ विषमविषयौ शत्रुरूपौ विजित्य ,
ज्ञाता जातः सकलजगतो वस्तुजातस्य पूज्यः ।
शक्रादीनामपि दिविषदां भारतीनामधीशः ,
तीर्थेशस्तं भुवनविदितं त्रैशलेयं नमामि ॥

अन्वयः—(यो) भारतीनामधीश शक्रादीना दिविषदा देवाना पूज्य., तीर्थङ्करो भगवान् शत्रुरूपौ विषमविषयौ रागद्वेषौ विजित्य सकलजगतो वस्तुजातस्य ज्ञाता जातः, तमेतादृश भुवनविदित त्रैशलेय त्रिशलाया अपत्य पुमास वर्द्धमान पुष्करमुनिरह नमामि ।

अर्थ—जो वाणियो के स्वामी, इन्द्र आदि देवताओ के पूज्य तीर्थङ्कर भगवान् शत्रु जैसे विषम विषय वाले राग और द्वेष को जीत कर समस्त ससार की वस्तुओ के ज्ञाता बने, ऐसे विश्वविख्यात त्रिशला माता के पुत्र उन वर्द्धमान को, मैं पुष्करमुनि प्रणाम करता हूँ ।

(२)

सत्सु श्रेष्ठं श्रुतिमतियुतं ज्ञानिगुण्येषु वन्द्यम् ,
लक्ष्मीवन्तं प्रथितसमितिं सिद्धगुप्तिं प्रसिद्धम् ।
नत्वाचार्यं श्रमणममरं सिंहमेवाभिधानम् ,
तस्यैवैतच्चरितमतुलं तायते वित्तवृत्तम् ॥

अन्वयः—श्रुतिमतियुत ज्ञानिगुण्येषु वन्द्यं प्रथितसमितिं सिद्धगुप्ति प्रसिद्ध सत्सु श्रेष्ठम् आचार्यम् अमरसिंहाभिधान नत्वा, पुष्करमुनिना मया तस्य एव एतद् वित्तवृत्तम् अतुल चरित तायते ।

अर्थ—श्रुति और मति से युक्त, ज्ञानियो के गुणियो मे वन्दनीय, समितियो के पालक, गुप्तियो के साधक, प्रसिद्ध मन्तवर आचार्य अमरसिंहमुनि महाराज को प्रणाम कर, मुझ पुष्करमुनि के द्वारा उन आचार्य महाराज का ही यह जाना हुआ अनुपम चरित विस्तृत किया जा रहा है ।

---

१. सर्गेऽस्मिन् 'मन्दाक्रान्ता म्भौ न्तौ तगौ ग् समुद्रर्तुस्वरा' श्रीपिङ्गलाचार्यस्य छन्द शास्त्रात् सूत्रमेतत् ।

(३)

मध्ये द्वीपं ललितरचन सर्व सौविध्यलीलम् ,
दिल्लीत्याख्य प्रथितधरिणीपालभालेतिवृत्तम् ।
विश्वख्यातं नगरमतिभ राजते भारतीयम् ,
इन्द्रप्रस्थं व्यलसदिह वा साम्प्रतं लोकतन्त्रम् ॥

अन्वयः– प्रथितधरिणीपालभालेतिवृत्त सर्वसौविघ्यलील ललितरचन मध्येद्वीप विश्वविख्यातम् अतिभ नगरम् अस्ति । अस्ति भवन्तीत्यपरप्रयुज्यमानोऽप्यस्तीति न्यायात् । इह वा कदापि इन्द्रप्रस्थ व्यलसत्, साम्प्रत भारतीय लोकतन्त्र राजते ।

अर्थ - जिसमे प्रसिद्ध राजाओ के मस्तको का इतिहास है, एव सब सुविधाओ की लीला है, जिसकी सुन्दर रचना है, ऐसा द्वीप के मध्य मे ससार का जाना-माना चमकता हुआ दिल्ली नाम का नगर हैं। यहाँ पर कभी इन्द्रप्रस्थ शोभित था। आज यहाँ भारतीय लोकराज्य प्रतिष्ठित है।

(४)

दिल्लीत्याख्ये विततनगरे लब्धकीर्त्तौ सुवशे ,
ओसावाले प्रसितमहिमावाप्तधीर्देवसिहः ।
जातस्तस्य प्रथितयशसि द्योतयन्त्यां सुपत्न्याम् ,
लोके ख्यातोऽमरशिशुरयं सूनुरत्नं श्रिया सः ॥

अन्वयः—दिल्लीत्याख्ये विततनगरे लब्धकीर्त्तौ, ओसावाले सुवशे प्रसितमहिमावाप्तधी, देवसिहो जात । तस्य द्योतयन्त्या प्रथितयशसि सुपत्न्या श्रियाम् अय जात, स सूनुरत्न लोके, अमरशिशु. ख्यात (अभवत्) ।

अर्थ—दिल्ली नामक विशाल नगर मे प्रसिद्ध ओसवाल वश मे सदातन के महत्त्व से प्राप्त बुद्धि वाले सेठ देवसिहजी उत्पन्न हुए थे। उनकी झलकती हुई कीर्तिमती धर्मपत्नी कमलादेवी (लक्ष्मीवाई) की कुक्षि से जो पुत्ररत्न हुआ, वह यह अमर शिशु है, यही अमरसिहमुनि के नाम से प्रसिद्ध हुए।

(५)

प्राप्योत्पत्तिं सघनविपिने सिंहशावोऽप्यधीरः ,
पारेकृत्यं सृजति सहसा भीमकाये गजेन्द्रे ।
तद्वद् बालोऽमरशिशुरयं युक्तिमद्भिर्वचोभि· ,
चामत्कृत्यं नयति विदुषां मण्डलं रञ्जनाय ॥

अन्वयः—सघनविपिने उत्पत्ति प्राप्य अपि अधीर. सिंहशावो भीम-काये गजेन्द्रे सहसा पारेकृत्यं सृजति, तद्वद् अमरशिशु अय वाल युक्ति-मद्भिः वचोभि विदुषा मण्डल रञ्जनाय चामत्कृत्य नयति ।

अर्थ—जैसे कि सघन वन मे उत्पन्न होकर सिंह का चञ्चल बच्चा. भीम जैसे शरीर के हाथी पर एक साथ आक्रमण कर ठिकाने लगा दता है, उसीप्रकार अमरसिंह छोटे वालक होते हुए भी युक्तियुक्त वचनो से विद्वत्समाज को प्रसन्न रखने के लिए चमत्कार दिखाते थे ।

(६)

विद्यां प्राप्तो भवति सतताभ्यस्तपाठो मनुष्यः ,
विद्योद्योगः फलति न सदा कर्मबद्धस्य तस्य ।
दृष्टो जन्यैः कतिपयदिनैर्लब्धविद्योऽमरोऽयम् ,
भव्यो जीवो जनयति मुदं पूर्वपुण्याप्तजन्मा ॥

अन्वयः - सतताभ्यस्तपाठ मनुष्य विद्या प्राप्तो भवति, (किन्तु) कर्मबद्धस्य तस्य सदा विद्योद्योग न फलति । (किन्तु) जन्यै दृष्ट , (यत्) अयम् अमर. कतिपय दिनै लब्धविद्य· (अभवत्) । (यत) पूर्वपुण्याप्तजन्मा भव्य. जीव मुद जनयति ।

अर्थ—निरन्तर पढे हुए का अभ्यास करने वाला मनुष्य विद्या प्राप्त करता है अर्थात पढ-लिखकर विद्वान् हो जाता है । किन्तु सभी इस प्रकार पढ-लिखकर विद्वान् नही हो पाते, क्योकि कर्मो से बंधा हुआ मनुष्य विद्या के उद्योग मे सदा सफल हो, यह नही हो पाता । किन्तु लोगो ने देखा कि यह अमरसिंह कुछ ही दिनो मे पढकर विद्वान् हो गया । देखा गया है कि पूर्वपुण्य से जन्म लेकर ही भव्य प्राणी हर्ष पैदा करता है, किन्तु प्रत्येक ऐसा नही कर सकता ।

(७)

पारं लब्ध्वा मुनिवर गुणग्रन्थियुक्तस्य शीघ्रम् ,
क्षोद क्षेमं मनसि जनयन् शास्त्रतत्त्वस्य राशेः ।
भ्रामं भ्रामं कृतमतिरसौ संयमे बद्धदृष्टिः ,
जातस्त तु प्रभवति तदा कर्मवाहो विवाहः ॥

अन्वयः—मुनिवरगुणग्रन्थियुक्तस्य शास्त्रतत्त्वस्य राशे. पार शीघ्रं लब्ध्वा मनसि क्षोद-क्षेम जनयन् भ्राम भ्राम कृतमति असौ भवति, तदा संयमे बद्धदृष्टि जात. । किन्तु त कर्मवाह विवाह. प्रभवति ।

अर्थ—मुनिवरो के गुणो की गाँठ से युक्त शास्त्रो के तत्त्व के समूह के पार को शीघ्र पाकर मन मे क्या छोडना और क्या रखना इसको विचारता हुआ घूम-घूमकर पक्का हो जाता है, तो फिर वह अमरसिंह सयम के विषय मे ही विचार को दृढ कर लेता है। किन्तु तव उस पर कर्मो को ढोने वाला विवाह प्रभाव डालने लगता है।

(८)

पित्रोराज्ञां शिरसि कुरुते प्राकृतः पूरुषोऽपि ,
प्राप्तादेशो विनयमनुग कर्त्तु मन्यत्कथ स्यात् ।
भव्याकारो गुणगणतनु कामलेयोऽमरोऽयम्[1] ,
हेतोस्तस्मात्परिणयममु धर्त्तु मेव प्रवृत्त ॥

अन्वय.—प्राकृत पूरुषोऽपि यदा पित्रो आज्ञा शिरसि कुरुते, तदा विनयम् अनुग प्राप्तादेश अन्यत् कर्त्तुम् कथ स्यात् । तस्मात् हेतो. गुण-गणतनु. भव्याकार कामलेय अयम् अमरसिंह एवम् अमुम् परिणय धर्त्तु प्रवृत्तः (अभवत्) ।

अर्थ—साधारण मनुष्य भी जब अपने माता-पिता के आदेश को शिर पर धारण करता है तव विनयी आज्ञाकारी अमरसिंह भला किस प्रकार टाल सकते थे। इसी कारण से अत्यन्तगुणी सुन्दर शरीर कमला माता के पुत्र ये अमरसिंह इस विवाह को अङ्गीकार करने के लिए प्रवृत्त हुए।

---

१ कमला पुत्र

(९)

कर्मोत्पन्नं प्रभवति जनं कर्त्तुमेवो-च्चनीचम् ,
तच्चैवेमं रचयति परं सार्वभौमप्रवाहम् ।
तस्मादन्यत् किमपि न तथा सारभूतं समर्थम् ,
तेना–बद्धोऽमर उदवहद् श्रीमती धर्मपत्नीम् ॥

अन्वयः—कर्म (कर्त्तुं) उत्पन्नं जनम् उच्च-नीच कर्तुं प्रभवति। तत् कर्म च इमम् परम् सार्वभौमप्रवाह रचयति। तस्मात् अन्यत् किम् अपि तथा सारभूत समर्थं न (अस्ति)। तेन आबद्ध अमरसिह. श्रीमती-धर्म-पत्नीम् उदवहत्।

अर्थ—कर्म उत्पन्न हुए मनुष्य को ऊँच-नीच बनाने के लिये प्रभाव डालता है, और वही कर्म इस 'दूसरे सर्वप्रभुत्व सम्पन्न प्रवाह की रचना करता है। इससे अन्य कोई भी मूल के समान समर्थ नही है। अत उस कर्म से घिरे हुए अमरसिंह ने शोभाशालिनी कन्या से विवाह किया।

(१०)

भुक्त्वा भोगान् नियमितरतीन् याति लोको विरक्तिम् ,
विश्वस्येमं प्रकटनियमं कोऽतिगन्तुं सुशक्तः ।
अस्तीत्येवं कथमपि तथाप्यन्यथा कर्त्तुमेतम् ,
आश्चर्य मे पुनरपि नरो भोगवृत्ति तनोति ॥

अन्वयः—लोक नियमितरतीन् भोगान् भुक्त्वा विरक्ति याति, इमम् प्रकटनियम कः अतिगन्तु सुशक्त. (अस्ति) ? अर्थात् न कोऽपि सुशक्तोऽस्ति। एवम् अस्ति इति, तथापि एत नियमम् अन्यथा कर्त्तुं नर भोगवृत्ति तनोति अतो मे आश्चर्यम् (अस्ति)।

अर्थ—मनुष्य नियमित दाम्पत्यादि प्रेम के भोगो को भोगकर विरक्त हो जाता है, अर्थात् ससार के ये रागरग उसको सब नीरस जान पडते है। यह ससार का अटल नियम है तो भी कुछ मनुष्य समार के अटल नियम को टालने मे लगे हुए हैं। प्रश्न यह है कि क्या कभी कोई अटल नियम को वदल सकता है ? अर्थात् नही वदल सकता। इतने पर भी मनुष्य नियम वदलन के लिये भोगवृत्ति को बढाता ही जा रहा है, यह मुझे आश्चर्य लगता है।

(११)

अन्ह्येकस्मिन् स्वयमयमहो चिन्तितो यातयामः ;
प्रातर्वक्तुं प्रभवति सदा मानस दुःखमेतद् ।
पित्रोरग्रे कथितमपि तद् किन्तु वैराग्यमेवम् ,
मन्तुं तस्य व्यथितमनसस्तौ समर्थौ न जातौ ॥

अन्वय.—अहो एकस्मिन् अह्नि स्वयम् अय चिन्तित· यातयामः (आसीत्) तदा प्रात पित्रो अग्रे मानस दु ख वक्तु प्रभवति, एतत् कथितम् अपि तद् तस्य व्यथितमनस· दु ख वैराग्यम् (अस्ति) एव मन्तु तौ समर्थौ न जातौ ।

अर्थ—अरे एक दिन स्वय यह अमरसिंह चिन्तित हो रात्रि को व्यतीत कर प्रात· माता-पिता के सामने जब मन के दु ख को कहने लगता है तो इस कहने पर वह, उस दुःखी का दु ख वैराग्य है, इम प्रकार मानने के लिये वे दोनो माता-पिता समर्थ नही हो पाए।

(१२)

श्रावं श्रावं त्वमरविरतेर्वृत्तमेतत्प्रवृत्तम् ,
पित्रोश्चित्तं सृजति सरणिं कामसञ्ज्ञानुवृत्तेः ।
दृष्ट्वा सर्वं विरतहृदयो ज्ञाततत्त्वोऽमरोऽसौ ,
जानात्येतत् सहजमतिकृद्-प्रेम पाशस्य कृत्यम् ॥

अन्वयः—अमरविरते एतत् प्रवृत्तम् वृत्त श्राव श्राव पित्रो चित्तम् कामसञ्ज्ञानुवृत्ते सरिणम् सृजति । एतत् सर्वं दृष्ट्वा ज्ञाततत्त्व. असौ अमर सहजमतिकृत्-प्रेमपाशस्य कृत्य जानाति ।

अर्थ—अमरसिंह की उदासीनता के फैले हुए इस समाचार को बार-बार सुनकर उसके माता-पिता का हृदय कामवासना के धन्धे के मार्ग को रचने लगता है, अर्थात् इस अमरसिंह को ससार मोह-जाल मे फँसा देना चाहिए। जिससे कि इसकी उदासीनता नष्ट हो। किन्तु इस सबको देखकर वह अनुभवी अमरसिंह स्वाभाविक बुद्धि के द्वारा रचे गये प्रेम के फन्दे के कृत्य को समझ लेता है कि यह सब किसलिये क्यों किया जा रहा है।

(१३)

श्रुत्वा माता वचनमभितः शोशुचाना निदानम् ,
पुत्रं प्राह व्यथनकदनं केन किञ्चित् किमुक्तम् ।
किं वा दुःखं यदितिसदने कारणं वा तदन्यत् ,
यस्माज् जातं मनसि सरले तत्त्वमेतद् विचित्रम् ॥

अन्वयः—अभित वचन श्रुत्वा निदानं शोशुचाना माता पुत्र प्राह, (यत्) केन किञ्चित् व्यथनकदन उक्त किम् ? वा इह सदने दु ख किम् ? वा अन्यत् कारणम् ? यस्मात् सरले मनसि एतत् विचित्र तत्त्वं जातम् ।

अर्थ इधर-उधर की बात को सुनकर मूलकारण को सोचती हुई माता ने पुत्र से कहा, कि क्या कभी किसी ने व्यथा एव अपमानजनक कुछ कह दिया है ? अथवा अपने इस घर मे कोई कष्ट है ? या कोई दूसरा कारण है ? जिससे कि तेरे सरल मन मे यह अनोखी विरक्ति की बात समा गई है ।

(१४)

गार्हस्थ्यं ते परमसुखदं स्वर्गसौन्दर्ययुक्तम् ,
यस्मै देवा विहितविधयो रोरुचन्तीति नित्यम् ।
सिद्ध्यन्त्येवं गृहवसतयः साधवो धर्मदेहा. ,
किं वैचित्र्यं श्रमणशरणे शासने मारमारे ॥

अन्वय.—परमसुखदं स्वर्गसौन्दर्ययुक्त ते गार्हस्थ्यम् (अस्ति, यस्मै (गार्हस्थ्याय) विहितविधयः देवा अपि नित्य रोरुचन्ति इति । एव तु गृह-वसतय. धर्मदेहा साधव अपि सिद्ध्यन्ति । (अत) मारमारे श्रमणशरणे शासने वैचित्र्यं किम् ?

अर्थ—परम आनन्ददायक स्वर्ग के सौन्दर्य से युक्त तेरा यह गार्हस्थ्य जीवन है । जिस गार्हस्थ्य के आनन्द के लिये अनेक उपाय करनेवाले देवता भी वार-वार इच्छा प्रकट करते हैं । मैं ऐसा मानती हूँ कि घर मे रहने वाले भी धर्मप्राण साधुजन सफल होते हैं, तव फिर काम को जीतने वाले साधु रक्षक हैं जिनके ऐसे ..नशासन मे ही कौन-सी विशेपता है ? जिसके लिये तू इतना लालायित है ।

(१५)

सौभाग्यं मे यदिह भवने यादृशो रूपवांस्त्वम् ,
पौत्रोऽपि स्यान्नयनशयनस्तादृश. शोभनीयः ।
लक्ष्मीरम्या तव सुगृहिणी चन्द्रिकेवाभिरामा ,
आशातन्तुः परमसुगमो जीवमात्रं रुणद्धि ॥

अन्वयः—(यत) तव लक्ष्मीरम्या चन्द्रिका इव अभिरामा सुगृहिणी (अस्ति) । यत् इह भवने यादृश रूपवान् त्वम् (अस्ति), तादृश नयनशयन शोभनीय. पौत्र अपि स्यात्, तदा मे सौभाग्य (भवेत्) । (यत ससारे) आशातन्तुः परमसुगम, (अस्ति) (तस्माद् अयम्) जीवमात्र रुणद्धि ।

अर्थ—क्योकि तेरी लक्ष्मी के समान सुन्दर और चन्द्रिका के समान रूपवती पत्नी है, इसलिये इस घर मे जैसा तू रूपवान है, वैसा ही अत्यन्त रूपवान् पौत्र भी हो जाए तो मैं अपना सौभाग्य समझूं । क्योकि ससार मे आशा का डोरा अधिक सुगम है, उससे यह डोरा जीवमात्र को बाँधता रहता है । (अत यदि मैं ऐसी आशा करूँ तो कोई आश्चर्य की बात नही है । क्योकि मैं भी उसी आशा से बँधी हुई हूँ ।)

(१६)

सौविध्यं ते परमशुभग सर्वसौभाग्यशीलम् ,
साधव्यं स्यान्निखिल सुखकृत् कैश्यसंहारकारि ।
दौढ्यं[1] शीलं यदपि परमं वन्दनीयं शिरोभिः ,
लालाटिक्यः[2] कथमपि न ते शोभते रोचते मे ॥

अन्वयः—माताहि स्वतो विवृणोति यत् ते कैश्यसहारकारि साधव्य-सर्व सौभाग्यशील परमशुभग निखिलसुखकृत् सौविध्य स्यात् (एतदह मन्तु शक्नोमि) । तदपि (च) दौढ्य शील शिरोभि परम वन्दनीय (स्यात्) (एत-दपि वोढुमह शक्नोमि), (इद) लालाटिक्य ते शोभते (शोभताम्), किन्तु मे कथमपि न रोचते ।

अर्थ—माता ही स्वत विवरण करती है कि—यह तेरा केशो को उखाड-फेंकने वाला साधुत्व सर्वसौभाग्यवाला उत्तम सौविध्य हो, (हो सकता है, यह मैं मान लेती हूँ, और) जो भी दुःख के साथ ध्यानसाधना का कर्म है, वह भी हो, (यह भी मैं समझ सकती हूँ ।) यह भिक्षाकारित्व तुझे शोभता हो तो भले ही शोभे, किन्तु मुझे कैसे भी नही रुचता ।

१—जैनसाधुत्वम्, २ —भिक्षाकारित्वम् ।

(१७)

तैरस्कार्यं यदि तव तया धर्मपत्न्या कृतं स्यात् ,
ननम्यन्ते शुभगगतयः शोभनाः शीलवत्यः ।
नार्योऽनेकाः परिणयशतं दूरतश्चार्थयन्ते ,
ईषद्धास्यं तव यदि भवेत् स्वीकृतेरेव चिह्नम् ॥

अन्वय—पुनरप्यग्रे माता कथयति—यदि तव तया धर्मपत्न्या तैरस्कार्यं कृत स्यात्, (तदा कापि चिन्ता न कार्या)। यत शुभगगतय शोभनाः शीलवत्य. अनेका नार्य. ननम्यन्ते। दूरतः च (अनेका. नार्य) परिणयशतम् अर्थयन्ते। तव यदि ईषत् हास्य भवेत् –(तर्हि अह तव) स्वीकृते. चिह्न (मन्स्ये) किन्तु विरक्तिरपि हातव्येत्यर्थ ।

अर्थ—आगे फिर भी माता कहती है कि—यदि तेरा तेरी उस पत्नी ने तिरस्कार किया हो (तो भी कोई चिन्ता नही की ,जानी चाहिये)। क्योकि शुभगति वाली सुन्दर शीलवती अनेक स्त्रियाँ झुक-झुक नमन करती हैं और दूर से ही अनेक स्त्रियाँ सैंकडो विवाह चाहती हैं। तेरा यदि थोडा मुस्कराना ही हो—(तब मै तेरी) स्वीकृति का सकेत (मान लूंगी)। किन्तु तुझे यह विरक्ति छोड देनी चाहिये।

(१८)

तत्कर्त्तुं स्यां भवति सुखदं यत्परैरप्यलभ्यम् ,
सौकर्यं ते भवतु परमं कामभोग्यं सदाहम् ।
किन्तूत्सर्गं कथमपि कृथा मेतिकारं गृहस्य ,
भाग्यङ्कारं तदिति जननी देहबन्धं रुरोद ॥

अन्वयः– पुनरपि माता कथयति—यत् परैः अपि अलभ्यम् (अस्ति), तत् ते परम सुखद कामभोग्य सौकर्य भवतु—(इति) अहम् सदा कर्त्तुं स्याम्, किन्तु गृहस्य उत्सर्गम् इतिकार मा कृथा.। (अन्ते, जननी तदिति भाग्यङ्कार देहबन्ध रुरोद।

अर्थ—फिर भी माता कहती है कि—जो दूसरो से भी अलभ्य है, ऐसी वस्तु तेरे लिये अधिक आनन्ददायक इच्छानुसार सुलभ हो सकती है— ऐसा मै सदा करने को तत्पर हूँ, किन्तु घर का परित्याग सदा के लिये नही कर। इतना कहने पर अमरसिंह की माता भाग्य का नाम ले लेकर अमरसिंह को छाती से लगा कर रोने लगी।

(१९)

मात. सत्यं यदपि गदितं किन्तु तथ्यं न चैतत् ,
भाग्ये नाप्त भवति सकल जीवनं मानवीयम् ।
रूपं लब्ध तदपि सफलं गीयते यस्य पुण्यम् ,
पारे पुण्यं यदतिपरम मोक्षरूपं प्रशस्तम् ॥

अन्वय पुत्रो मातर सान्त्वयति—मात ! यदपि गदित सत्यम् (अस्ति) किन्तु एतद् च न तथ्यम् (अस्ति) मानवीय सकल जीवनं भाग्येन आप्त भवति। यस्य पुण्य गीयते, (तस्य) तदपि सफल रूपम् जातम् (अस्ति) इति (कथ्यते) (किन्तु) पारे पुण्य यद् (अस्ति) (तत्) अतिपरम प्रशस्त मोक्ष-रूपम् (अस्ति) अतोऽहं तु मोक्षमिच्छामि नान्यदित्यर्थ ।

अर्थ—पुत्र माता को सान्त्वना देता है कि अरी माँ ! तूने जो कुछ कहा, वह सत्य है, किन्तु फिर भी वह जैसा चाहिये, वैसा नही है। यह तो सभी मानते हैं कि मानव सम्बन्धी जीवन भाग्य से मिलता है, किन्तु उसमे भी पुण्य का गीत गाया जाता है कि जो पुण्यवान् है, वह उस सफल रूप को पाता है । और कहने वाले यहाँ तक कहते हैं कि पुण्य से भी परे सर्व महान् प्रशस्त मोक्षरूप है। इसलिये मैं तो मोक्ष चाहता हूँ और दूसरा कुछ नही—इसका यह अर्थ है ।

(२०)

सम्पच्चक्रं जगति विदितं वर्त्तते पापमूलम् ,
पापादेवं भवति विषमो जीवहन्ता जनानाम् ।
तद्रूपाप्ते रति परिचयाज्जायतेऽसत्यदृष्टि: ;
दृष्ट्यभ्यस्तो नृभवमपि तत्स्वर्गमेव स वेद ॥

अन्वयः–पुत्र एव पुनर्मातर कथयति—जगति सम्पच्चक्र विदित पापमूल वर्त्तते। एव पापात् विषमो जीवहन्ता भवति। अतिपरिचयात् तद्रूपाप्तेः एका दृष्टि जायते, दृष्ट्यभ्यस्तः स नरभवम् अपि स्वर्ग वेद ।

अर्थ— पुत्र ही फिर माता को कहता है कि—जगत् मे सम्पत्तियो का चक्र जाना हुआ पाप का कारण है। और इसी प्रकार पाप से मनुष्य मनुष्यो का दुर्दान्त प्राणिघातक बनता है। अत्यन्त ससर्ग से उस प्राणिघातकता से एक दृष्टि उत्पन्न होती है, उस दृष्टि का अभ्यस्त वह मनुष्य, मनुष्य-जन्म को भी स्वर्ग जानता है ।

(२१)

श्रुत्वा तथ्यं समुचितमिदं तस्य माता प्रसन्ना ,
प्रत्यासन्न जनसमुदयं व्याहरन्तीत्यशोचत् ।
द्रष्टव्य यत्किमिव हृदयं जातमस्यामरस्य ,
जैनं ज्ञानं प्रभवति जनं त्यागिनं तं न्विधातुम् ॥

अन्वयः—इद समुचित तथ्य श्रुत्वा 'द्रष्टव्यम्, अस्य अमरस्य हृदय किम् इव जातम्, इति' प्रत्यासन्न जनसमुदय व्याहरन्ती तस्य प्रसन्ना माता अशोचत्—यत् जैन ज्ञान त जन त्यागिनविधातु प्रभवति ।

अर्थ—इस समुचित तथ्य को सुनकर, 'देखिये, इस अमरसिंह का हृदय कैसा क्या हो गया है' ऐसा पास मे खड़े हुए जनसमूह को—कहती हुई उसकी प्रसन्न माता सोचने लगी कि जिन भगवान् का ज्ञान मनुष्य को त्यागी बनाने के लिए प्रभाव रखता है ।

(२२)

पित्रा चोक्तं न किमपि धृतं तत्त्वमस्तीति जैने ,
ज्ञाने सत्यं किमपि यदि यद् वर्त्तते सास्त्यहिंसा ।
अहिंस्यं किं भवति तु तदोल्लङ्घ्यते शासनं मे ,
स्पष्टं ज्ञानं त्वयि यदिभवेच्छासनं लङ्घयेस्त्वम् ॥

अन्वयः—मातु कथनान्तर-पित्रा च उक्त (यत्) जैने ज्ञाने किम अपि तत्त्व धृत नास्ति, यदि किमपि (तस्मिन्) यद् सत्य वर्त्तते सा अहिंसा अस्ति। यदि त्वयि (अहिंसाया) स्पष्ट ज्ञान भवेत् (तदा) त्व किं (मदीयं) शासनं लङ्घये. ? यदा मे शासनम् उल्लङ्घ्यते, तदा किम् अहिंस्य भवति ? अर्थात् मदीयस्य शासनस्योल्लङ्घनात् हिंसा भवति-इत्यर्थ ।

अर्थ— माता के कहने के पीछे—पिता ने और कहा कि जैन ज्ञान मे कुछ तत्त्व धरा हुआ नही है, यदि कुछ (उसमे) सत्य जो है, वह अहिंसा है । यदि तुझ मे (अहिंसा का) स्पष्ट ज्ञान होता, (तव) तू क्या (मेरे शासन को लाँघता ? (अर्थात् नहीं) (जव) मेरा शासन लाँघा जाता है तो क्या अहिंसा होती है ? अर्थात् मेरे शासन के उल्लघन से हिंसा होती है—यह इसका अर्थ है ।

(२३)

शास्त्रे प्रोक्तस्तनुज इति यः पितृदेवोऽस्ति चासौ ,
आदिष्टः सञ्चरति सदसत् कर्म वाऽलं विधातुम् ।
सत्पुत्रस्त्वं कुरु मम यथादेशमेवं तथेति ,
सेवा पित्रोर्भवति सतत सर्वथा वन्दनीया ॥

अन्वयः—पुनरप्यन्ते पिता कथयति-य शास्त्रे तनुज. पितृदेव इति उक्त (अस्ति), असौ आदिष्ट सन् सत् वा असत् कर्म विधातुम् अलं चरति (स,) सत्पुत्र अस्ति। मम च त्व सत्पुत्रः (असि), इति एव यथादेशं तथा कुरु। (यतो हि) पित्रो सेवा सतत वन्दनीया (भवति)।

अर्थ—फिर भी अन्त मे कहता है कि शास्त्र मे पुत्र को पितृदेव ऐसा बताया गया है, और वह आदेश प्राप्त कर सत् अथवा असत् कर्म करने के लिए तत्पर रहता है, सत्पुत्र कहा जाता है । और तू मेरा सत्पुत्र है, इसलिये मैं जैसा आदेश करूँ, वैसा ही कर। (क्योंकि) माता-पिता की सेवा सदा वन्दनीय होती है।

(२४)

तत्त्वं सर्वं निखिलमिति तद् पितृपादैर्यदुक्तम् ,
ज्ञातं मन्येऽशरणशरणं सारभूतं न जातु ।
अन्तर्भूतं मुनिजनवरैस्तत्त्वविद्भिर्यदुक्तम् ,
बाह्यं दृश्यं न किमपि तथा यादृशः शुद्ध आत्मा ॥

अन्वयः—पितृपादै. यद् उक्तम्, निखिलतत्त्व ज्ञातम् इति, तत् (अहम्) अशरणशरण मन्ये, (किन्तु) जातु सर्वं सारभूत न (अस्ति) तत्त्वविद्भि मुनिजनवरै यद् उक्तम्, तत्अन्तर्भूतम् अस्ति, किन्तु तत् किमपि बाह्य दृश्य न (अस्ति)। यादृश शुद्ध. आत्मा अस्ति, तथा (अन्य कोऽपि नास्तीत्यर्थ । (अत आत्मज्ञानमेष्टव्यमित्यस्यायमर्थ.) ।

अर्थ—पिताजी ने जो कहा—आद्युपान्त तत्त्व समझा—ऐसा मानिये, उसको मैं अगतिकगति मानता हूँ, (किन्तु) कदाचित् सब सारभूत नही है। तत्त्ववेत्ता मुनिजनवरो ने जो बताया, वह सब इसके भीतर है। किन्तु वह कुछ भी बाह्य दृश्य नही है। जैसा कि शुद्ध आत्मा होता है, वैसा (अन्य कोई नही है। (अत आत्मज्ञान चाहिये—इसका यह अर्थ है ।)

(२५)

कोऽपि प्राणी परिजनवृत· कर्मभि· प्राप्तहर्ष. ,
धन्यंमन्यश्चलति पथि यो व्योमदृष्टिः सदर्पः ।
याते काले तुदति सतत भेषजाधार एषः ,
सोऽय प्राणी निजकृतिवशान् कर्मभोगान् भुनक्ति ।।

अन्वय.—अमरसिंह· कथयति—दृश्यते—क अपि परिजनवृतः कर्मभि. प्राप्तहर्प प्राणी धन्यमन्य अस्ति, य· पथि व्योमदृष्टिः सदर्प.चलति, (किन्तु) काले याते स एव भेषजाधारः सन् सतत तुदति । (एतेन ज्ञायते)–अय प्राणी निजकृतिवशान् कर्मभोगान् भुनक्ति ।

अर्थ—अमरसिंह कहता है कि देखा गया है—कोई परिजनो से घिरा हुआ कर्मों से आनन्दित मनुष्य अपने आपको धन्य मानता है, जो मार्ग मे आकाश की ओर दृष्टि रखता हुआ घमण्ड से चलता है। किन्तु समय व्यतीत होने पर वही मनुष्य औपधो के सहारे रहकर निरन्तर कष्ट उठाता है। (इससे समझा जाता है कि) यह प्राणी अपनी करनी के अधीन कर्मों के भोग भोग रहा है।

(२६)

ज्ञानं धृत्वा विरतिसुदृढं भुक्तभोगो मनुष्यः ,
तच्चेत्येतद् विषयनिचितेर्बद्धमूल विकर्म ।
यो जानीते नरकसदृशं पापजन्यं हि विश्वम् ,
भव्यात्मासौ विविधविषयां भोगवृत्ति जहाति ।।

अन्वय—एतद् विपयनिचितेः वद्धमूल विकर्म (अस्ति) इति तत्, विरतिसुदृढ ज्ञान च धृत्वा य हि भुक्तभोग. मनुष्य. पापजन्यं नरक सदृशं विश्व जानीते, असौ भव्यात्मा विविधविषया भोगवृत्ति जहाति ।

अर्थ—यह विपयो मे वद्धमूल विकर्म है, ऐसा इसको और विरतिसुदृढ ज्ञान को धारण कर जो भोगी मनुष्य पापो से उत्पन्न नरक के समान ससार को जानने लगता है, तब वही भव्यात्मा विविध विपयो के भोग की वृत्ति को छोड देता है।

(२७)

तस्मात्तुच्छं जगदिदमहं त्यक्तुमेवं प्रवृत्तः ,
आज्ञां दत्वा हितविलसिता तारयेतामतो माम् ।
आनन्दोऽयं भवति भवतोर्दीक्षितोऽहं भवेयम् ,
सन्तो योगं ददति परमं कर्मसिन्धुं तरीतुम् ॥

अन्वयः—तस्माद् अहम् इदम् जगत् त्यक्तुम् एवं प्रवृत्त· (अस्मि)। अत. हितविलसिताम् आज्ञा दत्त्वा (भवन्तौ) मा तारयेताम्। (यदि) भवतो. (पुत्र) अह दीक्षित भवेयम्, (तदा) अयम् आनन्दः भवति। (यतो हि) सन्त कर्मसिन्धु तरीतु परम योग ददति।

अर्थ—इससे मैं इस तुच्छ जगत् को परित्याग करने के लिए ही प्रवृत्त हूँ। इसलिए हितविलसित आज्ञा को देकर (आप-दोनो) मुझको तार दीजिए। (यदि) आप दोनो का (पुत्र) मैं दीक्षित होता हूँ, तो यह आनन्द ही है। (क्योकि) सन्त कर्मों के समुद्र को तैरने के लिए बहुत योग देते हैं।

(२८)

प्राथ्यं श्रुत्वा विनयसहितं दुःखमाप्तौ तदा तौ ,
जिज्ञासायाः प्रणयमभितः कारणं बोधयन्तौ ।
लक्ष्मीदेवौ सदयहृदयौ भाषमाणौ भवेताम् ,
वैराग्य ते भवतु फलदं किन्तु पश्यानुवेलम् ॥

अन्वयः—विनयसहित प्राथ्यं श्रुत्वा तौ दुखम् आप्तौ (अभवताम्) प्रणयम् अभित जिज्ञासाया कारण बोधयन्तौ सदयहृदयौ लक्ष्मीदेवौ—ते वैराग्य फलद भवतु—भाषमाणौ भवेताम्। किन्तु (त्वम्) अनुवेलम् पश्य।

अर्थ—तव विनय सहित निवेदन को सुनकर वे दोनो दुखी हुए। प्रेम पुरस्सर जिज्ञासा के कारण को बताते हुए दयालु कमलादेवी और देवसिंह—तेरे लिए वैराग्य फलद हो—कहने लगे। किन्तु पर्याप्त सोच ले।

(२९)

पत्नीं धर्म्या प्रणयमनुगां त्वं परित्यज्य यासि ,
क्लेशं तस्या विरहजनितं कोऽस्ति सोढुं समर्थः ।
तस्माज्जातं विवशमपर मानस चास्मदीयम् ,
के ते शक्ता व्यथितमनसः कष्टमन्यस्य नंष्टुम् ।।

अन्वयः—त्व प्रणयमनुगा धर्म्या पत्नी परित्यज्य यासि, किन्तु तस्याः विरहजनित क्लेशं सोढुँ क समर्थ अस्ति । अर्थात् कोऽपि नास्ति । तस्मात् च अस्मदीय मानसम् अपर विवश जातम् (अस्ति)। यतो हि अन्यस्य व्यथितमनस कष्ट नष्टु शक्ता ते के ? न के ऽ पि सन्तीत्यर्थं. ।

अर्थ—तू प्रेमवती धार्मिक पत्नी को छोडकर जा रहा है, (सो तो ठीक है) किन्तु उसके विरह-जनित क्लेश को सहने के लिए कौन समर्थ है ? अर्थात् कोई नही है। और इससे हमारा मानस अधिक विवश हो गया है। क्योकि किसी दु खिया के दु.ख को नष्ट करने के लिए वे कौन हैं जो समर्थ है ? कोई भी नही हैं—यह इसका अर्थ है।

(३०)

भावं धृत्वा पतिसुखयुतं भव्यदेहं दधाना ,
नामग्राहं विभवसुषमं ते गृहं प्राप्नुवन्तो ।
नित्यं पत्नी यदि तुदति सा किं न दुःखं भवेत्तत् ,
तत्ते कृत्यं समुचितमिद कोऽपि युक्तं वदेत्किम् ।।

अन्वयः—पतिसुखयुत भाव नामग्राह धृत्वा विभवसुषम गृहम् प्राप्नुवन्ती भव्यदेह दधाना ते पत्नी यदि नित्य तुदति, तत् किं दु ख न भवेत् ? (अपि तु अवश्य भवेत्)। तत् इदं युक्त कृत्यम् कोऽपि समुचित वदेत् ? (न कोऽपि वदेदित्यर्थ. ।

अर्थ—पति के सुख से मिलित भाव को नाम ले-ले कर मोचकर सम्पत्ति है परम शोभा जिसकी, ऐसे घर पर आई हुई सुन्दरी तेरी पत्नी यदि सदा कष्ट पाती रहे, तो क्या तुझे दु.ख न होगा ? (अपितु अवश्य दु ख होगा), तव इस युक्त कृत्य को कोई भी समुचित कहेगा ? (कोई भी नही कहेगा—यह इसका अर्थ है।

(३१)

तस्मात्त्वं मेऽनुसर वचन याहि माङ्गल्यमूलम् ,
सद्यो धर्म्यं गृहमतिसुख भुङ्ग्धि भोगान् गृहस्य ।
सामर्थ्य ते घटय सुरतं कामरूपं प्रियायाः ,
गार्हस्थ्यश्रीरमर सदनं नामशेषं विधत्ते ॥

अन्वय—तस्मात् त्व मे वचनम् अनुसर, सद्य माङ्गल्यमूलमअति-सुख धर्म्यं गृह याहि, गृहस्य भोगान् भुङ्ग्धि, ते प्रियाया. कामरूप सुरतं सामर्थ्यं घटय। (यतोहि) गार्हस्थ्यश्री अमर सदननामशेष विधत्ते।

अर्थ—उक्त कारण से तू मेरे वचन का अनुसरण कर, शीघ्र ही माङ्गल्यमूल सुख को अतिक्रान्त करने वाले धर्मयुक्त घर को जा, घर के भोगो का सेवन कर (और) तेरी प्रिया की इच्छानुसार कामक्रीडा सामर्थ्य को चरितार्थ कर (क्योकि) गार्हस्थ्य की शोभा स्वर्ग को नाममात्र बना देती है।

(३२)

सर्वं सत्यं यदपि भवता मे हितायैव चोक्तम् ,
नैतच्चिन्त्य विसृज मयि तत्काममिच्छानुरूपम् ।
पत्नी देवी भवति नियतिर्जन्मजन्मान्तरस्य ,
तस्मान्मन्ये परमदयिता मह्यमाज्ञां तु दद्यात् ॥

अन्वय—पुत्रः पितर कथयति—भवता यदपि च मे हिताय उक्तं सर्वं सत्यम् एव (अस्ति)। (तदपि) एतद् चिन्त्य न (अस्ति)। तत् इच्छा-नुरूप मयि काम विसृज। (यतो हि) पत्नी देवी जन्मजन्मान्तरस्य नियति. भवति। तस्माद् (अह) मन्ये, (यत्) परमदयिता (पत्नी) मह्य तु (दीक्षायै) आज्ञा दद्यात्।

अर्थ—पुत्र पिता को कहता है कि—आपने और जो भी मेरे हित के लिए कहा, सब ठीक ही है। (तो भी) यह चिन्ता के योग्य नही है। वह इच्छानुरूप मुझपर सब छोडिये। (क्योकि) पत्नी देवी जन्मजन्मान्तर का भाग्य है। इससे मैं मानता हूँ कि अत्यन्त दयालु पत्नी मुझे तो (दीक्षाग्रहण के लिए) आज्ञा दे सकेगी।

(३३)

एवं विरक्तिं समवाप्य सर्वथा,
युवाऽपि संसारसुख जिहासितुम् ।
धृतप्रयत्नोऽमरसिंह एषकः,
स्वयं गतः प्रत्यभिपत्नि सस्मितम् ॥

अन्वयः—एवं सर्वथा विरक्ति समवाप्य युवापि ससारसुख--जिहासितु घृतप्रयत्नः एषकः अमरसिंहः प्रत्यभिपत्नि सस्मित स्वय गत· ।

अर्थ—इस प्रकार सर्वथा विरक्ति को प्राप्त कर युवक होते हुए भी ससार-सुख को छोडने की इच्छा के लिये प्रयत्नशील यह अमरसिंह पत्नी के सामने मुस्कराते हुए स्वयं पहुँचा ।

(३४)

यतोऽन्यदीयं समवेक्ष्य वर्णनम् ,
विभक्तुमिच्छामि कथा प्रसङ्गतः ।
ततो द्वितीयं ननु सर्गमग्रिमम् ,
वृणोमि वृत्तेन समेत शोभनम् ॥

अन्वयः—यत. अन्यदीय वर्णन समवेक्ष्य कथाप्रसङ्गतः विभक्तुम् इच्छामि । ततः अग्रिमम् द्वितीय सर्गम् समेन वृत्तेन ननु शोभन वृणोमि ।

अर्थ—यहाँ से दूसरा वर्णन देखकर कथा के प्रसग से विभाग किया चाहता हूँ । तदनन्तर अग्रिम द्वितीय सर्ग को एक से ही वृत्त से अच्छा लगे ऐसा वर्णन कर रहा हूँ ।

(३५)

कवित्वमस्तीति न वा मयि स्वयं ,
विचारसङ्कोचमथाञ्चितोऽभवम् ।
कलङ्कमङ्कायितचारुचन्द्रकं ,
निरीक्ष्य सन्तोषरसं पिबाम्यहम् ॥

अन्वय—मयि कवित्व अस्ति न वा इति स्वयं विचार-सङ्कोच अथ अञ्चित अभवम्, कलङ्क अङ्कायित चारुचन्द्रक निरीक्ष्य अह सन्तोष रस पिबामि ।

अर्थ—मेरे मे कवित्वशक्ति है अथवा नही, इस प्रकार के विचार से मैं स्वय सकोच मे पड गया हूँ, जिस प्रकार चन्द्रमा सकलङ्क होता हुआ भी सुन्दर दिखाई देता है, उसे देखकर मैं सन्तोष रस का पान करता हूँ उसी प्रकार कवित्व शक्ति के विना जो रचना कर रहा हूँ उससे भी मुझे सन्तोष होगा ।

इति श्रीमता राजस्थानकेसरिणा पण्डितरत्नेन
उपाध्यायपदालङ्कृतेन पुष्करमुनिना विरचिते
श्रीमदाचार्यामरसिंह महाकाव्ये
प्रथमः सर्गः



द्वितीयः सर्गः

(१)

लब्ध्वा लक्ष्यं श्रमपरिगतं मानवो जातहर्षः ,
तद्वज्जातो भवति परमो युक्तिवीरोऽमरोऽयम् ।
पत्नीं दृष्ट्वा कथयति परं भाग्यभोग्यं सदैतत् ,
वैराग्यं मे फलति यदि तत् कारण स्यास्त्वमेका ।।

अन्वयः—श्रमपरिगत लक्ष्यं लब्ध्वा मानव जातहर्ष· भवति, तद्वत् परमः युक्तिवीरः अयम् अमरः जात । (स) पत्नीम् दृष्ट्वा कथयति—सदा एतद् पर भाग्यभोग्य (वर्त्तते) यदि मे वैराग्य फलति, (तदा) तत्कारण त्वम् एका स्या· । (अर्थादह तव कारणाद् भाग्यवानस्मि ।)

अर्थ—श्रम से मिलने वाले लक्ष्य को पाकर मनुष्य प्रसन्न होता है, उसी के समान परम युक्तिवीर यह अमरसिंह प्रसन्न हो उठता है। और पत्नी को देखकर कहने लगता है कि सदा यह सब भाग्य से प्राप्तव्य है। यदि मेरा वैराग्य सफल होना है तो उसका कारण एक तू ही हो सकेगी । (अर्थात् मैं तेरे कारण से भाग्यवान् हूँ।)

(२)

हेतुं मन्ये सदयहृदयां त्वामनूनाप्तपुण्याम् ,
धन्यामेकां सफलयति या भाग्यमत्रैवपत्युः ।
तस्या भाग्य प्रथयति परं स्वर्गभूपोऽमरेशः, ,
तस्मात्सिद्धं भवति भुवने भारतीयं चरित्रम् ।।

अन्वयः—या अत्र एव पत्यु भाग्य सफलयति, (ताम्) अनूनाप्तपुण्या धन्याम् एकां त्वाम् (अह) हेतु मन्ये । (एतादृश्या.) तस्या· भाग्य स्वर्गभूपः अमरेश (अपि) पर प्रथयति । तस्मात् भुवने भारतीय चरित्र सिद्ध भवति ।

अर्थ—जो इस ससार मे ही पति के भाग्य को सफल बना देती है, उस पूर्ण पुण्यो वाली धन्य एक तुझको मैं कारण समझता हूँ। ऐसी उस स्त्री के भाग्य की स्वर्गाधिप देवेन्द्र भी पर्याप्त प्रशसा करता है। इसी से विश्व मे भारतीय चरित्र प्रमाण के रूप मे प्रतिष्ठित है।

अत्रापि 'मन्दाक्रान्ता' एव । लक्षण पूर्वोक्तमेव ।

(३)

आज्ञप्तोऽहं यदि सफलतामात्मनीनां लभेय ,
साफल्यं ते भवति परमं जीवनस्यापि तथ्यम् ।
आधिव्याध्योः प्रभवमपरं शान्तिमप्येति दुःखम् ।
संसारेऽन्ते मृतिसृतिगताः प्राणिनो यान्ति नित्यम् ॥

अन्वयः—यदि आज्ञप्त (सन्) अहम् आत्मनीना सफलता लभेय, (इदम्) परमं तथ्यम् (अस्ति), तदा ते जीवनस्य अपि साफल्यम् भवति। (यतोहि गृहस्थः सासारिक कष्टमनुभवत्येव।) (अत) अपरम् आधिव्याध्योः प्रभव दु खम् अपि शान्तिम् एति। (एवन्तु) अन्ते प्राणिनः ससारे नित्य मृतिसृतिगता यान्ति

अर्थ—यदि आज्ञप्त होकर मैं अपनी सफलता प्राप्त कर सका, तो यह पूर्ण तथ्य है कि उसमे तेरे जीवन का भी साफल्य है। (क्योकि गृहस्थ सासारिक कष्ट उठाते ही हैं, वे नही उठाने पडेंगे।) दूसरा मानसिक और शारीरिक व्यथाओ से उत्पन्न दु ख भी शान्त हो जाता है। वैसे तो अन्त मे प्राणी ससार मे सदा मृत्यु के मार्ग पर चलते ही रहते हैं।

(४)

पत्युर्वश्यं भवति सुखदं जीवितं सर्वभद्रम् ,
पातिव्रत्यं श्रयति परमां भारतस्यास्य शोभाम् ।
इत्येतस्मादहमपि शुभां जीवितस्यापि मूल्यात् ,
जैनीं दीक्षां परमपदगां प्रापयेयं भवन्तम् ,

अन्वयः—पत्नी समुत्तरति यत्—पत्यु. वश्यं सुखदं सर्वभद्रं जीवित भवति। पातिव्रत्यम् अस्य भारतस्य परमाम् शोभा श्रयति इति, एतस्मात् अहम् अपि जीवितस्य मूल्यात् अपि भवन्तम् शुभा परमपदगा जैनी दीक्षाम् प्रापयेयम्।

अर्थ—पत्नी उचित उत्तर देती है कि—पति के अधीन सुखदायक मङ्गलमय जीवन रहता है। पातिव्रत्य इस भारत की विशिष्ट शोभा है—ऐसा है। अतएव मैं भी आपको जीवन का मूल्य देकर भी पवित्र मोक्ष तक पहुँचने वाली जैनसम्बन्धिनी दीक्षा प्राप्त करा सकती हूँ।

(५)

तस्माद्धेतोरहमपि सदा भावमाश्रित्य श्रेष्ठम् ,
साहाय्यं ते शिथिलितसुखा धर्मपत्नी तवैवम् ।
दीक्षाऽऽदाने निहितदयया स्वाज्ञया स्थापयेयम् ,
पुण्ये कृत्ये विमलमतयो योगमायोजयन्ति ॥

अन्वयः— तस्मात् हेतोः शिथिलितसुखा तव धर्मपत्नी (अस्मि), अत. अहम् अपि ते दीक्षाऽऽदाने निहितदयया स्वाज्ञया एवम् साहाय्यम् स्थापयेयम् । (यतोहि) विमलमतयः (मनुष्या.) पुण्ये कृत्ये सदा योगम् आयोजयन्ति ।

अर्थ—इस हेतु से सुख की उपेक्षा करने वाली तेरी धर्मपत्नी हूँ । (अतः) मैं भी तेरे लिये दीक्षादान मे दयापेक्षित अपनी आज्ञा से इस प्रकार साहाय्य स्थापित कर सकती हूँ । क्योकि निष्पाप मनुष्य पुण्य कृत्य मे सदा भाग लिया करते हैं ।

(६)

उद्युक्तोऽयं सपदि पदिको निस्सहायोऽप्यगच्छत् ।
जाताज्ञोऽसौ विनयसहितः सर्वमावेद्यमानौ ।
कारुण्याप्तौ व्यथितपितरौ जातवृत्तं विवक्तुम् ,
कोऽसौ लोके विधिविलसितं लेखमन्यं विधातुम् ॥

अन्वयः—असौ विनयसहितः जाताज्ञः (अस्ति-इति) सर्वं जातवृत्तम्, निवेद्यमानौ कारुण्याप्तौ व्यथितपितरौ, विवक्तुम् अयम् निस्सहायः अपि उद्युक्त. (अमरसिंहः) पदिकः अगच्छत् । (यतोहि) लोके असौ कः (य·) विधिविलसित लेखम् अन्य विधातुम् (अस्ति) ? (न कोऽप्यस्तीति-अर्थ. ।)

अर्थ—वह विनयी आज्ञा प्राप्त कर चुका है, ऐसा सब घटित वृत्त—निवेद्यमान दयालु दुखी माता-पिता को, कहने के लिये अकेला ही लगन का धनी ((अमरसिंह) पैदल चल दिया । क्योकि ससार मे वह कौन है जो भाग्य के अङ्कित लेख को बदलने के लिये समर्थ हो ? (कोई भी नही है—ऐसा यह अर्थ है ।)

(७)

जिसासूभौ गदितपितरौ हृष्यमाणौ तदास्ताम् ,
शैघ्र्यं मा गाः कुरु सुरुचिरां चित्तवृत्तिं प्रशस्ताम् ,
हृद्यं कार्यं कथमपि जनो निन्दितु न क्षमेत ,
सत्याशस्त्वं विशदहृदयो बाल एवं ब्रुवन्तौ ॥

अन्वयः—त्वं प्रशस्ता चित्तवृत्ति सुरुचिरा कुरु शैघ्र्य च मा गा, (यत') विशदहृदय सत्याशः बाल' (असि) एव ब्रुवन्तौ उभौ जिज्ञासू गदितपितरौ तदा हृष्यमाणौ आस्ताम्। (ससारस्याय नियम.) - जन हृद्य कार्यं निन्दितु कथम् अपि न क्षमेत।

अर्थ—तू अपनी प्रशस्त चित्तवृत्ति अधिक प्रिय बना ले, और जल्दी मत कर, (क्योकि) तू स्वच्छ हृदय धुन का पक्का बालक है, इस प्रकार कहते हुए दोनो जानने की इच्छावाले उक्त माता-पिता तब प्रसन्न हुए लगते थे। (ससार का यह नियम है।) कि कोई भी मनुष्य प्रिय कार्य की निन्दा करने को कैसे भी नही सह सकता।

(८)

श्रीसिंहेऽस्मिन्नटति भवनात्तावदायाति कश्चित् ,
श्रोतृव्यूहे प्रथयति बहिर्लालचन्द्रं मुनीन्द्रम् ।
व्याख्यानेन व्यथितमनसश्चित्तमत्युग्रभावम् ,
कुर्वन्तं तं च जनविमतव्याहृत निष्प्रभावम् ॥

अन्वय—भवनाद् बहि अस्मिन् श्रीसिंहे अटति सति कश्चित् श्रोतृव्यूहे आयाति। (स एव) व्यथितमनस उग्रभाव चित्तम् जनविमत-व्याहृतं च निष्प्रभाव कुर्वन्त तं मुनीन्द्र लालचन्द्र प्रथयति।

अर्थ—घर से वाहिर इस श्रीसिंह (अमरसिंह) के चलते हुए कोई श्रोताओ के झुण्ड मे आ जाता है और वही किसी दु खी के उग्रभाव वाले चित्त को और मनुष्यो के सिद्धान्तहीन कथन को निष्प्रभाव करते हुए उस मुनि श्रेष्ठ लालचन्द्र को अधिक वढ-चढकर वताता है।

(९)

आकर्ण्याऽहं गतमतिगतिर्ज्ञापयामीति सन्तम् ,
श्रुत्वोदन्तं विमलयशसो लालचन्द्रस्य साधोः ।
मुग्धो भूत्वा व्रजति च मुने.श्रोतुमिच्छन् सभायाम्,
व्याख्यानं यः सरति सरसं प्रत्यह सोऽमरोऽयम् ॥

अन्वयः—कश्चिदेवासौ सन्दर्भयति—सन्तम् आकर्ण्य गतमति गति (सन्) अहं ज्ञापयामि-इति विमलयशस साधो—लालचन्द्रस्य उदन्त श्रुत्वा मुग्धश्च भूत्वा मुने सभायाम् सरस व्याख्यान श्रोतुम् इच्छन् य प्रत्यह सरति स. अयम् अमर. (अमरसिहः) अस्ति।

अर्थ—वही कोई सम्बन्ध जोडता है कि—ऐसे उस सन्त को सुनकर आश्चर्य स्तब्ध हो मैं यह मत्र वता रहा हूँ। सुप्रसिद्ध साधु लालचन्द्रजी के वृत्तान्त को सुनकर और मुग्ध होकर मुनि की सभा मे सरस व्याख्यान को सुनने के लिए चाह रखता हुआ जो प्रतिदिन जाता है, वह यह अमरसिंह है।

(१०)

कर्मारण्यं जटिल-कुटिलं भ्रान्तजीवानुबद्धम् ।
सम्यक् छेत्तुं प्रयतति मुनिस्त्रीणि रत्नानि योक्तुम् ।
सत्यं किञ्चिन्नपरमपरं तत्त्वभूतं त्रिलोक्याम् ,
सन्देष्टुं तज् जगति जयिनःस्वामिनस्ते भ्रमन्ति ॥

अन्वयः—अधिसभ मुनिरसौ भाषते—मुनि भ्रान्तजीवानुबद्धं जटिल-कुटिल कर्मारण्य सम्यक् छेत्तु त्रीणि रत्नानि योक्तु प्रयतति। त्रिलोक्याम् पर तत्त्वभूतम् अपर किञ्चित् सत्य न (अस्ति) । जगति ते जयिन॰ स्वामिन. तद् सन्देष्टुम् भ्रमन्ति।

अर्थ—वही मुनि सभा मे भाषण देता है कि—मुनि भ्रान्त जीवो से अनुवद्ध सघन कर्मों के जगल को अच्छी तरह से काटने के लिए तीन रत्नो को जोड़ने की भरसक कोशिश करता है। त्रिलोकी मे सवसे वडे तत्त्व के सदृश दूसरा कोई सत्य नही है। ससार मे वे जितेन्द्रिय मुनिजन इस वात को वताने के लिए सदा घूमते रहते हैं।

(११)

श्रावं श्रावं विशदविषयं तत्त्वमेतद् विशिष्टम् ,
तस्य श्रद्धा प्रभवति परा त्यागमूलप्रवृत्तौ ।
त्यक्तुं सर्वं विभवनिचयं कर्मजन्य प्रमादम् ,
मत्वा ज्ञानं प्रतिपदमयं सङ्ग्रहीतुं प्रवृत्तः ॥

अन्वयः—विशदविषयम् एतद् विशिष्ट तत्त्व श्रावं श्राव त्यागमूल-प्रवृत्तौ तस्य परा श्रद्धा प्रभवति । (अत एव) अयम् (अमरसिह) सर्व विभव-निचयम् कर्मजन्यप्रमाद मत्वा त्यक्तुम्, ज्ञान (च) प्रतिपदम् सङ्ग्रहीतुम् प्रवृत्तः (अस्ति) ।

अर्थ—स्पष्ट हैं, विषय जिसके ऐसे उस विशिष्ट तत्त्व को सुन-सुन कर उसकी त्यागमूल की प्रवृत्ति मे प्रगाढ श्रद्धा उत्पन्न हो उठती है । (अत एव) यह (अमरसिंह) सम्पूर्ण विभवो के समूह को कर्मों से उत्पन्न प्रमाद मानकर, त्यागने के लिए (और) तत्त्व को स्थान-स्थान पर सग्रहीत करने के लिए प्रवृत्त हुआ है ।

(१२)

वैराग्येण त्यजति गृहिणी रूपभूयिष्ठमृद्वीम् ,
कामाधानां परमचतुरा सर्वहेतुप्रतिष्ठाम् ।
तस्या अन्यत् किमतिशयितं वस्तुतत्त्वं भवेत्तत् ,
वैराग्यात्मा गणयति जगत् छद्म-सद्म-प्रवृद्धम् ॥

अन्वयः—अयम् वैराग्येण कामाधाना रूपभूयिष्ठमृद्वी सर्वहेतुप्रतिष्ठा परमचतुरा गृहिणी त्यजति । (अस्मिन् जगति) तस्या अन्यत् अतिशयित तत् वस्तुतत्त्व किम् भवेत् ? (न भवेदन्यदित्यर्थः) । (किन्तु पुनरपि) वैरा-ग्यात्मा (मनुष्य) जगत् छद्म-सद्म-प्रदीपम् गणयति ।

अर्थ—यह वैराग्य के हेतु से काम की भूमि अतिशय रूपवती कोमला सब हेतुओ की प्रतिष्ठा परमचतुरा पत्नी को त्याग रहा है । (इस ससार मे) इससे दूसरा अतिशयित वह वस्तुतत्त्व कौन हो सकेगा ? (जो इससे बढ चढ कर हो—अर्थात् इससे अन्य नही हो सकता) । किन्तु विरक्त जगत् को छल के घर का प्रदीप गिनता है ।

(१३)

दु:खी वर्त्ते जगति मनसो धर्मं इत्येव वाहम् ,
कोऽसौ धर्मः सृजति सततं मङ्गलं पुण्यमूलम् ।
आत्मा कोऽयं स्वयमहमहो कोऽस्मि कस्याहमस्मि ,
शङ्काग्रस्तः स्वमनसि ततं प्रश्नवृन्दस्य सूते ॥

अन्वयः—'जगति अहं दु खी वर्तें' इति मनस धर्म एव वा (अन्य. कोऽपि) ? असौ धर्मक: ? य सतत पुण्यमूल मङ्गल सृजति । अयम् आत्मा क ? अहो अह स्वय क अस्मि ? कस्य अहम् अस्मि ? (एवम्) शङ्काग्रस्त (अमरसिंह) स्वमनसि प्रश्नवृन्दस्य तत सूते ।

अर्थ—'संमार मे मैं दु खी हूँ' ऐसा यह मन का धर्म है अथवा (कोई दूमरा है) ? वह धर्म कौन है ? (जो) सतत पुण्यमूल मङ्गल को रचता है ? यह आत्मा कौन है ? अहो मैं स्वय कौन हूँ ? किसका मैं हूँ ? (इस प्रकार) शङ्कित अमरसिंह अपने मन मे प्रश्नवृन्द के समूह को उत्पन्न करता है ।

(२४)

प्रश्नानेतान् जटिल कुटिलान् शङ्कमानोऽमरोऽयम् ,
तान् सन्धातु' हितमतिधरान् सज्जनान् याति प्रष्टुम् ।
ते शङ्कन्ते मनसि बहुशस्तं जनं क्षिप्तबुद्धिम् ,
जानन्तोऽमुं कथमपि शुभं शान्तमूर्त्तिं हसन्ति ॥

अन्वयः—जटिल कुटिलान् एतान् प्रश्नान् शङ्कमान· अयम् अमर· (अमरसिंह.) (यदा) तान् सन्धातु हितमतिधरान् सज्जनान् प्रष्टु याति, (तदा) बहुश ते मनसि त क्षिप्तबुद्धिम् जन शङ्कन्ते, (पुनरपि) अमुम् शुभ शान्तमूर्त्ति जानन्तः कथमपि हसन्ति ।

अर्थ—उलझे हुए इन प्रश्नो पर शङ्का करता हुआ यह अमरसिंह (जब) उन पर समाधान प्राप्त करने के लिए हितैषी सज्जनो से पूछता है, (तब) बहुत से तो वे अपने मन मे उस को क्षिप्तबुद्धि मनुष्य सोचने लगते हैं, (फिर भी) इसको शुभ शान्त जानते हुए कुछ-कुछ हँसते हैं ।

(१५)

दृष्टप्रायो विषय इति मे यो ह्यबुद्धः स्वयन्तु ,
अन्यान् बुद्धान् हसति सुतरां तानबुद्धान् विधातुम् ।
कुर्वन्नेवं यदपि यतते किन्तु सत्य तु सत्यम् ,
कृत्ये ज्ञाते पुनरयमहो हस्यते बुद्धिमद्भिः ॥

अन्वय—इति अयम् विषय. मे दृष्टप्राय (अस्ति), हि य स्वय तु अबुद्ध· (अस्ति), किन्तु अन्यान् बुद्धान्, तान् अबुद्धान् विधातुम् सुतरा हसति एवम् कुर्वन् (स) यदपि यतते, किन्तु सत्य तु सत्यम् (भवति)। (अत·) कृत्ये ज्ञाते (यथा मूर्ख सन् बुद्धान् जनान् हसति क्रियानय मूर्ख इति) पुन बुद्धिमद्भि (जनै) अहो अय (मूर्ख) हस्यते।

अर्थ—ऐसा यह विषय मेरा देखा हुआ है कि—जो स्वयं तो मूर्ख है, किन्तु अन्य समझदारो, को, बुद्धू बनाने के लिए (वह) काफी हँसी उडाता है। ऐसा करता हुआ जो भी कुछ प्रयत्न करता है सो करता ही है, किन्तु सत्य, सत्य ही होता है। इसलिए करतूत के जान लेने पर बुद्धिमानो के द्वारा 'अरे यह है' 'वह मूर्ख' ऐसी हँसी की जाती है।

(१५)

हित्वा शङ्का. शतमपरतः शोशुचानोऽमरोऽसौ ,
त्यक्त्वा लोकान् गमयति दिनं क्वापि संस्थायवासे।
स्वीयं चेतः स्थिरयति ततो निश्चय नेतुमन्ते ,
धीरो जन्युर्दृढयति मनस्तत्वमेकं वरीतुम् ॥

अन्वयः—अपरत शङ्काः शतहित्त्वा शोशुचान अमर —(अमरसिंह) अन्ते क्व अपि वासे सस्थाय लोकान् त्यक्त्वा निश्चय नेतु दिन गमयति। ततः असौ स्वीय चेत स्थिरयति। (यतो हि) धीर. जन्यु एक तत्त्व वरीतु मन दृढयति।

अर्थ—एक ओर से सैकडो शङ्काओ को छोड बार-बार विचारता हुआ अमरसिंह, अन्त मे किसी भी स्थान पर बैठ कर लोगो से दूर हो, निश्चय प्राप्त करने के लिए दिन बिताने लगता है। तदनन्तर वह अपने हृदय को स्थिर कर लेता है। क्योकि धैर्यवान प्राणी किसी एक तत्त्व को स्वीकार करने के लिए मन को दृढ़ कर लेता है।

(१७)

तस्मादन्ते विमलहृदयो मुख्यमूलं विरक्ते: ,
निश्चित्यैवं प्रथयति पुरो ब्रह्मचर्यव्रतं स: ।
रक्षित्वैनं परमपदद जीवनं यापयेयम् ,
प्रत्याख्यातुं गृहसुखमयं याति साधोः समीपम् ॥

अन्वय.– तस्मात् अन्ते विमलहृदय. स विरक्ते: मुख्यमूल ब्रह्मचर्य-व्रतम् एव निश्चित्य प्रथयति । (अह) पुर. परमपददम् एन रक्षित्वा जीवन यापयेयम् । (अत.) अयम् (अमरसिंह) गृहसुख प्रत्याख्यातु साधोः समीप याति ।

अर्थ उसके वाद पवित्रान्त करण वह (अमरसिंह) विरक्ति का प्रमुखतत्त्व ब्रह्मचर्य व्रत को ही निश्चय कर घोषित करता है कि मैं सर्वप्रथम परमपद दिलाने वाले इस ब्रह्मचर्य व्रत को रखकर जीवन व्यतीत करूँगा । इसलिये अव यह (अमरसिंह गृहसुख के प्रत्याख्यान के लिये मुनि (श्री लालचन्द्र जी) के पास पहुँचता है ।

(१८)

जाता वंश्या मथितहृदया ब्रह्मचर्यव्रतेन ,
तत्सम्बद्धाः सरसमतयश्चास्य दृप्ता अभूवन् ।
मित्राण्यासन् गदितुमनसः किन्नु वा एव तस्य,
जाते कार्ये हितपरवशा एवमेवं वदन्ति ॥

अन्वय – ब्रह्मचर्यव्रतेन वश्याः मथितहृदया जाता । अस्य च तत्सम्बद्धा सरसमतय. दृप्ता. अभूवन् । तस्य मित्राणि गदितुमनसः किन्नु वा आसन् । (यतोहि) कार्ये जाते हित परवशा. एवम्-एवम् वदन्ति ।

अर्थ—ब्रह्मचर्य व्रत के कारण वश के व्यक्ति-व्यक्ति दु खी हो उठे । और इस (अमरसिंह) के सम्बन्धी प्रेमी क्रुद्ध हुये । उसके सभी मित्र कहने-करने वाले कुछ का कुछ कहने लगे । क्योकि कार्य हो जाने पर हितैषी लोग ऐसा हुआ—वैसा हुआ वहुधा कहते ही हैं ।

(२३)

शिक्षाः पञ्चः स्वयमतितरां पालनीया भवन्ति ,
हेतोस्तस्मादयमनुदिनं पालने संनिमग्नः ।
शिक्षास्त्वेताः परमविकटा. सङ्कटादुद्धरन्ति ,
काठिन्यात्ता अतिविकटतां धारयन्त्येवमुक्तम् ॥

अन्वयः—पञ्च शिक्षा. स्वयम् अतितरा पालनीया भवन्ति । तस्माद् हेतो अयम् (तासा शिक्षाणा) पालने सनिमग्न. (अस्ति) किन्तु एता. परमविकटा (सत्य. अपि) शिक्षा (पालयितार) सङ्कटात् उद्धरन्ति । (पालनस्य) काठिन्यात् ता (शिक्षा) अतिविकटताम् धारयन्ति, (अत.) एवम् उक्तम् (अस्ति) ।

अर्थ—पाँच शिक्षाएँ स्वय सर्वाधिक पालनीय होती है। इस हेतु से यह (अमरसिंह) उन शिक्षाओ के रक्षण मे सनिमग्न है। किन्तु ये परमविकट होती हुई भी शिक्षाएँ पालन करने वाले को सङ्कट से वचाती हैं। (इन शिक्षाओ के) पालन की कठिनता को देखकर वे शिक्षाएँ अतिविकटता को धारण कर रही है—अत ऐसा कहा गया है।

(२४)

दीक्षाऽऽदानात् प्रभवति जनो दीक्षितं स्व प्रवक्तुम् ,
दीक्षा सेय धरति हृदये पञ्चशिक्षी स्वतो याम् ।
शिक्षाश्चैताः प्रथयति मुनिः पञ्च रत्नानि वृत्तौ ,
तस्मादासा प्रभवति परं नामधन्यं महत्त्वम् ॥

अन्वयः—दीक्षाऽऽदानात् जन. स्वं दीक्षित प्रवक्तु प्रभवति । इय सा दीक्षा (अस्ति), (जन.) स्वत या पञ्चशिक्षी हृदयेधरति। वृत्तौ च मुनि. एता शिक्षा. पञ्च रत्नानि प्रथयति । तस्मात् आसा (शिक्षाणा) नामधन्य पर महत्त्वम् (अस्ति)।

अर्थ—दीक्षा के आदान अर्थात् ग्रहण से व्यक्ति अपने को दीक्षित कहने के लिये अधिकृत होता है। यह वह दीक्षा है, जव व्यक्ति अपने आप जिन समाहृत पाँच महाव्रतो को हृदय मे रख लेता है। और व्यवहार मे मुनि, इन महाव्रतो को ही पाँच रत्न वतलाता है। इससे इन शिक्षाओ का नामधन्य अधिक महत्त्व है।

(२५)

सर्वे जीवाः किमपि सततं कर्म कर्त्तुं प्रवृत्ता. ,
भोगं भुक्त्वा स्वकृतिनिरताः कालमेवं वहन्ति ।
प्रीणन्त्येते सरसमपरं स्वक्रियाभिर्मनुष्यान् ,
हिंसन्त्येतानुदरमवितुं सन्त्यवश्यं कृतघ्नाः ॥

अन्वयः—सर्वे जीवा. सततं किमपि कर्म कर्त्तुं प्रवृत्ता (सन्ति), स्वकृतिनिरता· (ते) भोग भुक्त्वा एवम् काल वहन्ति । अपरम् एते स्वक्रियाभि मनुष्यान् सरस प्रीणन्ति । किन्तु (ते मनुष्या) एतान् (जीवान्) उदरम् अवितुं हिंसन्ति । (अतः ते) अवश्यं कृतघ्नाः सन्ति ।

अर्थ—सव जीवधारी निरन्तर किसी न किसी कर्म के करने के लिये तत्पर हैं। अपने कर्त्तव्य मे लगे हुए वे जीवधारी खा-पीकर इस प्रकार समय को गुजार देते हैं। (किन्तु किसी को कष्ट नही देते) इसके अतिरिक्त वे जीवधारी अपनी क्रियाओ से मनुष्यो को खूव प्रसन्न रखते हैं। किन्तु वे मनुष्य इन जीवधारियो को उदर भरने के लिये मारते हैं। इसलिये वे अवश्य कृतघ्न हैं।

(२६)

मर्त्या मृत्युं जनिमुपगताः क्लेशशेषं सहन्ते ,
नेच्छन्त्येते विषयविरतिं लेशतश्चाधिकर्त्तुम् ।
अस्त्येतत्तत् किमु समुचितं हिंसनं जीवराशेः ,
तस्मादेषा परमजननी साधनीया ह्यहिंसा ॥

अन्वयः—जनिम् उपगता मर्त्या क्लेशशेषं मृत्यु सहन्ते । एते च (मर्त्या·) लेशत· विषयविरतिम् अधिकर्त्तुं न इच्छन्ति । तत् जीवराशे. हिंसनं किमु एतत् समुचितम् अस्ति ? अर्थात् समुचित नास्ति। तस्मात् हि एषा परमजननी अहिंसा (सर्वथा) साधनीया (अस्ति)।

अर्थ—जन्म प्राप्त किये हुऐ मनुष्य कष्टमात्र मृत्यु को सहते हैं। और ये मनुष्य थोडे समय के लिये विषयो के विराम को अधिकृत करने के लिये चाह नही रखते। तव फिर जीवधारियो का मारना क्या यह समुचित है? अर्थात् समुचित नही है। अतएव निश्चयपूर्वक यह परममाता अहिंसा सव प्रकार से साधनी चाहिये।

(२७)

सत्यं नित्यं समुचितमतः सर्वथा रक्षणीयम् ,
प्राणैरेभिः किमिति यदितत् सत्यमेतद् विनष्टम् ।
तस्मात् प्राणी कठिनसमयेऽप्येनदेवं विहातुम् ,
शक्तो नायं त्यजति च पुनः प्राणतुल्यं स्वराज्यम् ॥

अन्वयः—सत्य नित्यं समुचितम् (अस्ति,) अतः (सत्यम्) सर्वथा रक्षणीयम् (आस्ते)। यदि एतत् सत्य विनष्टम्, तत् एभि प्राणै. किम् इति तस्मात् प्राणी (सत्यनिष्ठः) सन् कठिनसमये अपि एनत् (सत्यम्) एवं विहातु शक्त न (भवति), अय च पुन प्राणतुल्य स्वराज्य त्यजति। (अतः सत्यमावश्यकमस्ति, ततो रक्षणीयम्)।

अर्थ—सत्य सदा समुचित है, अत सत्य सर्वथा रक्षा के योग्य है। यदि यह सत्य नष्ट हो गया, तब फिर इन प्राणो से क्या अर्थ सिद्ध होगा, ऐसा मानना चाहिए। अतएव प्राणी सत्यनिष्ठ होकर कठिन समय मे भी इस सत्य को इस प्रकार छोडने के लिए समर्थ नही होता। और यह फिर प्राणतुल्य अपने राज्य को छोड बैठता है। इसलिए सत्य आवश्यक है, इस कारण से रक्षा के योग्य है।

(२८)

सत्यासक्तः स्थितिमनुसरन् सत्यसंरक्षणाय ,
सर्वं कष्ट तदनुभवति स्वस्य कर्त्तव्यपक्षात् ।
किन्तु प्राणानपि पणयितुं सत्यभक्तौ स्थितोऽसौ ,
सर्व सोढु प्रभवति पुनर्नैव सत्यं जहाति ॥

अन्वय—कर्त्तव्यपक्षात् सत्यसरक्षणाय स्वस्य स्थितिम् अनुसरन् सत्यासक्त (जन) सर्वं कष्टम् अनुभवति। तत् सत्यभक्तौ प्राणान् पणयितु स्थित सन् असौ सर्वं सोढुं प्रभवति, किन्तु पुनः अपि सत्य न एव जहाति।

अर्थ—कर्त्तव्य पक्ष को लेकर सत्य के सरक्षण के लिए अपनी स्थिति का अनुसरण करता हुआ सत्यानुरागी पुरुष सब कष्ट भोगता है। अत सत्य की सेवा मे प्राणो का सौदा करने के लिए खडा होकर वह सब सहने को तत्पर होता है, किन्तु सत्यवान् सत्य को नही छोडता।

(२९)

आज्ञां नीत्वा किमपि निहितं वस्तु यो निग्रहीतुम् ,
स्वीयां वृत्तिं कपटरहितां लाभलोभांशशून्याम् ।
स्वान्ते कृत्वाऽऽचरति सजनोऽस्तेयचित्तः प्रशस्तः ,
ह्यस्तेयात्मा विहरति सदा निर्भयो निर्विशङ्कः ॥

अन्वयः—य स्वान्ते कपटरहिता लाभलोभाशशून्या स्वीयां वृत्तिं कृत्वा निहित किम् अपि वस्तु आज्ञा नीत्वा निग्रहीतुम् आचरति स. प्रशस्तः अस्तेयचित्त जन (अस्ति)। यतो हि अस्तेयात्मा निर्भय. निर्विशङ्क विहरति।

अर्थ—जो, हृदय मे निष्कपट लाभ और लोभ के प्रभाव से रहित अपने व्यवहार को बनाकर, रखे हुए किसी भी पदार्थ को आज्ञा लेकर, काबू पाने का आचरण करता है, वह प्रशस्त अस्तेयचित्त मनुष्य होता है। क्योकि अस्तेयात्मा पुरुष सदा निर्भीक एव निश्शङ्क घूमता है।

(३०)

तेऽपि स्तेना भवितुमिह ये शक्नुवन्त्येव लोके ,
वित्तं लब्ध्वा विदधति निधौ सङ्ग्रहायैव यत्नम् ।
किन्तूत्पत्तौ सकलविभवस्यास्य योगोऽस्ति येषाम् ,
एवं तेभ्यो ददति न जना वित्तमन्ते कदाचित् ॥

अन्वयः—इह लोके ये वित्त लब्ध्वा निधौ एव सङ्ग्रहाय यत्न विदधति, किन्तु अस्य सकलविभवस्य उत्पत्तौ येषा (जनाना) योग अस्ति, तेभ्य. (जनेभ्य.) अन्ते वित्तं न ददति, एव कदाचित् ते अपि जना स्तेनाः भवितु शक्नुवन्ति।

अर्थ—इस ससार मे जो धन प्राप्तकर कोष मे ही जमा करने के लिए यत्न करते रहते है, किन्तु इस समस्त धन की उत्पत्ति मे जिन मनुष्यो का योग है, उन मनुष्यो को अन्त मे धन नही देते, ऐसे कदाचित् वे भी मनुष्य-चोर हो सकते है।

(३१)

अस्तेयं यत् स्वयमधिगत द्रव्यमन्यस्य हेतोः ,
दातारो ये हितमिति भवेदस्यकिञ्चित् कथञ्चित् ।
ते सर्वेऽमी सदयहृदयाः सन्ति पुण्यप्रभावाः ,
धन्यात्मानो जगति जयिनो दानिनोऽस्तेयचित्ताः ॥

अन्वय.—'अस्य अन्यस्य कथञ्चित् किञ्चित् हित भवेत् इति हेतो. ये दातार यत् स्वयम् अविगतम् अस्तेय द्रव्य ससुख ददति, अमी सर्वे ते पुण्यप्रभावा' धन्यात्मान. अस्तेयचित्ता. जयिनः दानिन. सन्ति । -

अर्थ—'इस दूसरे का किसी प्रकार कुछ भला हो' इस हेतु से जो दाता जिस स्वय प्राप्त अस्तेय द्रव्य को सुविधानुसार देते हैं, ये सभी वे पुण्यवान् धन्य अस्तेय चित्त यशस्वी हैं, जो दानी कहे जा सकते हैं।

(३२)

रूपोत्कृष्टां श्लथितवसनां कामिनीं कामदग्धाम् ,
सम्यक् दृष्ट्वा चलति न मनश्चञ्चलं यस्य धीरम् ।
अत्यासक्तामपि सुवदनामुत्तरं यो न दद्यात् ,
छायां तस्याः स्पृशति न करो यस्य स ब्रह्मचारी ॥

अन्वय.—रूपोत्कृष्टां श्लथितवसनां कामदग्धां कामिनी सम्यक् दृष्ट्वा यस्य चञ्चलं मन. धीर सत् न चलति, यः अत्यासक्ताम् सुवदनाम् अपि उत्तरं न दद्यात्, यस्य करः तस्या' (कामिन्याः) छाया न स्पृशति, स ब्रह्मचारी (भवति)।

अर्थ—रूप से उत्कृष्ट खिसके हुए वस्त्रो वाली कामार्त्त कामिनी को भली प्रकार से देखकर जिसका चञ्चल मन धीर होकर विचलित नही होता, जो अत्यासक्त सुवदना कामिनी को उत्तर तक नहीं देता, जिसका हाथ उस कामिनी की छाया तक भी नहीं छूता, वह ब्रह्मचारी होता है।

(३३)

ब्रह्माश्चर्यं जगति तनुते ब्रह्मचर्यं प्रशस्तम् ,
यस्योत्कर्षं भुवनविदितं कोऽपि वक्तुं न शक्तः ।
रम्यं रूपं स्पृशति तृणकं लज्जमानं परन्तु ,
स्वस्यास्तित्वं कथमपि धरन् नृत्यतीदं तदग्रे ॥

अन्वयः—जगति प्रशस्त ब्रह्मचर्यं ब्रह्माश्चर्यं तनुते। यस्य (ब्रह्मचर्यस्य) भुवनविदितम् उत्कर्षं कः अपि वक्तु शक्त न (अस्ति)। रम्य रूप (कर्तृ) लज्जमानं सत् तृणकं स्पृशति, परन्तु इद (रम्य रूप) स्वस्य अस्तित्व कथमपि धरत् तदग्रे नृत्यति, अर्थात् ब्रह्मचर्यं सर्वातिशायि वर्त्तते।

अर्थ—ससार मे प्रशस्त ब्रह्मचर्य ने महान् आश्चर्य फैला रखा है। जिस ब्रह्मचर्य के विश्वविख्यात वैशिष्ट्य को कोई भी कहने के लिए समर्थ नही हो सका है। यहाँ तक कि यह रमणीय रूप भी लज्जित होकर तिनके तोडने लगता है, किन्तु यह अपने अस्तित्व को किसी प्रकार रखकर उस ब्रह्मचर्य के सामने मे नाचता रहता है, अर्थात् यह ब्रह्मचर्य जगदुत्तर है।

(३४)

इच्छाबद्धो विकृतहृदयश्चिन्तया पीडितोऽयम् ,
श्रेष्ठं वस्तु प्रभवति सदा स्वात्मने निग्रहीतुम् ।
सर्वस्वं मे भवतु निखिलं सर्वथैवं विचिन्वन् ,
स्वार्थी जीवो ग्रहणनिरतो जायते दुःखदग्धः ॥

अन्वय—अय विकृतहृदय (मनुष्य.) इच्छाबद्ध. चिन्तया पीडितः सन् सदा स्वात्मने श्रेष्ठ वस्तु निग्रहीतु प्रभवति। सर्वथा विचिन्वन् 'निखिल सर्वस्व मे भवतु' एवम् इच्छति। (यतो हि) ग्रहणनिरत. स्वार्थी जीव. दु खदग्धः जायते।

अर्थ—यह विकृत हृदय वाला मनुष्य इच्छाओ से घिरा हुआ चिन्ता से पीडित होकर सदा अपने लिए श्रेष्ठ वस्तु को पाने के लिए प्रभाव डालता है। सब प्रकार से सग्रह करता हुआ 'सम्पूर्ण सर्वस्व मेरा हो' ऐसा चाहता है। क्योकि आपाधापी मे सलग्न स्वार्थी प्राणी बेचैन बन जाता है।

(३५)

पारिग्रह्या[1] ग्रहणविषया दुःखमूला प्रवृत्ति. ,
त्यक्तव्येयं विशदहृदयै· सर्वथा दुष्प्रवृत्तिः ।
अस्यास्त्यागाद् भवति च पुन मोक्षमार्गाधिकारी,
तस्मादन्ते जयति जगतीं जागरूकोजनोऽसौ ।

अन्वयः—ग्रहणविषया दु खमूला प्रवृत्तिः पारिग्रह्या (अस्ति) विशद-हृदयै (साधकै.) इय दुष्प्रवृत्ति सर्वथा त्यक्तव्या (वर्त्तते)। अस्याश्च (दुष्प्रवृत्ते) त्यागात् पुन. (साधक·) मोक्षमार्गाधिकारी भवति। तस्मात् मोक्षमार्गाधिकारात् अन्ते असौ (साधक·) जन. जागरूक सन् जगती जयति।

अर्थ—ग्रहणविषयवाली दु खमूल की प्रवृत्ति पारिग्रह्या है। स्वच्छान्त करण साधको के द्वारा यह दुष्प्रवृत्ति सर्वथा छोडने के योग्य है। और इस दुष्प्रवृत्ति के परित्याग से फिर साधक मोक्ष के मार्ग का अधिकारी बनता है। उस मोक्ष के मार्ग के अधिकार के बाद वह साधक पुरुप निरन्तर जगकर ससार को जीतता है।

(३६)

एताः शिक्षाः कृतपरिचयाः स्वात्मनैवाधिगत्य ,
सश्रद्धोऽयं भ्रमति परितो निर्भ्रमः सन्नुदस्तः ।
स्वीयान् भावान् हृदयनिहितान् बोधयन्नात्मनीनान्,
क्षन्तुं लोकान् नमति निपुणं वा क्षमां चाधिगन्तुम् ॥

अन्वयः—स्वात्मना एव एता. कृतपरिचया शिक्षा अधिगत्य अय सश्रद्ध निर्भ्रम. च उदस्त. सन् परित भ्रमति। स्वीयान् हृदयनिहितान् भावान् आत्मनीनान् बोधयन् लोकान् क्षन्तु वा क्षमाम् अधिगन्तुम् निपुण नमति।

अर्थ—अपने आप ही इन पूर्वपरिचित शिक्षाओ को अधिगत कर यह श्रद्धालु और सावहित उदासीन होकर उधर-इधर घूमता-फिरता है। और अपने हृदयस्थ विचारो को अपने ही हितेच्छुओ को समझाता हुआ (अमरसिंह) मनुष्यो को क्षमा करने के लिये अथवा उनसे क्षमा प्राप्त करने के लिये कुशलतापूर्वक नमस्कार करता है।

---

१ परिग्रह एव पारिग्रह्यम्, स्वार्थेष्यत्र्। ततो मत्वर्थीयि 'अर्शआद्यच्' इत्यच् प्रवृत्तेर्विशेषणत्वेन स्त्रीत्वम्।

(३७)

भावापन्नं प्रभवति ततः प्रेमसम्पृक्तचित्तम् ।
लोकं दृष्ट्वा मधुरवचनैश्चापि संक्षिप्तवृत्तैः ।
शान्तं कर्त्तुं प्रतिदिनमयं धर्मबालोष्णरश्मिः ,
पुण्यश्लोकः सरसवचसा तर्पयत्येव जन्यून् ॥

अन्वयः—तत अयं धर्मबालोष्णरश्मि (अमरसिंह) प्रेम-सम्पृक्तचित्त भावापन्न लोक दृष्ट्वा मधुरवचनैः च सक्षिप्तवृत्तै. शान्तम् कर्त्तुं प्रतिदिन प्रभवति। (यतो हि) पुण्यश्लोक (पुरुष) एव सरस वचसा जन्यून् तर्पयति।

अर्थ—तदनन्तर यह धर्म का उदायमान सूर्य अमरसिंह प्रेम से सम्पृक्त चित्त वाले भावुक मनुष्य को देखकर मीठे वचनो से और इधर-उधर की बातो से शान्त करने के लिये प्रतिदिन प्रभावित करते थे। क्योकि सत्पुरुष ही सरस वचन से मनुष्यो को अघा देते है, अर्थात् प्रसन्न रखते हैं।

(३८)

प्रीणन्त्यन्ये चयितविभवा भुक्तभोगप्रपञ्चाः ,
धन्यंमन्याः स्वकृतिविवशाः पापकृत्यानि भर्त्तुम् ।
सन्त्येकेऽमी विरतहृदया मृत्युजन्मैकचिन्ताः ,
संसारोऽयं विविधविषयव्याप्तचित्तोऽन्धहस्ती ॥

अन्वयः—(अस्मिन् ससारे एकत) भुक्तभोगप्रपञ्चा धन्यमन्याः चयितविभवाः स्वकृतिविवशा पापकृत्यानिभर्त्तुं प्रीणन्ति,. (किन्तु) अन्ये मृत्युजन्मैकचिन्ताः विरतहृदया. एके अमी (अपि) सन्ति, अर्थात् ससारोऽय विलक्षण एवास्ति। (अत) अय ससार विविधविषयव्याप्तचित्त. अन्धहस्ती अस्ति।

अर्थ—(इस ससार मे एक ओर) विभिन्न भोगो को भोगने वाले अपने आपको धन्य समझते हुए धनसम्पत्तिशाली स्वकर्माधीन होकर पापो के कृत्यों को पोषण देने के लिये प्रसन्न हो रहे हैं। (किन्तु) (दूसरी ओर) मृत्यु और जन्म की प्रमुख चिन्तावाले उदासीन दूसरे ये भी है, अर्थात् यह ससार अनोखा ही है। इसलिये यह संसार विविध विषयो से भरे हुए चित्त का एक अन्धा हाथी है—ऐसा कहा जा सकता है।

(३९)

सिंहः सोऽयं तृणमयचयं मन्यते शूलमूलम् ,
सर्वश्रेष्ठ विभवभरितं मन्दिरं स्वर्गकल्पम् ।
अभ्रस्पर्शि प्रतिकृतिसमं भव्यकर्मप्रतीकम् ,
मोहोत्पन्नं गणयति सदा वीतरागोऽनुरागम् ॥

अन्वयः—(किन्तु विरक्त) स अभ्रस्पर्शि भव्यकर्मप्रतीकम् प्रतिकृतिसम विभवभरित स्वर्गकल्प सर्वश्रेष्ठ मन्दिरम् अयम् सिंह (अमरसिंहः) शूलमूल तृणमयचय मन्यते। (यतोहि) सदा वीतराग (जन) अनुराग मोहोत्पन्न गणयति।

अर्थ—किन्तु विरक्त होकर वह—गगनचुम्बी, भव्यकर्म का प्रतीक, नमूने के समान, धन-धान्य से पूर्ण स्वर्ग से कुछ कम आलीशान मकान को यह सिंह अमरसिंह कष्टो की जडकाघास-फूंस का ढेर समझता है। क्योकि सदा वीतराग पुरुष अनुराग को मोह से उत्पन्न हुआ ही गिनता है।

(४०)

आज्ञां लब्ध्वा धृतमतिरयं पूज्यपादात् पितुश्च ,
मातुर्मत्वा शुभमतिशयं भव्यभावोदयस्य ।
दीक्षाऽऽदान विमलमतिकाल्लालचन्द्रान्मुनीन्द्रात् ,
प्राप्तुं रत्न यतति नियतं पञ्चशिक्ष्या व्रतस्य ॥

अन्वय—अय धृतमति (अमरसिंह) मातु पूज्यपादात् पितु. च आज्ञा लब्ध्वा भव्यभावोदयस्य शुभम् अतिशय पञ्चशिक्ष्या व्रतस्य रत्नम् दीक्षाऽदान मत्वा विमलमतिकात् मुनीन्द्रात् लालचन्द्रात् प्राप्तुम् नियत यतति।

अर्थ—यह निश्चयी अमरसिंह माता और पूज्यपाद पिता की आज्ञा लेकर भव्य भावो के उदय का मङ्गलमय आधिक्य, समाहृत पाँचो शिक्षाओ के व्रत के रत्न दीक्षाऽदान को मानकर विद्वान् श्रीलालचन्द्र मुनिराज से उक्त रत्न को प्राप्त करने के लिये नियमपूर्वक यत्न करता है।

(४१)

हेतोस्तस्मात्प्रतिदिनमयं याति दीक्षां जिघृक्षुः ,
ध्याने मग्ना विहितविधयः श्रावका यत्र सन्ति ।
तत्रैवासो निजविधिरतो लालचन्द्रो मुनीन्द्रः ,
स्थाने वासी धवलवसनो राजते वक्त्रवस्त्रः ॥

अन्वयः—तस्मात् हेतो' अयम् (अमरसिह.) दीक्षाम् जिघृक्षु. प्रतिदिन याति, यत्र विहितविधयः ध्याने मग्ना. श्रावका सन्ति। तत्र एव असौ स्थाने वासी वक्त्रवस्त्र निजविधिरतः मुनीन्द्र. लालचन्द्रः राजते।

अर्थ— इस कारण से यह दीक्षा ग्रहण करने की इच्छा रखने वाला अमरसिह प्रतिदिन पहुँचता है, जहाँ पर सामायिकादि क्रिया करने वाले ध्यानस्थ श्रावक है, वहाँ पर ही वे स्थानकवासी मुख पर वस्त्रधारण किये हुए निज क्रियाओ मे लीन मुनिराज श्री लालचन्द्र जी विराजते हैं।

(४२)

सोऽयं श्रद्धाविनतवदनः सत्रिकृत्वोऽभिवन्द्य ,
गुप्तेर्ज्ञानं समिति सहितं चाधिगत्योपभिक्षुः ।
स्तोकव्यूहं स्मरति सततं शास्त्रसारस्वरूपम् ,
येनाऽहं स्यां परमकृपया मे गुरोः प्रीतिपात्रम् ।

अन्वय·—सः अयम् श्रद्धाविनतवदनः सत्रिकृत्व अभिवन्द्य उपभिक्षु स समिति सहित गुप्तेः ज्ञानम् अधिगत्य शास्त्रसारस्वरूप स्तोकव्यूह सतत स्मरति। येन अहम् मे गुरो. परमकृपया प्रीतिपात्र स्याम्।

अर्थ—अव यह श्रद्धा से नतमुख हो तीन वार वन्दन कर और मुनिजन के समीप म समिति सहित गुप्ति के ज्ञान को प्राप्त कर शास्त्रो के सारस्वरूप थोकडो को निरन्तर गिनता रहता है। जिससे कि मैं अपने गुरु की परमकृपा से प्रीतिपात्र वन जाऊँ।

(४३)

सश्रद्धोऽयं विधिमुपगतोऽभ्यस्तशास्त्रोऽप्युदस्तः ,
दीक्षार्थी सन् प्रणतनयनो भावमात्रप्रवीण· ।
ब्रूते यत्कि कथयतु भवानस्मि दीक्षां ग्रहीतुम् ,
योग्योऽवोचत्स इति सहसा यद्यहं स्या गुरुस्ते ॥

अन्वयः—विधिम् उपगत , भावमात्रप्रवीण , अभ्यस्त-शास्त्र. अपि उदस्त सश्रद्ध प्रणतनयन दीक्षार्थी सन् अय ब्रूते यत् भवान् कथयतु, किम् (अह) दीक्षा ग्रहीतु योग्य अस्मि इति, स (मुनिराज) (श्रीलालचन्द्र.) सहसा अवोचत्—यदि अहम् ते गुरु स्याम्—(तदा त्व योग्य असि, अन्यथा त्व योग्योनासीत्यर्थं) ।

अर्थ—क्रियावान् भावुक विद्वान् होकर भी उदासीन श्रद्धालु झुके हुए नेत्रो वाला दीक्षा की चाह रखकर कहता है कि आप बताइये, क्या मैं दीक्षा ग्रहण करने के लिये योग्य हूं ? ऐसा वे मुनिराज श्री लालचन्द्रजी एक साथ कहने लगे कि यदि मैं तेरा गुरु होता हूँ तो तू योग्य है, अन्यथा तू योग्य नही है—यह इसका अर्थ है ।

(४४)

स्वीकारोक्ति स्वयमधिकृतां प्रेमपूर्वां मुनेस्तु ,
श्रुत्वा हर्षं जनयति परं देवसिंहात्मजोऽयम् ।
चर्चेयं तु प्रचलति तदा धर्मवृद्धेष्वहो किम् ,
सन्तोऽप्येवं धृतिमुपगताः शिष्यतां घोषयन्ति ॥

अन्वय —मुने स्वयम् अधिकृता प्रेमपूर्वा स्वीकारोक्तिम् श्रुत्वा अय देवसिंहात्मज· (अमरसिंह·) तु पर हर्षं जनयति । (किन्तु) इय चर्चा धर्म-वृद्धेषु प्रचलति—अहो एव किम् धृतिम् उपगता सन्त सन् अपि शिष्यता घोषयन्ति ।

अर्थ—मुनिराजश्री की स्वाधिकृत प्रिय स्वीकृति के वचन सुनकर श्री देवसिंह जी के पुत्र अमरसिंह तो मारे हर्ष के फूले नही समाये । किन्तु यह चर्चा धार्मिक पुरुषो मे चलने लगती है कि देखो—धीर सन्त होकर भी शिष्यता की घोषणा करते हैं ।

(४५)

सुकृतं कृतमस्ति वा न वा, यदि शङ्का तव मानसे ननु ।
कथमेति तु चास्य निश्चयः, तदनु प्राप्नुहि काव्य-कौशलम् ॥

अन्वयः—कविरिह कवि स्तौति—त्वया सुकृत कृतं न वा कृतम् यदि (एतादृशी) शङ्का ननु तव मानसे (अस्ति)। अस्य (प्रश्नस्य) च निश्चयः कथम् एति ? इति प्रश्ने तु—कवेः काव्यकृतिं तदा पश्य, इत्युत्तरमस्ति। एतेन ज्ञायते-सुकृतवानेव कविर्भवति। यस्य सम्यक् कृत नास्ति, न कोऽपि त प्रशसते एव स कविरपि नास्ति। अतो नाहं कविरस्मीत्यर्थः।

अर्थ—यहाँ कवि कवि की स्तुति करता है—तू ने सुकृत किया है कि नही—यदि ऐसी शङ्का तेरे मन मे है तो फिर इस प्रश्न का निश्चय कैसे हो ? इस प्रश्न पर उत्तर मिलता है कि कवि की काव्यकृति को देख। इससे ज्ञात होता है—सुकृतवान् अर्थात् पुण्यवान् ही कवि होता है। जिसका अच्छा किया नही है, उसकी कोई प्रशसा नही करता। इस प्रकार वह कवि भी नही है।

(४६)

अथ कविर्विशिनष्टि विशेषितम् ,
नरवरं सुगुणैः सकलैर्यथा ।
कुसुम सौरभपत्रसमुच्छ्रितम् ,
तरुमलङ्कुरुते कृतिमालिकः ॥

अन्वयः—अथ कविः विशेषितं नरवरं सकलैः सुगुणैः विशिनष्टि, यथा कृतिमालिकः कुसुमसौरभपत्रसमुच्छ्रितं तरुम् अलङ्कुरुते।

अर्थ—कवि विशेषित मनुष्य श्रेष्ठ को सभी सुगुणो से उपलक्षित विशेषण देकर वर्णन करता है, जैसे चतुर माली पुष्पो की गन्ध और पत्तो से बढे-चढे वृक्ष को अच्छा लगे ऐसा सँवारता रहता है।

(४७)

तदनुरूपमहं गुणशालिनम् ,
अमरसिंह भविष्णुमुनिं गुरुम् ।
प्रविशिनड्मि शुभैः पदभूषणैः ,
पददरिद्रकविः कविकिङ्करः ॥

अन्वयः—तदनुरूपम् अहं पददरिद्रकवि कविकिङ्कर. गुणशालिन गुरुम् अमरसिंहभविष्णुमुनिं शुभै पदभूषणै प्रविशिनड्मि ।

अर्थ—तदनुरूप मैं शब्दो के अभाव से ग्रस्त कवि, कविओ का वशवर्ती गुणशाली गुरु अमरसिंह भविष्णु मुनि को माङ्गलिक शब्द रूप भूषणो से उपलक्षित विशेषण देकर वर्णन कर रहा हूँ ।

(४८)

अहन्तु मन्ये परमेव दुष्करम् ,
सुवर्णनं तत् प्रतिभाविलासिभिः ।
सुशब्द धारारसरीत्यलङ्कृतम् ,
विधीयते यत् कविभिर्महाशयैः ॥

अन्वयः—महाशयैं प्रतिभाविलासिभि कविभि यत् सुशब्दधारारसरीत्यलङ्कृत सुवर्णन विधीयते, तत् परम दुष्करम् एव (अस्ति) । इति तु अह मन्ये । (तथापि मया वर्ण्यते विवक्षयेत्यर्थ.) ।

अर्थ—महान् आशय वाले प्रतिभाधारी कविओ के द्वारा जो सुन्दर वर्णन किया जाता है, वह वहुत कठिन ही है, ऐसा तो मैं मानता हूँ । तो भी मेरे द्वारा यह वर्णन किया जा रहा है, वह सव कहने की इच्छा से ही है—यह ऐसा इसका अर्थ है ।

(४६)

दीक्षायां यदपेक्षितं विवरणं संवर्ण्य शक्तेः परम् ,
दीक्षामेवमहं पुनर्विवरितुं वाञ्छामि सेच्छ ततम् ।
येनायं मुनिरेव कीर्त्तिविमलो जायेत सिंहोऽमरः ,
प्रख्यातः स्वगुणैर्महानपि पुनर्वर्ण्येत सर्गेऽग्रिमे ॥

अन्वय—(मम) शक्तेः पर यत् अपेक्षित विवरण दीक्षायाम् (आसीत्) तत् संवर्ण्य अहम् एव सेच्छ तत पुन. विवरितुम् वाञ्छामि, येन स्वगुणैः प्रख्यात. अपि कीर्त्तिविमल. सिहः मुनिः अमर. (अमरसिंह.) महान् एव जायेत। अतः (मया) पुनः अयम् अग्रिमे सर्गे वर्ण्येत।

अर्थ—मेरे सामर्थ्य से अधिक जो अपेक्षित विवरण दीक्षा के विषय मे था, उसको भली प्रकार वर्णित कर मैं अब इच्छा के साथ विस्तृत विवरण को एक वार फिर वर्णित किया चाहता हूँ, कि जिससे अपने गुणो से प्रख्यात होने पर भी प्रशस्त सिंह सदृश मुनि अमरसिंह महान् ही बने रहे। इसीलिए मेरे द्वारा फिर यह (अमरसिंह) आगे के सर्ग मे वर्णित किया जायेगा।

इति श्रीमता राजस्थान केसरिणा पण्डितरत्नेन
उपाध्याय पदालङ्कृतेन पुष्करमुनिना विरचिते
श्रीमदाचार्यामरसिंह महाकाव्ये
द्वितीयः सर्गः



(५)

दीक्षायै यतसे परन्तु सतत जानीहि तथ्यं परम् ,
काठिन्यं नितरा तथापि सुयमा तेषां कृते विद्यते ।
सद्ज्ञानाभिरता विरक्तहृदयास्त्यक्तानुरागाक्रिया: ,
ये सन्ति प्रथमे समे सकरुणा· स्वेषां परेपां समा: ॥

अन्वय:—(यद्यपि) त्व दीक्षायै यतसे (एतत्तु सत्यम्) परन्तु दीक्षायाम् त्व पर तथ्य जानीहि, यत्तत्र सतत नितरा काठिन्य (वर्त्तते)। तथापि इय दीक्षा तेपा कृते सुगमा विद्यते, ये समे प्रथमे सत्तत्त्वाभिरता· विरक्त हृदया त्यक्तानुरागक्रिया· स्वेपा परेपा च समा: सन्ति ।

अर्थ—यद्यपि तुम दीक्षा लेने के लिये यत्न कर रहे हो, यह तो ठीक है, किन्तु दीक्षा के विपय मे एक बडा तथ्य तुम को जान लेना चाहिये कि इसमे निरन्तर महान् काठिन्य है। तथापि यह दीक्षा उनके लिये सुगम है, जो सभी पहले सत्तत्व मे लीन हैं, विरक्त हृदय के हैं, अनुराग की क्रियाओ को छोडे हुए हैं, आत्मीय और अन्यदीय के निर्धारण के समान हैं ।

(६)

चोलं किं प्रथसे विशिष्टमपरं केशस्य लोचं पुन. ,
वान्यद् मुण्डनमात्रमेव मनुपे चिह्नं विरक्तेरित: ।
यद्वा त्वं तनुषे स्वतन्त्रमपि तद् वक्तुं किमन्यत्स्वत: ,
येनस्यादभित: स्फुट यदिह ते स्पष्टं त्वभीष्ट मतम् ॥

अन्वय:—कि त्व विरक्ते विशिष्ट चिह्न चोल प्रथसे ? अपर वा केशस्य लोच प्रथसे ? अन्यद् वा मुण्डनमात्रम् एव मनुषे ? यद्वा स्वत: अपि अन्यत् स्वतन्त्रम् तद् वक्तु तनुषे किम् ? येन अभित स्फुट ते यदिह अभीष्ट मत स्पष्ट स्यात् ।

अर्थ—क्या तुम विरक्ति का विशिष्ट चिन्ह चोलवस्त्र कहते हो ? अथवा केश के लोच को वताते हो ? अथवा मुण्डन को ही विरक्ति का चिह्न मानते हो ? अथवा इस विरक्ति के विषय मे तुम्हारा कोई स्वतन्त्र चिह्न है जिसको तुम विस्तृत किया चाहते हो ? जिससे कि सव ओर से स्फुट तुम्हारे अभीष्ट सिद्धान्त का स्वरूप ज्ञात हो सके ।

(७)

प्रश्नैरेव यदस्ति मेऽपि भवतां ज्ञातव्यमस्त्युत्तरम् ,
तेषामाशय एव मे परिचय सम्प्राप्तुमिच्छन्ति तत् ।
श्रीमन्तो मनसो दृढं समुचितं तस्योत्तरं वर्त्तते ;
संक्षिप्तं परिहाय चोत्तरमिदं भक्तोऽस्म्यहं श्रद्धया ॥

अन्वयः—भवताम् एव प्रश्नै यत् ज्ञातव्यम् अस्ति, (तस्य) मे अपि उत्तरम् अस्ति । (किन्तु) तेषाम् (प्रश्नानाम्) आशय एव अस्ति-यत् श्रीमन्तः मे मनसः दृढ परिचयं सम्प्राप्तुम् इच्छन्ति । तस्य च समुचितम् उत्तरम् वर्त्तते । (तथापि) तत् परिहाय (मम) सक्षिप्तम् उत्तरम् अस्ति—(यद् भवताम्) अहं श्रद्धया भक्त· अस्मि ।

अर्थ—आपके ही प्रश्नों से जो समझा गया है, उसका मेरा भी उत्तर है। किन्तु उन प्रश्नो का अभिप्राय ही यह है कि श्रीमान् मेरे हृदय के वास्तविक परिचय को अच्छी तरह से प्राप्त किया चाहते हैं। और उसका समुचित उत्तर भी है। तथापि उसको छोड़कर मेरा सक्षिप्त उत्तर यही है कि आपका मैं श्रद्धा से भक्त हूँ।

(८)

चोलस्यास्य स्वरूपकथनाद् मूल्यं न किञ्चित्परम् ,
मूल्यञ्चास्य तदैव जीवनमिदं सद्भावपूर्ण भवेत् ।
मूल्यं किं शिरसः सुकेशमभितो लोचान्वितं यत्कृतम् ,
मूल्यं तद् यदि मुण्डनस्य शिरसःकर्मक्षयोऽयं भवेत् ॥

अन्वयः—अथापि निर्दिशत्युत्तरम्—अस्य चोलस्य चोलपट्टस्य वा (साधुरयमिति) स्वरूपकथनात् पर किञ्चित् मूल्य नास्ति। (अस्य च) मूल्य तदा एव (सम्भवेत्) यत् इद जीवन सद्भावपूर्णं भवेत्। शिरस. यत् अभित· सुकेश लोचान्वित कृत (तस्य) मूल्य (विरक्तोऽयमिति) कथनात् अधिकं मूल्य नास्ति। शिरसः मुण्डनस्य यदि मूल्य (सम्भवेत्) तत्—(शिरसि प्रसृताना) कर्मणां क्षय भवेत् ।

अर्थ—इस चोल या चोलपट्ट का (यह साधु है) इस स्वरूप-कथन के अतिरिक्त कोई मूल्य नही है। और इसका मूल्य तो तव ही हो सकेगा जव यह जीवन सद्भावपूर्ण हो या वने। शिर के सुन्दर केश का लोच करने का भी (यह विरक्त है) इससे अधिक क्या मूल्य हो सकता है ? शिर के मुण्डन का यदि कोई मूल्य हो सकता है तो वह यही है कि शिर पर छाये हुए कर्मों का क्षय हो।

तृतीयः सर्गः

(१)

जैनं शासनमेव नाम शरणं यस्यास्ति घोरव्रतम् ,
त सन्त प्रणमन्ति धर्मनिरताः पुण्यार्जिता सज्जनाः ।
ये स्वं ते विततं तयाप्यतिकथ किञ्चित्कर मन्वते ,
तस्याग्रे कथनं सदा विकथनं पुण्याय मन्यामहे ॥

अन्वय—यस्य जैन शासनम् नाम, घोरव्रत शरणम् अस्ति, त सन्त ते धर्मनिरता पुण्यार्जिता सज्जना प्रणमन्ति, ये विततम् अतिकथ स्व तथापि किञ्चित्करम् मन्वते । तस्य अग्रे कथनम्, सदा विकथनम् (अस्ति), पुन तस्य कथन कुत क्रियते ? तत्कथन वय पुण्याय मन्यामहे अतस्तत् कथनमस्ति–इत्यर्थ ।

अर्थ—जिसका जैन शासन ही एक रक्षक है, ऐसा घोर व्रत था—अर्थात् आजीवन जिसका पालन और प्रचार किया, ऐसे उस घोरव्रती को, वे धार्मिक पुण्यवान् सज्जन प्रणाम करते हैं, जिन्होने अपार वर्णनातीत सम्पत्ति को तुच्छ समझा है या मानते है । ऐसे उस सन्त के सामने कहना, सदा न कहने के समान ही है । फिर उसका कथन किसलिये करते हो ? इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि कोई न कोई तो पुण्य होगा ही । अत हम उस सन्त की प्रशसा करते है ।

(२)

नक्षत्रे विमले विधाय घटिते पञ्चाङ्गसिद्धे शुभे ,
श्रीसघानुमते विशुद्धसमये ख्याते मुहूर्त्ते विधिम् ।
दीक्षार्थी परमादृतोऽपि विनयी शिष्टेष्वपीष्टोऽमरः ,
धर्माप्ता महती सुबोधजननी दीक्षां स्वत. प्रेक्षते ॥

अन्वयः—श्रीसङ्घानुमते पचाङ्गसिद्धे निर्दोषे शुभे नक्षत्रे विशुद्धसमये ख्याते मुहूर्त्ते घटिते विधि विधाय परमादृतोऽपि विनयी शिष्टेष्वपि इष्ट दीक्षार्थी अमरसिह धर्माप्ता महती सुबोधजननी दीक्षा स्वतः प्रेक्षते ।

अर्थ—श्री सघ से अनुमत, पचाग से सिद्ध, निर्दोष शुभ नक्षत्र के रहते हुए विशुद्ध समय के प्रसिद्ध मुहूर्त्त के घटित होने पर, विधि को सम्पादित कर, अधिक आदर किये जाने पर भी विनीत, एव शिष्टजनो मे भी अभिमत दीक्षार्थी अमरसिंह, धर्म से प्राप्त महत्त्वपूर्ण, सुवोध को उत्पन्न करनेवाली दीक्षा की प्रतीक्षा करने लगता है ।

---

१ सर्गेऽस्मिन् 'शार्दूल विक्रीडित म्सौ ज्सौ तौ गादित्यऋषय ।

(३)

दीक्षां भागवती ददातु भगवन् कारुण्यवारां निधे !
आधिव्याधिकथाकराय विमलामज्ञाय जीवाय मे ।
रुद्धोऽहं भवजन्ममृत्युगतिभिः संसारदुःखार्णवम् ,
येन स्यां त्वरितं समर्थशरणः पोतस्तरीतुं यथा ॥

अन्वयः—हे कारुण्यवारां निधे ! भगवन् ! आधिव्याधिकथाकराय अज्ञाय जीवाय मे विमला भागवती दीक्षा ददातु । (यतो हि) अह भवजन्म-मृत्युगतिभि: रुद्ध (अस्मि)। येन (यद्यह दीक्षितो भवामि तदा) समर्थशरणः सन् ससारदु.खार्णवम् त्वरित तरीतु पोत यथा स्याम् ।

अर्थ—हे कारुण्यरूप जल के निधि भगवन् ! आधि और व्याधि को कहानियो की खान जैसे अबोध प्राणी मुझको पवित्र भागवती-दीक्षा प्रदान कीजिये । क्योकि मैं ससार के जन्म और मृत्यु की स्थितियो से अवरुद्ध हूँ। जिससे (यदि दीक्षित होता हूँ तो) समर्थशरण होकर ससार के दु ख रूप समुद्र को शीघ्र तैर कर पार पाने के लिये, जहाज के समान हो जाऊँ।

(४)

श्रुत्वा तस्य वच. स्वभावकरुणो दीक्षाप्रदाता मुनिः ,
ब्रूते तं विनयानतं सकरुणं दीक्षाव्रत प्रार्थिनम् ।
आभारव्यथितं मनोहरमिदं हर्षप्रकर्ष वचः ,
दीक्षां दातुमनास्तथापि तदहं याचे किमप्युत्तरम् ॥

अन्वयः—स्वभावकरुणः दीक्षाप्रदाता मुनि (श्रीलालचन्द्र महाराज) तस्य वच. श्रुत्वा तम् आभारव्यथित विनयानत दीक्षाव्रतप्रार्थिनम् (अमरसिंहं) सकरुण हर्षप्रकर्षमनोहरम् इदं वचः ब्रूते, (यद्यपि) अहम् दीक्षा-दातुमना (अस्मि)। तथापि किम् अपि तद् उत्तर याचे ।

अर्थ—परमदयालु दीक्षा देनेवाले मुनि श्रीलालचन्द्रजी महाराज ने उसकी प्रार्थना सुनकर, उस आभार व्यथित विनय से नम्र दीक्षाव्रत के प्रार्थी अमरसिंह को दया के साथ हर्षाधिक्यवाले चित्ताकर्षक वचन कहने लगे कि यद्यपि मैं दीक्षा देने के लिये तत्पर हूँ, तथापि कुछ उत्तर चाहता हूँ।

(९)

तस्मान्मे समताधुनापि हृदये स्वाभाविकी राजते ,
धर्मं कर्त्तुमिहैव मङ्गलमयं श्रेष्ठां च वृत्तिं श्रये ।
अस्याः कारणतो मदीयपितरौ सद्भावपूतात्मकौ ,
गृह्णीतो दययानुभावमतुलं माङ्गल्यमूलं मयि ॥

अन्वयः—तस्मात् मे हृदये अधुना अपि स्वाभाविकी समता राजते। मङ्गलमय धर्मं कर्त्तुं श्रेष्ठा च वृत्ति श्रये। अस्याः (समतायाः) कारणतः सद्भावपूतात्मकौ मदीयपितरौ मयि दयया अतुल माङ्गल्यमूलम् अनुभावम् गृह्णीत ।

अर्थ—इससे मेरे हृदय मे आज भी स्वाभाविक समता विद्यमान है। मङ्गलमय धर्म के आचरण के लिए श्रेष्ठ वृत्ति का आश्रय ले रहा हूँ। इस समता के कारण से ही पवित्र मेरे माता-पिता मुझ पर दया के साथ अनोखा मगलहेतु अनुभाव ग्रहण कर रहे हैं।

(१०)

आशासे भगवन् ! विहाय कारुणाक्रान्तेन मह्यं हृदा ,
सन्देहानपरान् सहर्षमधुना दीक्षाव्रतं दास्यसि ।
येनाहं त्वरितं दधानि सुकृतं स्वात्मानमुद्द्योतितुम् ,
धर्मार्थं प्रयतैतरां च निरतं संशोद्धुमन्तर्मनः ॥

अन्वयः—हे भगवन् ! अधुना अहम् आशासे, (यत्) त्वम् अपरान् सन्देहान् विहाय करुणाक्रान्तेन हृदा मह्य दीक्षाव्रत सहर्षं दास्यसि। येन स्वात्मानम् उद्द्योतितु सुकृत त्वरित दधानि, अन्तर्मनः च सशोद्धुं धर्मार्थं निरत प्रयतैतराम् ।

अर्थ—हे भगवन् ! अव मैं आशा करता हूँ कि आप दूसरे सन्देहो को छोड़कर मुझे दीक्षा का व्रत सहर्ष देंगे। जिससे कि मैं अपनी आत्मा को द्योतित करने के लिए सुकृत शीघ्र करूँ और अन्तर्मन को सशुद्ध करने के लिए धर्मार्थ निरन्तर प्रयत्न करता रहूँ।

(११)

श्रुत्वा तद्वचनं वरं नियमितः सन्तः समेऽतूतुषन् ,
नेतारश्च परे सुमेधस इमां दीक्षां शुभामीक्षितुम् ।
ते सर्वे समवादिषुश्च समयुर्भावीत्ययं दृश्यते ;
येनाद्यानुनयेन वा सुवचसा क्षुब्धा वयं हर्षिताः ॥

अन्वयः—तद्वचनं वरं श्रुत्वा समे नियमिनः सन्तः परे च सुमेधसः नेतार. इमा शुभां दीक्षाम् ईक्षितु समयु., ते सर्वे अतूतुषन् च समवादिषु 'अय भावी दृश्यते' इति। येन अद्य क्षुब्धाः (अपि) वयं सुवचसा वा अनुनयेन हर्षिता. (स्म)।

अर्थ—उस (अमरसिंह) के वचन अच्छी तरह सुनकर सभी सयमी सन्त और दूसरे बुद्धिमान् अग्रणी पुरुप जो इस शुभ दीक्षा को देखने के लिए एकत्र हुए थे, वे सब खूब खुश हुए और कहने लगे कि 'यह कोई होनहार दिखता है।' जिसने घबडाए हम सबको मीठें वचन से अथवा अनुनय से खुश कर दिया है।

(१२)

केऽप्यन्ये कथयन्ति तं नवमुनिं प्रव्यक्तवाचां स्वतः ,
शुक्रं वापि बृहस्पतिं दिविषदां रक्षोगणानां गुरुम् ।
हेतुञ्चास्य न कोऽपि वक्तुमशकद् दक्षो विलक्षोभवन् ,
संसारे पुरुषोत्तमान् क्क विबुधा वक्तुं न शक्ता वयम् ॥

अन्वयः—अन्ये केऽपि स्वत त नवमुनिम् (अमरसिंहम्) प्रव्यक्त वाचां रक्षोगणाना गुरु शुक्र वा दिविषदा गुरु बृहस्पतिम् कथयन्ति। (किन्तु) कश्च दक्ष अपि विलक्ष· भवन् अस्य हेतु वक्तु न अशकत्! (यतोहि) ससारे विबुधा· पुरुषोत्तमान् वक्तु न शक्ता. (भवन्ति), (तर्हि) वय शक्ताः क्क भवेम!

अर्थ—दूसरे कोई भी अपने आप उस नवीन मुनि (अमरसिंह महाराज) को स्पष्टवाक् राक्षसों के गुरु शुक्र अथवा देवताओ के गुरु बृहस्पति कहने लगते हैं। किन्तु कोई निपुण भी आश्चर्यचकित होकर इसका हेतु न बता सका, कि ऐसा क्यों हुआ? क्योकि ससार मे देवता भी पुरुषोत्तमो को नही बता सकते तो फिर हम कहाँ बता सकेंगे!

(१३)

नत्वाऽयं श्रमणव्रजं चविततां शास्त्रोक्तगाथास्तुतिम् ,
कुर्वन्तं निखिलैर्जनैरधिगतं व्यावृत्तचित्तैः शुभम् ।
मन्वन्तं क्षणभंगुरं विकृतचिद्व्याप्तेन्द्रियं जन्तुकम् ,
आभार मनुते स्थितेमुनिवर व्रातस्य सिंहोऽमरः ॥

अन्वयः—अय सिह अमर (अमरसिंहः) व्यावृत्तचित्तैः निखिलैः जनैः अधिगत क्षणभङ्गुर विकृतचिद् व्याप्तेन्द्रियं जन्तुकमपि शुभम् मन्वन्तं च वितता शास्त्रोक्तगाथास्तुर्ति कुर्वन्त श्रमणव्रज नत्वा मुनिवरव्रातस्य स्थितेः आभार मनुते ।

अर्थ—यह अमरसिंह समाहित हृदय वाले सभी मनुष्यो से स्वीकृत आशुविनाशी विकृत चैतन्य प्राप्त के भोक्ता जीव को भी शुभ मानते हुए और विस्तृत शास्त्रोक्त गाथाओ से स्तुति करते हुए श्रमणगण को नमनकर मुनिवर समुदाय के पधारने का आभार मानने लगा ।

(१४)

नार्य्योऽपि प्रमथप्रभावमनिशं दीव्यन्तमंसांशुकम् ,
व्यक्ताभं विलसत्प्रभासमुदयव्याकीर्णवक्त्राम्बुजम् ।
आयान्त सुमनोऽधिपेन्द्र सुतनुव्यक्ताकृति मानुषम् ,
सिंहान्ताद्यमरं स्तुवन्ति निरतं दीक्षाव्रतायामरम् ॥

अन्वयः—नार्य्य अपि प्रमथप्रभाव व्यक्ताभं असांशुकम् अनिशम् दीव्यन्तम् विलसत्प्रभासमुदयव्याकीर्णवक्त्राम्बुज सुमनोऽधिपेन्द्र-सुतनुव्यक्ताकृतिम् आयान्त सिंहान्ताद्यमर मानुषम् अमर दीक्षाव्रताय निरत स्तुवन्ति ।

अर्थ—महिलाएँ भी काम-सुन्दर चमकीले कन्धे के दुपट्टे को निरन्तर झलकाते हुए, छिटकती किरणो से घिरे हुए मुख-कमल वाले, देवताओ के स्वामी इन्द्र के सुन्दर शरीर के समान है आकृति जिसकी ऐसे अमरसिंह नाम के मनुष्य-देव की दीक्षाव्रत के लेने के लिए उठकर प्रशसा करने लगी ।

(१५)

सर्वेस्तैर्मुनिभिः समर्थितगुणः शान्तस्वभावैरयम् ,
दीक्षायायनुमोदितो निरलसः प्रव्यक्तचित्तोऽमरः ।
दीक्षामभ्यधिगन्तुमेव यतते श्रीलालचन्द्रान्मुनेः ,
लोकेऽस्मिल्लभते फलं प्रतिपदं गाढप्रयत्नोजनः ॥

अन्वयः- तैः सर्वैः शान्तस्वभावैः मुनिभि अयम् निरलस. प्रव्यक्त-चित्त. समर्थितगुण. दीक्षायै अनुमोदित· अमर. (अमरसिंह.) श्रीलालचन्द्रात् मुनेः एव दीक्षाम् अभ्यधिगन्तु यतते । (यतो हि) अस्मिन् लोके गाढप्रयत्न. जनः प्रतिपद फलं लभते ।

अर्थ—उन सभी शान्तस्वभाव मुनियो के द्वारा, यह प्रयत्नशील, सरल, उपयुक्त, दीक्षा के लेने के अनुमोदित अमरसिंह श्रीलालचन्द्रजी मुनिराज से ही दीक्षा प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता है। क्योकि लगन का पक्का मनुष्य इस ससार मे स्थान-स्थान पर सफल होता है।

(१६)

प्रत्यक्षं मुनिरेवमस्त्विति परां प्रव्यक्तवाचं वदन् ,
सर्वज्ञप्रथितागम प्रवचनप्राचुर्ययुक्तं वचः ।
ऊचे तं सकलार्थतत्त्वमहितं दीक्षार्थिकण्ठीरवम् ,
श्रीमन्तं करुणार्द्रचित्तममरं श्वःश्रेयसा शसिनम् ॥

अन्वयः—दीक्षाप्रार्थनोत्तरम्—'एवम् अस्तु' इति परा प्रव्यक्तवाच वदन् मुनि· त श्रीमन्त करुणार्द्र चित्त श्व श्रेयसाशसिन दीक्षार्थिकण्ठीरवम् अमरम् (अमरसिंहम्) सर्वज्ञ-प्रथितागम-प्रवचन-प्राचुर्ययुक्त सकलार्थतत्त्व-महितं वच प्रत्यक्षम् ऊचे ।

अर्थ—दीक्षा के लिए प्रार्थना के पीछे 'ऐसा हो' ऐसी विशिष्ट स्पष्ट वाणी का उच्चारण करते हुए मुनि महाराज ने उस श्रीयुक्त दयावान् आत्मकल्याणार्थी दीक्षार्थी-सिंह अमरसिंह को केवली भगवान के कहे हुए आगमो के प्रवचनो के आधिक्य से युक्त सम्पूर्ण अर्थतत्त्व से सम्मानित वचन प्रत्यक्ष मे कहा।

(१७)

आयातान् स्वजनान् मुनीन् सुहृदयान् सम्बोद्ध्य प्रान्तर्मना: ,
निष्णातश्च मुनिक्रियासु भवताद् दीक्षाधररेमेऽमर: ।
इत्येवं वदितुं यदैव यतते श्रीलालचन्द्रो मुनि: ,
आलोकं कुसुमानि भूमिमभितो वर्षन्ति गन्धावहम् ॥

अन्वय:—प्रान्तर्मना मुनि श्रीलालचन्द्र' सुहृदयान् स्वजनान् च मुनीन् सम्बोद्ध्य 'मे दीक्षाधर. अमर मुनि-क्रियासु निष्णात' भवतात्' इति एव वदितु यदा एव यतते, (तदा एव) आलोकम् भूमिम् अभित कुसुमानि गन्धावह वर्षन्ति ।

अर्थ—अत्यन्त गम्भीर मुनि श्रीलालचन्द्रजी महाराज सुहृदय आत्मीय पुरुषो को और मुनिराजो को सम्वोधन कर 'मेरा यह दीक्षित अमरसिंह मुनिक्रियाओ मे प्रवीण बने' ऐसा कहने के लिए जभी प्रयत्न करते हैं, तभी संसार मे भूमि के सब ओर केसर-कण महँकते हुए वरसने लगते हैं ।

(१८)

आकाशे न हि केवलं दिविषदो नृत्यन्ति कत्थत्कलम् ,
मन्दाक्षं परतो विहाय प्रमदाश्चर्चन्ति प्रत्यङ्गणम् ।
मर्यादां परिहाय यौवतमहो प्रत्यक्षमालिङ्गते ,
हर्षोऽयं प्रमदा-प्रमाद-परिधिं निर्व्याजमुल्लघते ॥

अन्वय:—दीक्षानन्तर हर्षमुद्दिश्य—आकाशे न हि केवल दिविषद: कत्थत्कलम् नृत्यन्ति, (अपितु) परत प्रमदा (स्त्रियोऽपि) मन्दाक्ष विहाय प्रत्यङ्गणम् चर्चन्ति । अहो (युवतीना समूहो) यौवत मर्यादा परिहाय (परस्परम्) प्रत्यक्षम् आलिङ्गते । अय हर्ष. प्रमदाप्रमादपरिधि निर्व्याजम् उल्लघते ।

अर्थ—दीक्षानन्तर हर्ष को लेकर आकाश मे न केवल देवता ही कत्थत्कल नृत्य करते है, अपितु दूसरी ओर से प्रमदा स्त्रियाँ भी लज्जा को छोडकर आँगन-आँगन मे चर्चाएँ करती है । यहाँ तक कि युवतियो का समूह मर्यादा को छोडकर परस्पर मे प्रत्यक्ष भेंट भर लेता है । यह हर्ष स्त्रियो के प्रमाद की परिधि को विना किसी हिचक के लांघता चला जा रहा है ।

(१९)

अन्योऽन्यं कथयन्ति वृत्तमपरे त्यागस्य दाक्षार्थिनः ,
लज्जन्ते नगरे जनाः सुकमना दीक्षां निरीक्ष्य स्वतः ।
आश्चर्यं खलु मन्वते विपयिणः कैश्यस्य चोन्मूलने ,
केऽप्यन्ये नगराधिवासिन इमे शङ्काङ्कुर तन्वते ॥

अन्वयः—ससारिणो विभिन्नरुचय सन्ति (अतः) अपरे जना. दीक्षार्थिन त्यागस्य वृत्तम् अन्योन्य कथयन्ति । नगरे दीक्षा निरीक्ष्य सुकमना. जना. स्वत लज्जन्ते । विपयिणश्च खलु कैश्यस्य उन्मूलने आश्चर्यं मन्वते । केऽपि अन्ये नगराविवासिनः इमे (सन्ति), ये शङ्काकुर तन्वते ।

अर्थ—ससार के लोग विभिन्न रुचि के होते है। इसलिए दूसरे मनुष्य दीक्षार्थी के त्याग के वृत्त को एक-दूसरे को वताते है। कुछ कामी पुरुष नगर मे ऐसे भी हैं, जो दीक्षा को देखकर स्वय लज्जित हो रहे है। तो कुछ विपयी ऐसे भी हैं जो केशो के उखाड-फेकने के विपय पर अचम्भा मानते है। कुछ दूसरे नागरिक वे हैं, जो शङ्काओ के पौवे को फैलाते चलते है।

(२०)

कालुष्यं परिहाय कोऽप्यकथयच्चित्तस्य कष्टं महत् ,
यद्येवं सततं भवेद् विघटितं किं वाचरेद् यौवतम् ।
या जाता ललना कटाक्ष-विशिखाघातव्यथाभूमय. ,
तासां का गणना भवेदिति कथा चित्तव्यथा थेपते ॥

अन्वय.—दीक्षाग्रहणात् कोऽप्यसमीक्ष्यकारी शोचते—कोऽपि (अविचारी) कालुष्य परिहाय चित्तस्य महत् कष्टम् अकथयत् (यत्) यदि एवं विघटित सतत भवेत् (तदा पुन) यौवत किम् आचरेत् वा या कटाक्षविशिखाघातव्यथाभूमय. ललनाः जाता (सन्ति), का गणना भवेत् । इति —कथा चित्तव्यथा थेपते ।

अर्थ—दीक्षाग्रहण के कारण कोई विना सोचे-विचारे काम करने वाला शोक प्रकट करता है—कोई कलुपभाव को छोडकर अपने चित्त के गम्भीर कष्ट को कहने लगा कि यदि इसी प्रकार का विगाड-खाता चलता रहा, तो फिर युवतियो का समूह क्या करेगा धरेगा ! अथवा जो कटाक्ष-वाण के आघात की पीडा की भूमि-स्त्रियाँ उत्पन्न हुई है, उनकी क्या गिनती होगी ! इस प्रकार की कहानी चित्त की व्यथा वढाने लगी ।

(२१)

दीक्षादानपुरस्सरातिशयितं वीक्ष्योत्सवं सुन्दरी ,
प्रीणीते हृदयं शुभाशुभमय शङ्काप्रशङ्काङ्कुरम् ।
चिन्तार्त्ता व्यथते च मे प्रियधवस्यासक्तिशून्यं मनः ,
जायेत प्रसभं यदीदृशमतो दीक्षोत्सवं क्रोशते ॥

अन्वयः—काऽपि ससारिणी सुन्दरी दीक्षादानपुरस्सरातिशयितम् उत्सव वीक्ष्य शुभाशुभमय हृदय शङ्का-प्रशङ्काकुर प्रीणीते। अतश्च चिन्तार्त्ता सा व्यथते—यदि मम प्रियधवस्य (अपि) मन ईदृश प्रसभम् आसक्तिशून्य जायेत, (तर्हि ममु तु सर्वनाशमेष्यति) आक्षिप्तार्थोऽयम् अतः सा चिन्तार्त्ता सुन्दरी दीक्षोत्सव क्रोशते।

अर्थ—कोई ससारी सुन्दरी स्त्री दीक्षागहण को लेकर शानदार उत्सव अच्छी प्रकार से देखकर अशुभ और शुभ से सङ्कीर्ण मन को शङ्का और प्रशङ्का के पौधे के समान खूब लहलहा देती है। और मारे फिक्र के वह दु खी हो जाती है कि यदि मेरे प्रिय पति का भी दिल इसी प्रकार जवरन् वेलगाव हो जायेगा तो मेरी विल्कुल वर्वादी हो जायेगी। इस प्रकार से चिन्तित सुन्दरी दीक्षा के उत्सव को कोसने लगती है।

(२२)

व्यर्थं ते कमनास्तुदन्ति विकलाश्चित्तव्यथापीडिताः ,
धिक् कामंव्यथतेतरामिति सदा क्षीबाभिकान् मानुषान् ।
सामर्थ्यं यदि ते व्यथस्व दमिनं मुक्त्यर्थिनं दीक्षितम् ,
मर्त्यानाममरं मुनिं सुविदित जैनं नवीनं जनम् ॥

अन्वयः—ये चित्तव्यथापीडिता विकला (सन्ति), ते कमना. तुदन्ति यदयं काम) सदा क्षीबाभिकान् मानुषान् व्यर्थं व्यथतेतराम् इति त कामधिक् (अस्तु)। यदि ते (कामस्य) सामर्थ्यम् (अस्ति), (तर्हि) त्व मर्त्यानाम् सुविदितं जन नवीन दीक्षित मुक्तयर्थिन दमिन जैन मुनिम् अमर व्यथस्व। तदा वय जानीमो यत्त्व कामोऽस्ति, अन्यथा मृतानां मारणे सामर्थ्यं किमित्ययमर्थः।

अर्थ—जो चित्त की व्यथा से पीडित हो, विकल हैं, ऐसे वे कामी नर दु ख प्रकट करते हैं कि यह कामदेव सदा मदान्ध कामी मनुष्यो को व्यर्थ काफी कष्ट देता है। यदि तुझ कामदेव की ताकत है तो तू मनुष्यो मे प्रसिद्ध मनुष्य, नवीन, दीक्षित मोक्षार्थी, जितेन्द्रिय जैनमुनि अमरसिंह जी को व्यथित कर सके। तब हम मानें कि तू कामदेव है, अन्यथा मरे हुए को मारने मे सामर्थ्य क्या है। अर्थात् न कुछ। ऐसा यह अर्थ है।

(२३)

सर्वेषां जयकारशब्दमभितः श्रुत्वामरो दीक्षितः ,
प्रत्येकं नमते दयापरवशः शोभापरः श्रीधरः ।
माङ्गल्यं लभते प्रसीदतितरामेभ्यो मुनिभ्यो गुरुम् ,
चान्ते सोऽभिरतोऽधिसेवमपरं श्रीलालचन्द्रं प्रति ॥

अन्वयः—सर्वेषा जयकार शब्दम् अभित श्रुत्वा दयापरवश शोभापरः श्रीधर दीक्षित. अमर (अमरसिंह) प्रत्येक नमते (पुनः) च एभ्यः मुनिभ्य माङ्गल्य लभते। (अत) श्च अन्ते अपर गुरु श्रीलालचन्द्र प्रति सः अधिसेवं प्रसीदतितराम्।

अर्थ—सबके जयकार के शब्द को चारो ओर से सुनकर दयालु शोभाधायी (सुन्दर) कीर्त्तिशाली दीक्षित अमरसिंह मुनि प्रत्येक मुनि को नमन करते हैं। और इन मुनिराजो से माङ्गल्य प्राप्त करते हैं। साथ ही अन्त मे अनन्य गुरुदेव श्रीलालचन्द्र मुनिराज की सेवा मे परम प्रसन्न रहते हैं।

(२४)

ज्ञातस्यापि विधेः पुनः पुनरयं वृत्ति समावर्त्तते ,
अभ्यासं सुगमं करोति सततं शब्दानुशब्दं स्वयम् ।
विश्वासं लभते गुरोर्निरलसश्चालङ्करोति क्रियाम् ,
आधत्ते नियमं विधातुमभयं ज्ञप्तानुगो गच्छति ॥

अन्वय—दीक्षाप्राप्त्यनन्तरम्—अयम् अमरसिंहः मुनिः ज्ञातस्य अपि विधे पुनः पुन. वृत्ति समावर्त्तते। स्वय निरलस. सन् शब्दानुशब्दम् अभ्यास सततं सुगम करोति। गुरो विश्वास लभते, क्रियाम् अलङ्करोति, नियमम् आधत्ते, ज्ञप्तानुगश्च अभयविधातु गच्छति।

अर्थ—दीक्षा प्राप्ति के पश्चात- ये अमरसिंह मुनि ज्ञात हुई भी विधि का वार-वार आवर्त्तन करते हैं। स्वय आलस्य-रहित होकर शब्दानुशब्द अभ्यास को निरन्तर सुगम वनाते हैं। गुरु महाराज के विश्वसनीय होते हैं, क्रिया को शोभित करते है, नियम पालते हैं और केवली भगवान् के वताए मार्ग के अनुगामी होकर अभय वनाने के लिए अत्र आगे वढते हैं।

(२५)

आलस्यं प्रथितं बुधैरिह सदा प्रत्यर्थिभावं दधत् ,
तस्माद् यो यतते विहाय सहसालस्य क्रिया वर्त्तितुम् ।
कर्माणि क्षिणुते स एव हि जनो जीवानुवन्धीन्यरम् ,
कृत्वैवं हृदयेऽमरो मुनिरयं जागर्त्ति रात्रिदिवम् ॥

अन्वय — सदा इह बुधै आलस्यं प्रत्यर्थिभाव दधत् प्रथितम् (अस्ति) तस्मात् यः सहसा आलस्य विहाय क्रिया वर्त्तितु यतते । सः एव हि जनः जीवानुवन्धीनि कर्माणि अर हि क्षिणुते—एवं कृत्वा अयम् मुनिः अमर. (अमरसिंहः) रात्रिन्दिव जागर्त्ति ।

अर्थ—सदा इस ससार मे ज्ञानियो ने आलस्य को शत्रुता रखने वाला वताया है। इसलिए जो मनुष्य एक साथ आलस्य को छोडकर क्रिया वरतने के लिए प्रयत्न करता रहता है, वही मनुष्य जीवानुवन्धी कर्मो को शीघ्र काट डालता है। इस प्रकार सोचकर ये अमरसिंह मुनि दिन-रात जगते रहते हैं।

(२६)

आत्मानं प्रथते व्यथां विकुरुते चित्तं समालम्बते ,
दातुं प्रेरयते धन परहिते चित्ते स्वयं मोदते ।
आधिं व्याकुरुते कलां वितनुते पापात् परावर्त्तते ,
आधत्ते हृदयं सदा गुरुजने सिंहो मुनिः शोभते ॥

अन्वयः—साम्प्रत गुरुदेवस्यान्ते वसन्—(अयम् अमरसिंह मुनि.) आत्मानं प्रथते (प्रख्यापयति), व्यथा विकुरुते (पीडा नाशयति), चित्त समालम्बते (दृढीकरोति), परहिते धन दातु प्रेरयते, चित्ते स्वय मोदते, आधि व्याकुरुते, कला वितनुते, पापात् परावर्त्तते, सदा गुरुजने हृदयम् आधत्ते, एताहग सन् सिंह. (मुनिसिंह) शोभते ।

अर्थ—अव गुरुदेव के शिष्य वनकर—ये श्री अमरसिंहजी महाराज आत्मा को प्रख्यापित करते हैं, व्यथा को नष्ट करते हैं, चित्त को निश्चल वनाते हैं, परहित के विषय मे भक्तो को धन देने के लिए प्रेरित करते हैं, अपने हृदय मे आनन्द का अनुभव करते हैं, मनोव्यथा को विश्लेपित करते हैं, कला का विस्तार प्रकट करते हैं, पाप को समझकर दूर वैठते हैं, सदा गुरुओ के विषय मे श्रद्धा रखते हैं। ऐसे होकर वे सिंह (मुनिसिंह) शोभा प्राप्त करते हैं।

(२७)

नित्यं सोऽनुमितप्रभावमसकृद् देवं गुरुं शासकम् ,
नत्वैवं कुरुते यथाव्यवहृतं कार्यं च वैधानिकम् ।
येनास्य प्रकृतेर्जनाः परिचयं प्राप्तुं भवेयुस्ततः ,
शक्ताश्चास्य गुरुर्महानविरतं कार्याय तं प्रेषते ॥

अन्वयः—नित्य स अनुमित प्रभावं शासक गुरु देवम् असकृत् नत्वा यथाव्यवहृत वैधानिक कार्यं कुरुते । एवञ्च जना. अस्य प्रकृतेः परिचय प्राप्तु शक्ता. भवेयु:, येन अस्य महान् गुरु. ततः त कार्याय अविरत प्रेषते ।

अर्थ– इस प्रकार नित्य ही वे प्रभावी शासक गुरुदेव वार-वार वन्दना कर व्यवहृत का अतिक्रमण न कर विहित कार्य करते रहते है । अत एव, 'मनुष्य इनकी प्रकृति से परिचित हो सके, इनके महान गुरुदेव श्रीलालचन्द्रजी महाराज उपाश्रय से आपको कार्य के लिए वाहिर भेजते रहते है ।

(२८)

आज्ञप्तस्त्वयमेव याति विहितां भिक्षां विधातुं ततः ,
प्रत्यागच्छति सोऽमितप्रखरया वृत्त्या समायोजितः ।
शंसन्ते सुजना नयेन सहितं मार्गे चरन्तं मुनिम् ,
दृष्ट्वेमं सरल स्वभावमहितं पूज्यं स्वतो भाविनम् ॥

अन्वय—तत तु अयम् एव आज्ञप्त विहिता भिक्षां विधातु याति, अमितप्रखरया वृत्या समायोजित सः प्रत्यागच्छति । इम स्वभावमहित सरल मुनि मार्गे चरन्त दृष्ट्वा सुजना. स्वत भाविन पूज्य नयेन सहित शसन्ते ।

अर्थ—फिर तो ये ही आज्ञप्त हो, विधिकल्पित भिक्षा करने के लिए जाने लगे । पूर्णप्रखर वृत्ति से समायोजित वे भिक्षा से लौटकर आते, तव इन स्वभाव-सुन्दर सरल मुनि को मार्ग मे चलते हुए देखकर भावुक श्रावक अपने आप भावी पूज्य नय के साथ कहने लगते हैं । क्योंकि 'होनहार विरवान के, होत चीकने पात' यह एक नय है ।

(२९)

संसारेऽतुलितप्रभावमहिमप्रव्यक्तकीर्त्तिर्जनः　　,
सम्प्राप्तुं प्रथितं प्रशस्तपरिधिग्रस्तं पदं प्रेक्ष्यते ।
न्यायेनेति मिथः सुचर्चितकथः सेर्यापथोनिर्व्ययः,
पन्थानं कथितापथं स सुपथीकर्त्तुं प्रवृत्तोऽमरः ॥

अन्वय.—विज्ञैः 'ससारे अतुलित प्रभाव महिम प्रव्यक्त कीर्त्तिः जनः प्रशस्तपरिधिग्रस्त पदं सम्प्राप्तु प्रेक्ष्यते' इति न्यायेन प्रथित (विद्यते)। (तेनैव) मिथ (अयं) सुचर्चितकथः निर्व्यय. सेर्यापथः सः अमरः (अमरसिंहो मुनि) कथितापथं पन्थानं सुपथीकर्त्तुं प्रवृत्त. (अस्ति)।

अर्थ—वेत्ताओ ने ससार मे असाधारण प्रभाव के महत्त्व से स्पष्ट कीर्ति वाला मनुष्य, प्रख्यात पराकाष्ठा से युक्त पद को प्राप्त करने का अधिकारी होता है, ऐसा माना है। इस न्याय के अनुसार स्थान स्थान पर जिनकी कहानियों की चर्चा हैं ऐसे निर्द्वन्द्व ईर्यापथ के पथिक वे मुनि अमरसिंहजी अपथ कहे जाने वाले मार्ग को सुमार्ग बनाने के लिये अब आगे बढ रहे है।

(३०)

उद्द्योक्तुं क्षमते स्वबुद्धिविभवोद्भूतां प्रभां रीतिशः　　,
व्याख्यानादधिगन्तुमेव सनुती· प्रख्यातयुक्तेः शतम्　　।
सम्प्राप्तुं परतस्तथापि महतीं शक्तिं प्रकृष्टामयम्　　,
सिंहोऽसौ क्रमते वने सुसघने गर्जन् यथा निर्भयम्　　॥

अन्वय—अय मुनि स्वबुद्धि-विभवोद्भूता प्रभा रीतिश. उद्द्योक्तु प्रख्यातमुक्तेश्च व्याख्यानात् एव नुती· शतम् अधिगन्तु क्षमते, तथापि परतः महती प्रकृष्टा शक्ति सम्प्राप्तु यथा सिंह सुसघने वने गर्जन् निर्भय क्रमते, तथा अयम् अपि निर्भय क्रमते।

अर्थ—ये मुनि अपने बुद्धि-विभव से उत्पन्न प्रभा की रीति के अनुसार उद्योजित करने के लिए और प्रख्यात युक्ति वाले व्याख्यान से शतशः प्रशसायें प्राप्त करने के लिए क्षमता रखते हैं, तथापि और से अथवा दूसरे से बडी प्रकृष्ट शक्ति को अधिगत करने के लिये निर्भय आगे बढ रहे है जैसे सुसघन वन मे सिंह गरजता हुआ निर्भय चला ही चलता है, रुकने का नाम नही लेता।

(३१)

अय समदाय मुनेर्व्रतं पुनर्मुनिक्रियानित्यविधेरुपासिता ।
निरन्तरं सम्प्रति तस्य रक्षणे समाहितस्तिष्ठति तत्त्वचिन्तक. ।

अन्वयः—अयम् (अमरसिहः) मुनेर्व्रतं समादाय पुन निरन्तरम् मुनि-क्रियानित्यविधेः उपासिता सम्प्रति तस्य (व्रतस्य) रक्षणे समाहित. तत्त्व चिन्तकः तिष्ठति ।

अर्थ—ये (अमरसिह जी) मुनि के व्रत को ग्रहण कर तदनन्तर निरन्तर मुनियों की क्रियाओ और नित्यविधियो की उपासना करते हुए अव उस व्रत के रक्षण के विपयो मे समाहित होकर तत्त्व का चिन्तन करते हैं ।

(३२)

अधीत्य शास्त्रागमसंग्रहं स्वतस्ततश्च कैवल्यधरै: पुरस्कृतम् ।
प्रयाति धर्मं वचनै· समादिशन् गुरूपदिष्टेन पथामरो मुनिः ॥

अन्वयः—ततश्चस्वतः शास्त्रागमसंग्रहम् अधीत्य कैवल्यधरैः (महापुरुषैः) पुरस्कृत धर्मं वचनै. समादिशन् अमर. (अमरसिह) गुरूपदिष्टेन पथा प्रयाति ।

अर्थ—तदनन्तर अपने आप शास्त्र और आगम के सग्रहो का अध्ययन कर केवली महापुरुपो के द्वारा पुरस्कृत धर्म का प्रवचनो से प्रचार करते हुए मुनि अमरसिहजी गुरु के उपदिष्ट मार्ग से प्रयाण करते हैं ।

(३३)

अत परं सर्गविभाजनेच्छया नवीनमन्यन्नु वर्णनं मुने ।
निरीक्ष्य सर्गं रचितं चतुर्थकं समारभे सम्प्रति पुष्करो मुनि ॥

अन्वयः—अत. पर मुने (अमरसिहस्य) अन्यत् नवीन वर्णन निरीक्ष्य सर्ग विभाजनेच्छया सम्प्रति रचित चतुर्थं सर्गम् अहम् पुष्कर मुनि समारभे ।

अर्थ—इसके पश्चात् मुनि श्री अमरसिहजी महाराज के दूसरे नवीन वर्णन को देखकर सर्ग विभाजन की इच्छा से अव रचे हुऐ चतुर्थ सर्ग का मैं पुप्कर मुनि आरम्भ किया चाहता हूँ ।

(३४)

अथ कवित्वमतीव रसायनं किमपि मेऽद्भुतमेव परीक्षणम् ।
निरुपम कविशेखरमाश्रयाद् मृतमपीत्यमरं विदधात्यद. ॥

अन्वयः—अथ कवित्व किमपि रसायनम् (अस्ति), मे अतीव अद्भुतम् परीक्षण (विद्यते) (यतोहि) अद (कवित्व कर्तृ) निरुपम मृतम् अपि जनम्, आश्रयात् एव अमरम् कविशेखरम् विदधाति। न तु सेवना-दिति। इत्याक्षिप्तोऽर्थ ।

अर्थ—हो न हो, यह कवित्व कोई न कोई रसायन है, मेरा वडा ही अनोखा यह परीक्षण है। क्योकि (यह कवित्व) उपमारहित मरे हुए भी मनुष्य को, रसायन के आश्रयमात्र से अमर कवि शिरोमणि बना देता है। किन्तु रसायन के सेवन से नही। ऐसा यह अर्थ 'इति' आक्षिप्त होता है।

(३५)

सरसं ललित नियोजितं सुपदैरेव महाकवेरिदम् ।
लभते महिमानमेव तत् न तु काव्य पदसंग्रह कवे ॥

अन्वयः—महाकवे इद सरस ललित सुपदै एव नियोजितम् काव्य महिमानं लभते, किन्तु कवे. पदसग्रह एव तत् काव्यम् भवेत् इति तु न अस्ति।

अर्थ—महाकवि का यह सरस, ललित और सुपदो से नियोजित काव्य महत्व प्राप्त करता है, किन्तु कवि का पदो का सग्रह ही वह काव्य बन जाय, ऐसा तो नही होता, जिससे कि महत्व प्राप्त होता हो इसलिए काव्य वही है जो सरस, ललित और सुपद नियोजित हो। वरना तो वह सब शब्दो का एक ढेर ही है। ऐसा समझना चाहिये।

इति श्रीमता राजस्थानकेसरिणा पण्डितरत्नेन
उपाध्यायपदालङ्कृतेन पुष्करमुनिना विरचिते
श्रीमदाचार्यामरसिंह महाकाव्ये
तृतीयः सर्गः

❀

चतुर्थः सर्गः

(१)

जयति स शुक्लविवसनाचार्यो यस्य पादपङ्कजस्मरणम् ।
मार्गं मे विदधाति पवित्रं दोर-सहित-मुख-वाससो मुने ॥

अन्वय.—सः शुक्लविवसनाचार्यः जयति, यस्य पादपङ्कजस्मरण दोर-सहितमुखवाससः मुने मे मार्गं पवित्र विदधाति ।

अर्थ—उस शुक्ल एव विशिष्ट वस्त्र वाले आचार्य की जय हो, जिसके चरण कमलो का स्मरण ही, डोरे के साथ मुख पर वस्त्र वाले मुनि, मेरे मार्ग को पवित्र करता है ।

(२)

सेवायां मुनिमण्डले प्रभवति स्थित्वा गुरोः सम्प्रति ,
व्यासक्तः स्वयमेवमेव सकलान् भक्तान् जनान् श्रावकान् ।
उद्बोध्य प्रतिभक्तमेव नियतं धर्मं यथावस्थितम् ,
शास्त्रोक्तं चरितुं ततोमुनिरिमान् सङ्गन्तुमिच्छत्ययम् ॥

अन्वयः—दीक्षाप्राप्त्यनन्तरम्—सम्प्रति मुनिमण्डले स्थित्वा गुरोः सेवायां व्यासक्त. स्वयमेव (अयम् अमरसिंहो मुनि·) सकलान् भक्तान् एव श्रावकान् जनान् प्रभवति । ततः प्रतिभक्त शास्त्रोक्त नियत धर्मं यथावस्थित चरितुम् उद्बोध्य (पुन) इमान् (भक्तान्) एव सङ्गन्तुम् इच्छति ।

अर्थ—दीक्षा प्राप्ति के पश्चात—अब मुनियो के मण्डल मे रहकर गुरु महाराज की सेवा-शुश्रूपा मे सलग्न होकर स्वय ही ये अमरसिंहमुनिजी सब भक्तो को और इसी प्रकार श्रावक पुरुपो को प्रभावित करने लगते हैं। तदनन्तर आए हुए प्रत्येक भक्त को शास्त्रोक्त नियत धर्म का यथावस्थित आचरण करने के लिए उद्-बोधन कर, फिर उन भक्तो को सत्सग के लिए प्रेरणा करते हैं ।

---

० सर्गेऽस्मिन्नपि शार्दूलविक्रीडितमेव । लक्षण पूर्वमुक्तमेव

(३)

उद्युङ्क्ते वचनानुसारमधुना सत्कर्त्तुमेवं मुनिः ,
तस्मात्ते मुदिता सदैव मनुजा उद्युञ्जते स्वाशिषा ।
कल्याणं भवतात्तवेति, हसता प्रत्यक्षमित्युच्यते ,
कल्याण सरलं भवेद् यदि पुनर्मह्यं न तद् रोचते ।

अन्वयः—अधुना (आगतान् भक्तान् श्रावकान् वा) वचनानुसार सत्कर्त्तुं मुनि (अमरसिंह) उद्युङ्क्ते । तस्मात् (वचनादरत्) सदा ते मुदिता मनुजा 'तव कल्याण भवतात् इति स्वाशिषा उद्युञ्जते । (तदा श्रुत्वा आशिष) हसता मुनिना अमरसिंहेन उच्यते—यदि कल्याणम् (इयत्) सरल भवेत् (पुनस्तु) तत् (इतादृक्) सरल कल्याण मह्य न रोचते । अर्थात् वचनेनैव तत्कल्याण प्राप्त न शक्यते ।

अर्थ—अव आए हुए उन भक्तो अथवा श्रावको का सत्कार करने के लिये मुनि श्री अमरसिंहजी महाराज वचनो से जव प्रयत्न करने लगते हैं तो वे प्रसन्न हुए मनुष्य अपने आशीर्वचन से जैसे कि आपका कल्याण हो । उस आशीर्वचन को सुनकर हँसते मुनि श्री अमरसिंहजी महाराज ने कहा कि यदि कल्याण इतना सुलभ है तो फिर उस ऐसे सुलभ कल्याण की मुझे चाह नही है । अर्थात् केवल कहने मात्र से उसको प्राप्त नही किया जा सकता, उसके लिए वहुत कुछ करना पडता है ।

(४)

शङ्कन्ते भुवने स्थितस्य विषये तत्त्वस्य लोका इमे ,
तस्मात्ते यदपि प्रथाप्रचलितं जानन्ति तद् वास्तवम् ।
कुर्वन्त्वद्भुतमेव कृत्यमपरं तत्त्वातिरिक्तं च ये ,
नष्टाशा. प्रजयन्ति ते पुनरिदं सर्वं भवेत् कर्मणा ॥

अन्वयः—दु खस्य विषयोऽयम्—यत् अस्मिन् भुवने इमे लोकाः स्थितस्य तत्त्वस्य विषये शङ्कन्ते । तस्मात् (शङ्किताः) ते यदपि प्रथाप्रचलित तद् वास्तव जानन्ति । ये तत्त्वातिरिक्तम् अपरम् अद्भुतम एव कृत्यम् कुर्वन्ति, (परिणामे) नष्टाशा ते पुन इद 'सर्वं कर्मणा भवेत्' इति प्रथयन्ति अर्थात् कर्म स्वीकृत्यापि कर्म कृन्तितु न यतन्ते ।

अर्थ—दु.ख की वात यह है कि इस ससार मे ये मनुष्य निश्चित तत्त्व के विपय मे सन्देह करते है । इससे शङ्कित होकर वे जैसा भी कुछ चला आ रहा है, उसको वास्तव मान लेते हैं । और जो तत्त्वातिरिक्त दूसरा अनोखा ही कृत्य कर वैठते हैं, अन्त मे हताश होकर वे फिर यह कहते है कि सब कर्म से होता हैं । अर्थात् कर्म को मानकर भी कर्म को काटने के लिए प्रयत्न नही करते ।

(५)

मृत्य्वन्ते पुनरन्यजन्मनि जनोभुङ्क्ते फल कर्मण: ,
शास्त्रोक्तं विधिवत्करोति निहितं निश्चित्य तत्त्वं महत् ।
सर्वोऽसौ फलमीषतेऽपि भविक: कालेन जन्मान्तरे ,
र्तत्कि केवलमेवमेव वचनात् कल्याणवन्तो वयम् (?) ॥

अन्वय—वास्तविक चैतदस्ति–यत् मृत्य्वन्ते पुन जन· अन्यजन्मनि कर्मण फलं भुङ्क्ते । (अत.) महत् तत्त्वं निश्चित्य (य·) शास्त्रोक्त निहित विधिवत् करोति, असौ सर्व अपि भविक. कालेन जन्मान्तरे फलम् ईषते । तत् कि केवल वचनात् एव वयम् एवम् कल्याणवन्त: भवितु शक्नुम. ? अपितु भवितु न शक्नुम. ।

अर्थ—और वास्तविक वात यह है कि मरण के पश्चात् फिर हर एक व्यक्ति दूसरे जन्म मे फल देखता है, किए का परिणाम भोगता है, यह सिद्धान्त है । इसलिए जो इस महान् तत्व का निश्चय कर शास्त्रोक्त अर्थ का क्रिया के अनुसार पालन करता है, वही प्राणी कालक्रम से दूसरे जन्म मे किए का परिणाम भोगता है। तव क्या हम केवल कहने मात्र से कल्याणवान् हो सकते ? अपितु नही हो सकते ।

(६)

इत्येतद् वचनं यथाश्रुति पुनर्गच्छद्भिरन्यै: श्रुतम् ,
तै: सर्वै: परिपृच्छ्यते तदखिल कस्मादिदं गद्यते ।
श्रुत्वैतत् समुदीर्यते यदिह तज्‌ जातं जनोपस्थितौ ,
नव्येनैव तु दीक्षितेन मुनिना सत्यं समाधायि यत् ॥

अन्वय:—मुनि प्रतिवोवितम्—इति एतद् यथाश्रुति वचन गच्छद्भि: अन्यै. (जनै·) (अपि) श्रुतम् । तै सर्वै. (श्रोतृभि.) परिपृच्छ्यते, तद् अखिलम्, इद कस्मात् गद्यते ? एतद्-श्रुत्वा इह जनोपस्थितौ नव्येन दीक्षितेन मुनिना एव तु सत्य समाधायि, यत् जातं तद् (सर्वं) समुदीर्यते ।

अर्थ—मुनिश्री के प्रतिवोधन का यह यथाशास्त्र वचन, जाते हुए दूसरे मनुष्यो ने भी सुना । उन सव श्रोताओ ने पूछा कि यह सव ऐसा क्यो कहा गया ? यह सुनकर, जनता की उपस्थिति मे जो भी कुछ नवीन दीक्षित मुनिजी ने ही सत्य का समाधान किया—हुआ वह सव वता दिया । यह जानकर वे सव आश्चर्य से चकित हो गये कि नये मुनि ने ही जव ऐसा समाधान किया है तो और मुनिजन कैसे क्या होगे ।

(७)

जिज्ञासाप्युदिता यथायथमहो कोऽयं मुनिर्विद्यते ,
प्रष्टु तेऽपि परस्परं मुनिममुं चिन्वन्ति प्रश्नान् बहून् ।
प्रश्नानुत्तरितान् विबुध्य मनसा सत्यप्रियाः प्राश्निकाः ,
सम्भूताः समुपेत्य तं मुनिवरं तिष्ठन्ति चित्रार्पिताः ॥

अन्वय —सम्प्रति तेषामाश्चर्यचकिताना श्रोतृणाम्—अहो क अय मुनि यथायथ विद्यते इति अपि जिज्ञासा उदिता (अभवत्)। (अत) तेऽपि अमु मुनि परस्पर प्रष्टु बहून् प्रश्नान् चिन्वन्ति। (मुने सकाशात्) प्रश्नान् उत्तरितान् मनसा विबुध्य सत्यप्रिया प्राश्निका त मुनिवर समुपेत्य चित्रार्पिता (इव) सम्भूता तिष्ठन्ति।

अर्थ—अब उन आश्चर्यचकित श्रोताओ की—अरे कौन यह मुनि है—ऐसी जिज्ञासा उत्पन्न हुई। इसलिए वे भी उन मुनिजी से परस्पर मे प्रश्न करने के लिए अनेक प्रश्न चुन लेते हैं। मुनिजी से प्रश्नो को उत्तरित हुए हृदय से जानकर सच्चे प्रश्नकर्त्ता उन मुनिजी के पास जाकर चित्रलिखित के समान एकत्र होकर खडे रहते।

(८)

भाषाविज्जनताविशेषहृदये विश्वस्तशब्दश्रुति. ,
आह्लादं परमं प्रदाय सुनुतिं विश्वासभाषाजनिम् ।
प्राप्येयं ध्वनति प्रकाशपरिधेः पारे विलङ्घ्याधुना ,
त्रैलोक्यादधिके विशिष्टप्रकृति ब्रह्माण्ड भाण्डं मुनेः ॥

अन्वय.—मुनेरमरसिंहस्य भाषाज्ञान शब्दोच्चारणञ्च परम प्रसिद्ध मासीत्। मुने इय विश्वस्तशब्दश्रुति भाषाविज्जनता विशेषहृदये परमम् आह्लाद प्रदाय विश्वासभाषार्जनि सुनुतिं प्राप्य अधुना विशिष्टप्रकृति ब्रह्माण्ड भाण्ड विलङ्घ्य त्रैलोक्यात् अधिके प्रकाशपरिधेः पारे ध्वनति।

अर्थ—मुनि अमरसिंहजी महाराज का भाषाज्ञान और शब्दोच्चारण बहुत प्रसिद्ध था—मुनिराज की यह विश्वस्त शब्द श्रुति, भाषाओ के जानकार प्रमुख मनुष्यो के हृदय पर परम हर्ष देकर, विश्वास और भाषा से उत्पन्न प्रशसा-स्तुति प्राप्त कर अब विशिष्ट प्रकृति के जगत् रूप वर्त्तन को उलाँघ कर त्रिलोकी से दूर प्रकाश की परिधि से परे झनकार रही है।

(९)

वाणीं यो मधुरां निकामसरसां सर्वप्रियां भाषते ,
आचारं सुविधं प्रसन्नमनसा युङ्क्ते सतां सम्मतम् ।
मेघोऽसौ समये सुवर्षणपरः निर्दोषविश्वम्भरः ,
सोऽवोचत् परमप्रभावमहिते मानुष्यके मण्डले ॥

अन्वयः—अयं मुनि. सरसवक्ता, परमक्रियावादी यथोचितविशद वक्ता च आसीत्—यः निकामसरसां सर्वप्रिया मधुरा वाणी भाषते सता सम्मत सुविधम् आचार प्रसन्नमनसा युङ्क्ते, समये निर्दोपविश्वम्भर—सुवर्पणपरः मेघ. (वर्त्ततेस्म) असौ, स (एतादृशोऽमरसिंहोमुनि) परमप्रभाव महिते मानुष्यके मण्डले अवोचत् ।

अर्थ—ये मुनि सरसवक्ता, परमक्रियावादी और यथोचित खुलकर वोलने वाले थे—जो अत्यन्त रसीली, सवको प्यारी, मीठी वोली वोलते थे, सन्तो के सम्मत सुविध आचार का प्रसन्नचित्त से प्रयोग करते थे, और दोप-रहित ससार के रक्षक, समय पर खूव वरसने वाले मेघ थे—ऐसे श्री अमरसिंहजी मुनि वडे रुवाव-दवाव वाले मनुष्यो के समुदाय मे भापण दिया करते थे ।

(१०)

कः श्रेयान् परमप्रकृष्टविधिना प्रश्नेऽमरो भाषते ,
ज्ञानं यस्य, परन्तु कोऽपि न विधिर्नासौ प्रशस्यो जनः ।
एवं यस्य विधिर्न चास्ति परतः सोऽप्यस्ति तद्वत्स्वयम् ,
किन्त्वेकोविशिनष्टि योऽस्ति परमो ज्ञानक्रियाभ्यां युतः ॥

अन्वय—कस्यापि मुनिममरसिंह प्रति—परमप्रकृष्टविधिना श्रेयान् पुरुष क अस्ति इति प्रश्ने सति मुनिः अमरसिंह भाषते–यस्य ज्ञानम् (अस्ति), सः श्रेयान् अस्ति । परन्तु यस्य ज्ञानं तु (वर्त्तते), क. अपि विधिः (क्रिया) न अस्ति (स ज्ञानवास्तु अस्ति, सोऽपि क्रियावान् पुरुष. स्वय तद्वत् प्रशस्यजनवत् न अस्ति–अर्थात् प्रशस्यो नास्ति । किन्तु य. पुरुष. ज्ञानक्रियाभ्याम् युत. अस्ति, स एक. परम. विशिनष्टि—अर्थात् स एव सर्वप्रशस्तो विद्यते ।

अर्थ—किसी के, मुनि श्री अमरसिंहजी से—सर्वोत्कृष्ट विधि के साथ श्रेष्ठ पुरुप कौन हो सकता है, ऐसे प्रश्न किए जाने पर मुनिजी श्री अमरसिंहजी महाराज ने वताया कि जो ज्ञानी है, वह सर्वश्रेष्ठ है। परन्तु जो ज्ञानी तो है, क्रियावान् नही है, वह प्रशस्य पुरुप नही हो सकता और इसी प्रकार जो क्रियावान् है किन्तु ज्ञानी नहीं है, वह भी प्रशस्य नही हो सकता । किन्तु जो ज्ञान-क्रिया इन दोनो से युत है, वह अकेला ही परम विशिष्ट है, अर्थात् वही सर्वप्रशस्त है ।

(११)

स ब्रूते स्वयमेव सूक्तिमपरां संशुद्धचित्तो मुनिः ,
सन्त्येके मनुजाः परं सुनिरतं निन्दन्ति सेच्छं जनम् ।
आत्मानं प्रथयन्ति सज्जनतमं ते सन्ति निन्द्याः स्वयम् ,
नैरोग्याय ददाति भेषजमिवान्यस्मै हितायात्मनः ॥

अन्वय—उक्त विषय लक्ष्यीकृत्य–स मुनि. स्वयम् एव अपरा सूक्ति ब्रूते तद्यथा–आत्मन हिताय कोऽपि नैरोग्य लब्धुम् अन्यस्मै पुरुषाय भेषजं ददाति। (ससारे) एके मनुजा. (एतादृश) सन्ति, (ये) पर जन सेच्छ सुनिरत निन्दन्ति, आत्मान च सज्जनतम प्रथयन्ति। ते मनुजा सूक्त्यनुसार स्वय निन्द्याः सन्ति।

अर्थ—उक्त बात को लक्ष्य बनाकर—वे मुनिजी अपने आप ही एक दूसरी सूक्ति कहते हैं, जैसे कि अपने भले के लिये कोई व्यक्ति कि, मैं स्वस्थ हो जाऊँ, इसलिए वह किसी दूसरे व्यक्ति को औषध देता है। ससार मे कुछ दूसरे मनुष्य ऐसे भी हैं कि जो दूसरे मनुष्य की भरपेट निरन्तर निन्दा करते रहते हैं और स्वय को वडा अच्छा सिद्ध करते है। ऐसे मनुष्य सूक्ति के अनुसार निन्दनीय हैं।

(१२)

संसर्गोऽधिकरोति सत्त्वमधिकं सौजन्यदौर्जन्ययोः ,
हा ! तस्मात्पतति प्रभावमहितो देवोपमः सज्जनः ।
सत्पुष्पप्रचयप्रसंगसुकृति. प्रव्यक्तरत्नाकृतिः ,
ससर्गं समवाप्य शावमशुभ माला स्खलत्यादरात् ॥

अन्वयः—सम्प्रति मुनि सगति महत्त्व निर्दिशति—सौजन्यदौर्जन्ययोः ससर्गः सत्त्वम् अधिकम् अधिकरोति, तस्मात् हा ! प्रभावमहित. देवोपम सज्जन. पतति। यथा—अशुभ शावम् ससर्गं समवाप्य सत्पुष्पप्रचयप्रसग सुकृति. प्रव्यक्तरत्नाकृति माला आदरात् स्खलति।

अर्थ—अब मुनिराज सङ्गति के महत्त्व का निर्देश करते हैं—सुजनता और दुर्जनता के विषय मे सङ्गति प्राणि पर अधिक अधिकार जमाती है। इस सङ्गति के कारण, विपाद होता है कि परम प्रभावी देवतुल्य सज्जन पुरुष पतित बन जाता है। जैसे—अच्छे पुष्पो के साथ सुघड झिलमिलाते रत्नो की आकृति वाली माला शव (लाश) के अशुभ ससर्ग को पाकर आदर से रहित हो जाती है।

(१३)

इत्थं सोऽविरतं सदा विहरति प्रज्ञानुसारक्रियः ,
आदेशं च गुरोर्निधाय शिरसा सङ्केतविद्योतितम् ।
मार्गे त मुनिमाक्षिपन्ति कुधियः पृच्छन्ति गूढं मतम् ,
क्षन्त्वा तान् सहजस्वभावरहितानच्छोद्य जंगम्यते ।।

अन्वयः—इत्थं सदा सः प्रज्ञानुसारक्रिय. अमरसिहो मुनि गुरोः सङ्केतविद्योतितम् आदेशं शिरसा निधाय अविरत विहरति । मार्गे कुधियः (जनाः) त मुनिम् आक्षिपन्ति, गूढ मत (च) पृच्छन्ति, किन्तु (अयम्) तान् सहज स्वभावरहितान् क्षन्त्वा अच्छोद्य जगम्यते ।

अर्थ—इस प्रकार सदा वे प्रज्ञा के अनुसार क्रिया करनेवाले श्री अमरसिंह मुनिराज गुरुदेव के सङ्केत से विद्योतित आदेश को शिरोधार्य मानकर निरन्तर विहार करते थे । मार्ग मे कुबुद्धि के मनुष्य उन मुनिराज पर आक्षेप करते और गूढ मत को पूछते थे । किन्तु (आप) उन कुटिल आक्षेप्ताओ को क्षमाकर अच्छा-अच्छा कहकर निरन्तर जल्दी-जल्दी प्रस्थान करते रहते थे ।

(१४)

लोकास्ते वचनप्रयुक्ति सहितानुद्वोधितानुत्तरान्[1] ,
श्रुत्वेमान् सुपरस्परं कुशलिनः सद्बुद्धिमन्तः स्वतः ।
शंसन्ते सततक्रियानुभविनः सद्ज्ञानमूर्त्तेर्मुनेः ,
माहात्म्यं परमं नितान्तमसकृत् सज्ज्योतिराविष्कृतम् ।।

अन्वयः—तथापि ये बुद्धिमन्तोजना. सन्ति–ते लोका वचनप्रयुक्ति सहितान् इमान् उत्तरान् श्रुत्वा सद्बुद्धिमन्त. कुशलिनः सन्त स्वत सतत क्रियानुभविन. सद्ज्ञानमूर्त्ते. मुने परम सज्ज्योतिराविष्कृत माहात्म्यम् असकृत् सुपरस्पर नितान्त शसन्ते ।

अर्थ—इतने पर भी जो समझदार थे —वे मनुष्य कहने के ढग के साथ इन उत्तरो को सुनकर विवेकी निपुण होकर अपने आप क्रियारत सद्ज्ञान की मूर्त्ति मुनि महाराज के विशिष्ट पवित्र प्रकाश से आविष्कृतत माहात्म्य की वार-वार खूव परस्पर मे प्रशसा करते थे ।

---

१. उत्तरशब्दे पु स्त्वमर्द्धर्चादेराकृतिगणत्वात्समाधेयम् ।

(१५)

वैदुष्यस्य विशिष्टयुक्तिसरणेरस्य प्रभावं मुनेः ,
संज्ञातुं मनसो विकारमसितुं स्थानान्तराद् धाविताः ।
सम्भूता मनुजा अरं प्रतिदिनं व्यञ्जन्ति चित्रं महत् ,
आहोस्वित् सततं भ्रमन्ति मनसः शङ्कां निवृत्त्य स्वतः ॥

अन्वय —अपरेऽपि केचन जिज्ञासव.—अस्य विशिष्टयुक्तिसरणे. मुनेः वैदुष्यस्यप्रभाव सज्ञातुम् मनसश्च विकारम् असितु प्रतिदिनम् स्थानान्तरात् धाविताः सम्भूता. मनुजा अर महत् चित्र व्यञ्जन्ति । आहोस्वित् (ते मनुजा) स्वत. मनस शङ्का निवृत्त्य सतत भ्रमन्ति ।

अर्थ—दूसरे भी कुछ जिज्ञासु—इन, प्रमुख युक्तियो का मार्ग है जिनका ऐसे मुनि श्रीअमरसिंहजी महाराज के वैदुष्य का प्रभाव भलीप्रकार समझने के लिए और मन मे मैल को दूर करने के लिए प्रतिदिन स्थान-स्थान से दौडकर एकत्रित हुए मनुष्य हमेशा वडा अचम्भा प्रकट करते थे, अथवा वे मनुष्य अपने आप मन के सन्देह मिटाकर निरन्तर घूमते-फिरते थे ।

(१६)

सन्तं तं विमलप्रभावमतुलं द्रष्टुं समस्ता जनाः ,
आयान्ति क्रमशो मनोज्ञमनसो भक्त्युन्मुखा नित्यशः ।
आश्चर्यं त्विदमेव ते प्रतिदिनं चायान्ति गच्छन्त्यपि ,
किं त्वेते कृतदर्शना अपि जनाः प्रत्युत्सुकाः केवलम् ॥

अन्वय —मुने· विशिष्टज्ञानदर्शनात्—समस्ता जना तम् अतुल विमलप्रभाव सन्त द्रष्टु भक्त्युन्मुखा मनोज्ञमनस नित्यश क्रमश आयान्ति । किन्तु आश्चर्यम् इदम् एव (आसीत्) (यत्) ते प्रतिदिनम् आयान्ति च गच्छन्ति अपि, एते कृतदर्शना अपि केवलम् (द्रष्टु) प्रत्युत्सुका एव (आसन्) ।

अर्थ—मुनिराज के विशिष्ट ज्ञान और दर्शन के कारण सभी मनुष्य उस अनुपम विमल प्रभाव सन्त के दर्शन के लिए भक्त भावुक होकर नित्य एक के वाद एक आते ही रहते थे । किन्तु आश्चर्य तो यह था कि प्रतिदिन आने-जाने पर भी दर्शन किए हुए भक्त, फिर भी दर्शन के लिए उत्कण्ठित ही रहते थे ।

(१७)

आयातान् जनसंकुलान् प्रतिहरित् दृष्ट्वा परं मोदते ,
किन्तूत्कान् सुतरामयं रमयितुं शङ्काः शतं पृच्छति ।
आतोषं विगलन् कुतर्कमपरं निश्शङ्कमुट्टङ्कते ,
शङ्कन्ते तमिमं मुनिं स्वहृदये स्वेच्छागतं गौतमम् ॥

अन्वयः—सम्प्रति—प्रतिहरित् आयातान् जनसकुलान् दृष्ट्वा मुनिः परं मोदते। किन्तु उत्कान् जनान् सुतरा रमयितु शत शङ्का पृच्छति। आतोषम् अपर कुतर्कं विगलन् अय मुनि निश्शङ्कम् उट्टङ्कते। (निश्शङ्कम् उट्टङ्कमान) तम् इमम् मुनिम् आयाता. जना स्वहृदये स्वेच्छागत गौतमं शङ्कन्ते।

अर्थ—अव—प्रत्येक दिशा से आये हुए जनसमूहो को देखकर मुनिजी वहुत प्रसन्न होते थे। किन्तु उत्कण्ठित पुरुषो को आनन्दित करने के लिए सैकडो शङ्काएँ पूछने लगते थे। किन्तु जव तक सन्तोप न हो, तव तक दूसरे कुतर्क को मिटाते हुए वे निश्शङ्क वोलते ही रहते। इसलिए आये हुए मनुष्य अपने हृदय मे अपनी इच्छा से आये गौतम हो-ऐसी शङ्का करने लगते थे।

(१८)

दृष्ट्वेमं परमं हसन्तमनिशं सन्तं परे मन्वते ,
स्याच्चैतत् स्वयमेव ये दिविषदो भ्राम्यन्ति पारेजगत् ।
आत्मानं विशदं सुवैभवपरं मन्वन्त आनन्दतः ,
मिथ्यैवेति मतिः परा दिविषदा तस्मादयं मोदते ॥

अन्वयः—मुनिमिमं सदा प्रसन्न दृष्ट्वा जनास्तर्कन्ते—जना परम हसन्तम् सन्तम् इम दृष्ट्वा परे मन्वते–यत् एतत्–ये दिविपद स्वयमेव पारे-जगत्, आत्मानं विशद सुवैभवपरम् मन्वते, (अतस्ते) आनन्दत.–भ्राम्यन्ति, इति तेपा दिविषदा मतिः एषा–परा मिथ्या अस्ति। तस्मात् अय मुनिः मोदते। अर्थात् अह भूमावेव स्थित' परमस्तपोधनोऽस्मि !

अर्थ—मनुष्य सदा इन मुनिजी को प्रमन्न देखकर तर्क करते है—कि हो न हो, ऐसा जान पडता है कि जो देवगण स्वय ही दुनिया भर मे—अपने आप को परम वैभव सम्पन्न मानते हैं, इसलिए मौज उडाते फिरते है—ऐसा उनका विचार विल्कुल थोथा है। इस कारण से ये मुनिजी सम्भवत हँसते-करते हैं। अर्थात मैं पृथ्वी ही रहकर परम तपोधन हूँ। मेरे सामने तुम क्या हो !

(१९)

भावं दीपयति प्रथां रचयति प्रज्ञानमालम्बते ,
श्रद्धां स्थापयति प्रभां स्थिरयति व्यामोहमुल्लंघते ।
क्षोभं दूरयति प्रभावमसमं लोके समुत्पादयन् ,
याति प्रातरय शरीररचितां शौचक्रियां वर्तितुम् ॥

अन्वयः—साधु परकार्यं साध्नोति—तस्मात् अय मुनिः (अमरसिंहः) साधु सन् (यदा) प्रात शरीररचिता शौचक्रिया वर्त्तितु याति, (तदा) लोके भाव दीपयति, प्रथा रचयति, प्रज्ञानम् आलम्वते, श्रद्धा स्थापयति, प्रभा स्थिरयति, व्यामोहम् उल्लघते, असम प्रभाव समुत्पादयन् क्षोभ दूरयति ।

अर्थ—साधु पर-हित के लिए कार्य करता है, अतः वह सावु कहलाता है—इसलिए आप (मुनि श्री अमरसिंहजी महाराज) जव प्रभात मे शरीर के द्वारा रचित शौचक्रिया को वरतने के लिए जाते थे, तव ससार मे भाव को दीप्त करते थे, प्रथा को जन्म देते थे, प्रज्ञान का सहारा लेते थे, श्रद्धा को जमाते थे, धाक को कायम रखते थे, व्यामोह को अध.कृत रखते थे, और असाधारण प्रभाव को पैदा करते हुए क्षोभ को दूर करते थे ।

(२०)

निर्वृत्तञ्च विधेस्ततो मुनिममुं पृच्छन्ति जिज्ञासवः ,
प्रश्ने सोऽभ्यदधात् विशेषविषये चाध्यात्मविद्यात्मके ।
आत्मा यत्स्पृशति श्रयं नियमतो द्वेषस्य रागस्य वा ,
तद्बद्धो लभते व्यथां तदितरो मुक्तश्च मोमुद्यते ॥

अन्वय—तत विधे निर्वृत्तम् अमु मुनि जिज्ञासव (श्रावका) विशेष विषये अध्यात्मविद्यात्मके प्रश्ने (किञ्चित्) पृच्छन्ति । अत स (मुनि. अमरसिंह) अभ्यदधात् यत्यदा च आत्मा द्वेषस्य वा रागस्य श्रय नियमत स्पृशति, तदा द्वेषरागाभ्या वद्ध (आत्मा) व्यथा लभते, रागद्वेषाभ्याम् इतर (आत्मा) च मोमुद्यते ।

अर्थ—तदनन्तर शौचादि क्रिया से निर्वृत्त इन मुनिजी से जिज्ञासु श्रावक विशेष विपय वाले अध्यात्मविद्या सम्वन्धी प्रश्न के विषय मे कुछ पूछते हैं, तव मुनि श्री ने कहा कि जव आत्मा, द्वेप अथवा राग के आश्रय को नियम से छूने लगती है, तव रागद्वेप से वँधी हुई आत्मा दु ख का अनुभव करती है और रागद्वेप से पृथक हुई आत्मा निरन्तर हर्ष ही हर्प का अनुभव करती है। अर्थात आत्मा विशुद्ध होती है, किन्तु ससर्ग से सुखी-दु खी हो जाती है ।

(२१)

प्रापन्नान् महिमानमाप्तसुविधानभ्युद्यतान् सम्पदे ,
जिज्ञासूनयमेव पृच्छति मुनिर्धर्मं दधीरन्न वा ।
पृष्टास्ते समुदीरयन्ति भगवन् कुर्मो वयं दर्शनम् ,
साधूनां खलु दर्शनं भवति नो मुक्त्यै परं कारणम् ॥

अन्वयः –सम्प्रति अयमेव मुनिः महिमानम् प्रापन्नान् सम्पदे अभ्युद्यतान् आप्त सुविधान् जिज्ञासून् पृच्छति (यत् भवन्तः) धर्मं दधीरन् वा न ? पृष्टा. ते समुदीरयन्ति, हे भगवन् ! वय साधूना दर्शन कुर्मः। (यतो हि) साधूना) दर्शन खलु न मुक्त्यै परं कारण भवति ।

अर्थ –सम्प्रति ये ही मुनिराज प्रख्यात, सम्पत्ति के लिए सर्वथा सन्नद्ध, जिनको सुविधाएँ प्राप्त है, ऐसे उन जिज्ञासुओ से प्रश्न करते हैं कि धर्म करते हो कि नही ? पूछे गये वे कहने लगे कि हम तो मुनियो के दर्शन करते हैं। क्योकि यह निश्चय है कि मुनिजन का दर्शन मुक्ति प्राप्त करने के लिए सर्वश्रेष्ठ कारण है। अर्थात् दर्शन करते हैं और कुछ नही करते ।

(२२)

उद्धारो भवतां विना सुकृतिभिश्शक्योऽपि किं विद्यते ,
अस्मान्मे मतमस्ति सत्यमपरं कृत्वा च तद् दर्शनम् ।
युष्माभिः क्रियतां तपस्तु सततं कर्मक्षयोऽयं भवेत् ,
अन्ते यूयमतो भवेत नु परे मुक्तेः पदं गामिनः ॥

अन्वयः—केवल दर्शनादेव कार्य्यं न फलति—अतो मुनिना प्रश्नः क्रियते—किं भवताम् उद्धार. सुकृतिभि. विना अपि शक्य. (अस्ति), अर्थात् शक्यो नास्ति। अस्मात् मे मतम् अस्ति, यत् तत् दर्शन कृत्वा युष्माभिः तु तप सततम् क्रियता—अपर सत्यम् (इद) यत्–अय कर्मक्षयश्च भवेत्।.अत. अन्ते परे यूयम् मुक्ते पद गामिन. नु भवेत ।

अर्थ—केवल दर्शन से कार्य नही फलता—इसलिए मुनिराज ने प्रश्न किया-कि क्या आपका उद्धार विना सुकर्मों के शक्य है, अर्थात हो सकता है। तो उत्तर— 'नही हो सकता' यही आता है। इससे मेरा मत तो यही है कि उस दर्शन को छोड-कर तुमको तो सदा तप करना चाहिए, और दूसरा सत्य यह भी है कि कर्मों को क्षय भी हो जायेगा। हो सकता है कि परिणाम मे तुम तव मुक्ति के स्थान के अधि-कारी ही वनजाओ ।

(२३)

सद्‌ज्ञानाद् मनुजो न जातु कमपि क्लेशं वहत्यात्मना ,
तद्धेतु बहिरेव चास्ति नियतं तस्माद्विकारः कुतः ।
स्वच्छात्मा स्वत एव संलसति यद् रत्नत्रयेणामुना ,
तेनाहं प्रथयामि चिन्मयमिमं जीवं सदा रक्षत ॥

अन्वय—सम्यग् ज्ञानमपि यूयमुपासयेत—(यतोहि) सद्‌ज्ञानात् मनुज. जातु आत्मना कमपि क्लेश न वहति। (यत) क्लेशस्य हेतुः बहिः एव नियतम् अस्ति, तस्मात् (आत्मनि) विकार कुत. (आगच्छेत्)। यद् अमुना रत्नत्रयेण स्वच्छात्मा स्वत एव सलसति तेन अहन्तु प्रथयामि यद् यूयम् इम चिन्मय जीव सदा रक्षत।

अर्थ—सम्यक्‌ज्ञान भी तुमको प्राप्त करना चाहिये—क्योकि सम्यक्‌ज्ञान को प्राप्त कर मनुष्य कभी स्वय किसी क्लेश को नही झेलता। क्योकि क्लेश का कारण बाहर ही नियत है। इमसे आत्मा मे विकार कहाँ से पहुँचे ? कारण यह है कि रत्नत्रय से शुद्ध आत्मा स्वत ही प्रतिष्ठित रहती है। इससे मैं तो यही बताता चला आ रहा हूँ कि तुम इस चेतन जीव की मदा रक्षा करो।

(२४)

प्रश्नोऽयं भवति व्यथामनुभवन्नात्मा विशुद्धः कथम् ,
तस्मात्ते वचनं न सम्यगिति नश्चित्ते विभामो वयम् ।
पृष्टोऽसौ प्रथते मुनिः सविशदं प्रश्नस्य तथ्याशयम् ,
शुद्धोऽवश्यमसौ परन्तु यदि यो रागादि बद्धो भवेत् ॥

अन्वयः—तदा ते जिज्ञासवोऽवोचन्—हे भगवन्! प्रश्न अयं भवति (यद्) व्यथाम् अनुभवन् आत्मा शुद्ध कथं भवितु शक्ष्यति ? तस्मात् न. चित्ते ते वचन सम्यक् न (अस्ति) इति वय विभाम। पृष्ट. सन् असौ मुनि प्रश्नस्य तथ्याशय सविशद प्रथते—अवश्यम् असौ आत्मा शुद्ध अस्ति, परन्तु यदि रागादिबद्ध य. आत्मा भवेत् तदा व्यथाम् अनुभवेत्।

अर्थ—तब वे जिज्ञासु श्रावक कहने लगे कि महाराज! प्रश्न यह है कि व्यथा का अनुभव करती हुई यह आत्मा शुद्ध कैसे हो सकेगी ? इससे हमारे मन मे आपका कथन ठीक नही लगता—ऐसा हम सोचते हैं। पूछे गये वे मुनि (श्री अमरसिंहजी महाराज) प्रश्न के वास्तविक अभिप्राय को बताते हैं कि यह आत्मा अवश्य शुद्ध है, किन्तु जब यह रागादि से बँधी हुई रहती है तो यह सुख-दु ख का अनुभव करने लगती है।

(२५)

आशङ्कामसितुं प्रदेशमतितुं धर्मक्रिया वर्त्तितुम् ,
वृत्तिं साधयितुं प्रथां गमयितुं विश्वासमुद्योतितुम् ।
नित्यं योऽयतताऽऽसदातनतमं धर्मं समाबोधयन् ,
आसीत्सोऽमरसिंहदेव इतिह प्रासादमौलिर्मुनिः ॥

अन्वयः—मुनिः कवि परिचाययति—य. आशङ्काम् असितुम्, धर्म क्रियां नर्त्तितुम्, वृत्ति साधयितुम्, प्रथा गमयितुम्, विश्वासम् उद्योतितुम् आसदातनतम धर्मं समावोधयन् नित्यम् अयतत, स इतिहप्रासादमौलिः मुनिः अमरसिंहदेव आसीत् ।

अर्थ—कवि मुनि का परिचय कराता है कि—जिसने शङ्का को दूर करने के लिये, स्थान-स्थान पहुँचने के लिये, धर्मक्रिया को वरतने के लिये, वृत्ति को साधने के लिये, रीति को व्यवस्थित करने के लिये सदा से चले आने वाले धर्म को बताते हुए प्रयत्न किया, वे इतिहास के प्रासाद के मस्तक मुनि श्री अमरसिंहजी ही थे ।

(२६)

सायुज्येन विहृत्य भारतभुवो देश-प्रदेशान् बहून् ,
जैनान् य. समबोधयत् प्रतिपदं जैनं परं शासनम् ।
ज्ञप्तोक्तं विशदं प्रयुक्तिसुलभं हृद्यानवद्यं शुभम् ,
सिद्धोऽभूदयमेव साधुसरणौ धन्वप्रधानो मुनिः ॥

अन्वयः—भारतभुवः वहून् देश-प्रदेशान् सायुज्येन विहृत्य य प्रतिपद जैनान् ज्ञप्तोक्तं शुभ हृद्यानवद्य प्रयुक्तिसुलभ परं जैन शासन समबोधयत् अयमेव मुनिः साधुसरणौ धन्वप्रधानः सिद्ध अभूत ।

अर्थ—भारत भूमि के अनेक छोटे-वड़े स्थानो पर सायुज्य के साथ विहार कर जिन्होने स्थान-स्थान पर जैन जगत् को ज्ञप्तोक्त, शुभ, प्रिय और पवित्र प्रयुक्तिप्राप्य महान् जैनशामन स्पष्टता से समझाया । वे ही ये मारवाड़ मे प्रधान अथवा प्रमुख मुनिराज साधु मार्ग मे सफल सस्थापक थे ।

(२७)

कर्त्तव्ये प्रथमः क्रियासु कुशलः शास्त्रोदधौ पारगः ,
निष्णातो गहने विधौ सुविषमे विश्वे स्वयं सारवित् ।
उद्युक्तः प्रसृतप्रमादविगमे गन्ता स्थले दुर्गमे ,
विख्यातो जगतीतले मुनिरयं सिंहस्वरूपोऽमरः ॥

अन्वयः—सिंहस्वरूप अयं मुनि अमरसिंह कर्तव्ये प्रथम, क्रियासु-कुशल, शास्त्रोदधौ पारग, गहने विधौ निष्णात, सुविषमे विश्वे स्वयसार-वित्, प्रसृतप्रमादविगमे उद्युक्त, दुर्गमे स्थले गन्ता, जगतीतले विख्यात (अस्ति)।

अर्थ—सिंहस्वरूप ये मुनि श्री अमरसिंहजी कर्त्तव्य मे प्रथम, क्रियाओ मे कुशल, शास्त्ररूप सागर मे पारगामी, गहन विधि मे निपुण, महाविषम ससार मे स्वय तत्त्ववेत्ता, फैले हुए प्रमाद के निरसन मे उद्युक्त (और) दुर्गम अर्थात् अगम्य स्थल मे जाने वाले विश्वविख्यात पुरुष थे। अर्थात् वे अपने समय के सर्वगुणसम्पन्न मुनि थे।

(२८)

सर्वज्ञस्य जिनेश्वरस्य परमं ज्ञप्तं तु धर्मं मरौ ,
वीरस्यैव यथोदितं प्रचरितुं श्वेताम्बर स्थानकौ ।
द्वाविंशोत्तममण्डली भगवतोऽगच्छन्मुनियों मरुम् ,
सोऽयं मेऽमरसिंह एव मुनिषु श्रेष्ठो विशिष्टोऽभवत् ॥

अन्वयः—मरौ देशे सर्वज्ञस्य जिनेश्वरस्य भगवत वीरस्य परम ज्ञप्त तु धर्मं यथोदित प्रचरितु य. श्वेताम्बर स्थानकौ द्वाविंशोत्तममण्डली मुनि. मरुम् अगच्छत्, अयं स मुनिषु श्रेष्ठ मे विशिष्ट अमरसिंह अभवत्।

अर्थ—मारवाड देश मे सर्वज्ञ जिनेश्वर भगवान् महावीर के परम ज्ञप्त धर्म को जैसा कहा गया है, उसका अतिक्रमण न कर प्रचार करने के लिये जो श्वेताम्बर स्थानकवासी बाईस सम्प्रदाय के मुनि मरुदेश पहुँचे, वे ये ही मुनिओ मे श्रेष्ठ मेरे विशिष्ट श्री अमरसिंह जी महाराज थे।

(२९)

यस्य ज्ञानविशेपसूर्यकिरणैर्दिव्यैर्नवैर्निर्मलै ,
विद्वन्मानसपुष्करं प्रतिदलं शोभाविकाशं दधत् ।
आलोकं जनमण्डलं प्रभवितु धर्मप्रभाभूषया ,
माहात्म्यं त्वधुनामरस्य च मुनेस्तस्यापि सराजते ।।

अन्वयः—यस्य नवै निर्मलै दिव्यै. ज्ञानविशेपसूर्यकिरणै विद्वन्-मानस पुष्करं प्रतिदलं शोभाविकास दधत् आलोक जनमण्डलं धर्मप्रभा-भूषया प्रभवितु तस्य मुने. अमरस्य (अमरसिंहस्य) माहात्म्य तु अधुना अपि संराजते ।

अर्थ—जिसकी नई निर्मल दिव्य ज्ञानविशेपसूर्य की किरणो से विद्वानो के हृदय कमल को, कली-कली की छटा के साथ धारण करता हुआ, ससार भर के मनुष्यो को धर्म की ज्योति से भूषित कर प्रभावित करने के लिए उन मुनि श्री अमरसिंह जी महाराज का माहात्म्य तो अब भी विद्यमान हैं ।

(३०)

निकामं प्रव्यक्तु यदपि न हि मे कापि सुगति ,
तथापीमं ख्यातु मनसि मम जाता रुचिरियम् ।
अतोऽहं विख्यातं सुगुणिगणनायाः शिखरिणम् ,
तदग्रे सर्गेऽमु पुनरपि मुनि तं व्यभिदधे ।।

अन्वयः—यदपि निकाम प्रव्यक्तु मे का अपि सुगति. न हि अस्ति, तथापि इमं मुनि ख्यातु मम मनसि इयं रुचि. जातास्ति । अतस्तद् अह पुनरपि अग्रे सर्गे त सुगुणिगणनाया शिखरिण विख्यात मुनि व्यभिदधे ।

अर्थ—यद्यपि पूर्णरूपेण वर्णन करने की मुझ मे कोई भी शक्ति नही है, तथापि इन मुनि महाराज के वर्णन करने की मेरे मन मे यह इच्छा है कि मैं फिर भी आगे के सर्ग मे उन महान् गुणिओ की गिनती के शिखरी विख्यात मुनि महाराज का और वर्णन करूँ ।

(३१)

न कोऽपि कवितामहं यदि रचेय सेच्छं कदा ,
शृणोति भवता समो मयि कृपां निधायाप्यसौ ।
कविर्न सहते पुनः सुपदमेकमस्या अहो ,
करोमि ननु साहसं तदपि ते दयायाः फलम् ।

अन्वय—कविः कथयति—कदापि सेच्छं अहं यदि कविता रचेय (तदा तां) कः अपि न शृणोति, यदि भवता समः असौ तां शृणोत्यपि, ततस्तु, अहो, कविः अस्याः (मम कवितायाः) एकं सुपदमपि न सहते। तथापि अहं (कवितायै) साहसं करोमि, तदपि हे सज्जनश्रोत ! ते दयायाः फलम् (अस्ति)। (यत् त्वं शृणोषि।

अर्थ—कवि कहता है कि जब कभी इच्छा से मैं कविता की रचना करूँ तो कोई सुनता नही है, और यदि आपके समान कोई मुझ पर दया कर सुनता भी है तो फिर मैं क्या बताऊँ ! ये कवि मेरी कविता की बात तो दूर रही, उसके पद्य का एक पद भी नही सहन कर पाते। (इससे मेरा निराश होना स्वाभाविक है)। फिर भी मैं जो कविता के लिए साहस करता हूँ, वह भी हे सज्जन ! आपकी दया का फल है कि जो आप सुनते हो, अन्यथा तो कौन पूछे !

इति श्रीमता राजस्थानकेसरिणा पण्डितरत्नेन
उपाध्याय पदालङ्कृतेन पुष्करमुनिना विरचिते
श्रीमदाचार्यामरसिंह महाकाव्ये
चतुर्थ सर्गः



पंचमः सर्गः

(१)

अथ प्रज्ञप्तात्माऽशरणशरणो मङ्गलभुवम् ,
अखण्डब्रह्माण्ड-प्रथितमहिमानं जिनवरम् ।
स्वतो नामं नामं जगति जयिनःप्राणिनिवहान् ,
र्जनिं लेभे लोकाममरमुनिरेवं व्यवसितुम् ॥

अन्वयः—अथ अशरणशरणः प्रज्ञप्तात्मा अमरमुनि मङ्गलभुवम् अखण्डब्रह्माण्डप्रथितमहिमानम् जिनवरम् स्वत. नाम नाम प्राणिनिवहान् एव लोकन् जयिनः व्यवसितु जगति जनिं लेभे ।

अर्थ—दीक्षाग्रहणानन्तर अशरणो के शरण प्रज्ञप्तात्मा अमरसिंहजी महाराज ने मङ्गलस्थान सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मे प्रख्यात है महिमा जिसकी ऐसे जिनेश्वर भगवान् को स्वत वार वार नमन कर प्राणियो के समूहो को और इसी प्रकार मनुष्य को विजयी बनाने के लिए जगत् मे जन्म ग्रहण किया था, यह सिद्ध कर दिखाया ।

(२)

शुभं वर्षावासं मुनिजनमनोज्ञं ज्ञविहितम् ,
समाप्येमं गन्तुं गुरुजनसमेतोऽमरमुनि· ।
मतिं चक्रे शश्वत्त्वमरसरनामेति नगरम् ,
इदं शिष्यस्थानं दशमगुरुगोविन्दरचितम् ॥

अन्वयः—ततः इमम् ज्ञप्तविहितम् मुनिजनमनोज्ञम् शुभ वर्षावासम् समाप्य गुरुजनसमेत. अमरसिंहमुनि. अमरसरनामेति नगरम्, यत् इद नगर तु दशमगुरुगोविन्दरचितम् शिष्यस्थानम् (अस्ति ।), गन्तु शश्वत् मति चक्रे ।

अर्थ—तदनन्तर इस ज्ञ-विहित मुनिजन के प्रिय शुभ वर्षा के आवास अर्थात् चतुर्मास को पूर्णकर गुरुजनो के साथ अमरसिंह जी महाराज अमरसर नाम के नगर जो कि दशमेश गुरुगोविन्दसिंहजी महाराज का रचित, सिक्खो का वसाया हुआ है, को जाने के लिए वारवार विचारने लगे ।

---

० सर्गेऽस्मिन् 'शिखरिणी यमौ न्सौ भ्लौ गृतुरुद्राः ।'

(३)

अतोऽसौ श्रीमन्त प्रथितगुरुदेवं वदति तम् ,
अह द्रष्टुं याचे यदि समयदेशं समुचितम् ।
विशालं तत्स्थानं परममनुकूलं भवति ते ,
ततस्तेनाप्युक्तं मदनुमतिरित्येव समये ॥

अन्वयः—अत. असौ अमरसिंहो मुनि त प्रथितगुरुदेव वदति, यदि ते तत् विशाल स्थान परमम् अनुकूल भवति, (तदा) समुचितम् समयदेशं च (निरीक्ष्य) अहम् (अपि) द्रष्टु याचे। तत तेन अपि उक्तम् यत् समये मदनुमति इति एवास्ति।

अर्थ—इसलिए वे श्रीअमरसिंह जी महाराज अपने प्रसिद्ध गुरुदेव श्रीलालचन्द्रजी मुनिराज से कहने लगे—यदि वह विशाल स्थान अधिक अनुकूल हो तो समुचित काल-क्षेत्र के अनुसार मैं भी उस स्थान को देखना चाहता हूँ। यह सुनकर—गुरुदेव श्रीलालचन्द्रजी महाराज ने भी कहा कि मेरी तो अनुमति है ही, परन्तु समय पर देखिए।

(४)

अथैकस्मिन् काले परमसुदिने मङ्गलमयम् ,
प्रभातं भास्वन्तं दिनकरमिमे चातिसुगमम् ।
प्रवीक्ष्य प्रस्थान विमलमुनयस्ते विदधति ,
अतो हर्ष-हर्षं विहरति सता मण्डलमिदम् ॥

अन्वय—अथ एकस्मिन् परम सुदिने काले मङ्गलमय प्रभात अतिसुगम च भास्वन्त दिनकरम् प्रवीक्ष्य इमे विमलमतय (मुनय.) ते प्रस्थान विदधति। अत सताम् इद मण्डल हर्षं हर्षं विहरति।

अर्थ—वर्षावास के पीछे एक परमसुदिन समय पर मङ्गलमय प्रभात और मन्दमन्द चमकते हुए सूर्य को देखकर ये विमलबुद्धि के मुनि ही प्रस्थान कर देते हैं। इसलिए सन्तो का यह मण्डल हरसता हुआ विहार करता जा रहा है।

(५)

प्रतिग्रामं गत्वा विरमति विधेयं गमयितुम् ,
सतां रात्रौ शेते विमलशुभगं मण्डलमिदम् ।
कृतप्रातःकृत्यं शमयति निशो व्यावहृतिकम् ,
अतः सन्तस्त्वेते प्रतिकृतिविधानं विदधति ॥

अन्वयः—सतां विमलशुभगम् मण्डलम् विधेयं गमयितुम् प्रतिग्राम गत्वा विरमति, रात्रौ (च) शेते। कृतप्रात. कृत्यम् इदम् मण्डलम् निश. व्यावहृतिकं शमयति। अत. एते सन्तः प्रतिकृतिविधान विदधति।

अर्थ—इस प्रकार मुनियो का सिंघाड़ा जो कि शान्तदान्त है, विधेय को साधने के लिए ग्राम-ग्राम पहुँचकर विराम करता है और रात्रि होने पर शयन करता है, प्रात· कृत्य करने वाला यह मुनिमण्डल रात्रि के व्यावहृतिक को शान्त करता है। अतः प्रत्येक सन्त, प्रतिकृति के कर्त्तव्य को पूरा करता है, सो ये भी तदनुसार करते चले जा रहे हैं।

(६)

गृहस्था आगत्य त्रिकृतिजनकं कर्म नमनम् ,
विधायान्ते स्थित्वा सुखकरविधिं शान्तिसुलभम् ।
यथाधर्मं पृष्ट्वा विहितसुविधायै प्रयतितुम् ,
प्रजिज्ञासन्ते तेऽभिदधति न वाचं श्रमणकाः ॥

अन्वयः—गृहस्था. आगत्य त्रिकृतिजनकं नमन कर्म विधाय अन्ते स्थित्वा, सुखकरविधिं शान्तिसुलभ यथाधर्मं पृष्ट्वा विहितसुविधायै प्रयतितुम् प्रजिज्ञासन्ते। किन्तु श्रमणका. वाचं न अभिदधति।

अर्थ—ज्ञात होने पर कि मुनिजन पधारे हैं तो श्रावक आकर तिखुत्तो सहित नमन कर्म कर सुखकर विधि वाले शान्तिसुलम कार्य को धर्म के अनुसार पूछकर, मुनिजन के लिए कल्पित सुविधा के हित प्रयत्न करने के लिए वारवार जानने की इच्छा करते हैं। किन्तु छोटे मुनिजन कोई उत्तर नही देते। क्योकि वड़े सन्त विराजे हुए हैं, जो वे चाहेंगे, सो हम करेंगे। इसलिए वे चुप हैं।

(७)

अतस्ते साशङ्काः प्रतिमुनि पिपृच्छां विदधति ,
ततस्तेषां शङ्कां निरसितुमनास्तामरमुनिः ।
अवोचन्तां वाणी शमयति सदा या विमनसम् ,
गृहस्थाः सन्तुष्टा अभिदधति निश्चप्रचवचः ॥

अन्वयः—उत्तराभावात्ते साशङ्का (अभवन्) अत प्रतिमुनि पिपृच्छा विद्धति । पिपृच्छा कुर्वंता तेषा ताम् पिपृच्छा निरसितु (स) अमरमुनिः ताम् वाणीम् अवोचत्, या वाणी सदा विमनस (पुरुष) शमयति । तत. ते गृहस्था (श्रावका) ता वाणी श्रुत्वा सन्तुष्टा· सन्त. निश्चप्रचवच· अभिदधति ।

अर्थ—उत्तर के अभाव के कारण साशङ्क हो गये और इसीलिए वे मुनि-मुनि से पिपृच्छा करने लगे कि क्या बात हुई जिससे मुनियो मे से कोई कुछ नही कहता। पिपृच्छा करने वाले उन श्रावको की उस शङ्का को दूर करने के लिए वे अमरसिंहजी मुनि वह वाणी वोले, जो वाणी सदा असन्तुष्ट पुरुष को शान्त कर देती हैं। तदनन्तर वे श्रावक उस वाणी को सुनकर सन्तुष्ट हो, ठीक है, ऐसा होता ही है ऐसा कहने लगे।

(८)

तदा ते सर्वेऽमुं मुनिजनवृत वीक्ष्य ससुखम् ;
वदन्तं सत्सङ्गं सकलफलद मोक्षसरणिम् ।
प्रसन्ना जायन्ते विविधविमताक्रान्तमनसः ,
गतास्ते तं द्रष्टुं नगरसुहृदो यान्तु वदितुम् ॥

अन्वयः—तदा ते सर्वे विविधविमताक्रान्तमनसः गृहस्था· सकल फलद मोक्षसरणि सत्सग वदन्तम् मुनिजनवृतम् अमुम् अमरसिंहमुनि ससुख वीक्ष्य प्रसन्ना जायन्ते । (तत. च) ते नगरसुहृद· वदितु गताः, (यतो हि तेऽपि) त मुनिम् अमरसिंह द्रष्टुम् यान्तु ।

अर्थ—तव वे सव अनेक विमतो से आक्रान्त मन वाले गृहस्थ सव फल देने वाले मोक्ष के मार्ग सत्सङ्ग को बताते हुए, मुनिजन से घिरे हुए उन श्री अमरसिंहजी महाराज को ससुख अच्छी तरह से देखकर आनन्दित हो उठते हैं। और फिर वहाँ से नगर के मित्रो को कहने के लिए चल देते हैं कि उन अमरसिंह मुनिजी को देखने के लिए आप सव भी चलिए।

(९)

धरन्तं तं सन्तं धवलवसनं पात्रसहितम् ,
पदातिं गच्छन्तं प्रथितमहिमान मुनिवरम् ।
सवेत्रं सूर्णोंघं क्रमिकगमनं वक्त्रपिहितम् ,
महान्तं संवीक्ष्यारमति सुतरां प्राणिनिवहः ॥

अन्वय.—प्राणिनिवह. पात्रसहित धवलवसन सवेत्रं सूर्णोंघ धरन्तं क्रमिकगमनं वक्त्र पिहितं पदाति गच्छन्तं त महान्त सन्त प्रथितमहिमान मुनिवरं संवीक्ष्य आरमति ।

अर्थ—जनता, पात्रो के सहित, श्वेतवस्त्र, वेत्र के साथ श्रेष्ठ ऊन के ओघे को धारण किए हुए, धीरे-धीरे चलने वाले मुखवस्त्राच्छादित पैदल जाते हुए महान् सन्त कीर्त्तिशाली मुनिश्रेष्ठ श्री अमरसिंहजी महाराज को निहार कर आनन्द विभोर हो गई ।

(१०)

विहारं कुर्वन्तं नगरममृतं स्प्रष्टुमनसम् ,
जनाः पृच्छन्तीमं कथयतु कथङ्कारमिति यत् ।
गृहं त्यक्त्वा गच्छेत् सुघटिततमे भोगरुचिरे ,
शरीरे नाद्यापि श्रुतमतिकृतं नाप्यधिगतम् ॥

अन्वयः—तदा जना. अमृत नगर स्प्रष्टुमनस विहारं कुर्वन्तम् इमं मुनिम् अमरसिंह पृच्छन्ति, यत् सुघटिततमे भोगरुचिरे शरीरे सति गृह त्यक्त्वा गच्छेत् इति कथङ्कारं जात कथयतु । यतोहि अद्यापि न श्रुतम् नापि अतिकृतम् अधिगतम् ।

अर्थ—तब मनुष्य, अमृतसर नगर को स्पर्श ने की इच्छावाले विहार करते हुए इन मुनिराज श्री अमरसिंहजी से प्रश्न करते हैं कि सुघड़ से सुघड़ भोगरुचिर शरीर के रहते हुए घर को छोडकर चल दे ! —ऐसा कैसे हुआ ? आप बताइये । क्योकि हमने न तो आज तक ऐसा सुना और नही आज तक ऐसा गजब ढाहने वाला पाया ।

(११)

ततस्तेनागादि प्रकृतिरिरिति पुण्या भगवताम् ,
सदापुण्येनेयं प्रभवति जनं सुन्दरतमम् ।
महापुण्यात्मानं विदितपरमं वैभवपरम् ,
सुधर्माणं भव्यं प्रथितयशसं तं गुणिवरम् ,

अन्वयः—तत तेन मुनिना अमरसिंहेन अगादि यत भगवता जनाना पुण्या प्रकृति इति। इय प्रकृति सदा पुण्येनत सुन्दरतमम् विदितपरमम् वैभवपरम् महापुण्यात्मान प्रथितयशस सुधर्माण गुणिवरम् च भव्य जनं प्रभवति।

अर्थ—तदनन्तर उन मुनि श्री अमरसिंहजी ने कहा कि यह भगवान् महापुरुपो का स्वभाव है, क्योकि पुण्यो का यह खेल है। इसलिए यह प्रकृति, उस सुन्दर से सुन्दर, प्रख्यात, धनाढ्य, महाभाग्यवान्, यशस्वी, धर्मात्मा परमज्ञानी और भव्य पुरुष पर अपना अधिकार रखती है। यह कोई छोटी-मोटी वात नही है। अत आप सब समझने के अधिकारी नही है, ऐसा व्यग्यार्थ है।

(१२)

कृतेश्चित्रं मूल्यं स्थिरमतिमतां बुद्धिविभवा ,
प्रसिद्धिर्वैदुष्यं परमविदुषां ख्यातयशसाम् ।
सदा सच्चारित्रं प्रथितयमिनां ज्ञानमपरम् ,
मुनेर्वा माहात्म्यं प्रकृतिरिति सा भगवताम् ॥

अन्वयः—यथा कृते मूल्य चित्रम् अस्ति, स्थिरमतिमता प्रसिद्धिः बुद्धिविभवा विद्यते, ख्यातयशसा परमविदुषा वैदुष्यम् वर्त्तते, प्रथितयमिना सच्चारित्रम् भवति, मुनेः माहात्म्य वा अपर ज्ञान प्रसिद्ध जायते। एवमेव भगवता महापुरुषाणा सा प्रकृति इति प्रसिद्धं वास्ते।

अर्थ—इस विषय पर अधिक सोचने की कोई वात नही हैं। क्योकि जैसे कृति का मूल्य आश्चर्य हैं, विचारकी प्रसिद्धि बुद्धि विभव है, प्रसिद्ध विद्वानो का वैदुष्य प्रसिद्ध होता है, प्रसिद्ध सयमियो की प्रसिद्धि का हेतु सच्चारित्र माना गया है, मुनि का माहात्म्य अथवा विशिष्ट ज्ञान प्रसिद्ध होता है, उसी प्रकार भगवपुरुषो की प्रकृति प्रसिद्ध हैं। अतएव यह सब प्रकृति के अनुसार है।

(१३)

विरक्तेः सौरम्यं वदनमभितो रूपमधिकम् ,
दधानं तं सन्तं नमति सहसा प्राकृतजनः ।
तथैवान्ये ते के विकृतमतयो ज्ञानिनमिमम् ,
नमेयुर्नैवं नो गमितमहिमानोऽमरमुनिम् ॥

अन्वयः—अयं प्रकृत्या प्रभावी वर्त्तते स्म—विरक्ते सौरम्यम् वदनम् अभितः अधिकं रूपं दधान सन्तं त (दृष्ट्वा) प्राकृतजन. (अपि) सहसा नमति । तथैव अन्ये ते के विकृतमतय· (स्यु) ये गमितमहिमानः सन्त. नः इम ज्ञानिनम् अमरसिंह मुनिम् एव न नमेयुः ।

अर्थ—आप प्रकृति प्रभावी थे—विरक्ति के सौरम्य मुख के चारो और अधिक रूप को धारण किए हुए उन सन्त महाराज को देखकर अल्पज्ञ मनुष्य भी एक साथ नमन करने लगता है । फिर उसके समान दूसरे वे कौन विकृतबुद्धि के हो सकेंगे, जो अपने को भुलाकर हमारे इन ज्ञानी मुनि श्री अमरसिंहजी महाराज को ऐसा नमन न करे । अर्थात् उनको देखते ही सभी नमन करने लगते थे ।

(१४)

बुभुक्षून् मांसस्य प्रतिदिनमतः प्रेमवचनैः ,
स्वकीये व्याख्याने दिशति रसपृक्तैर्मुनिरयम् ।
यदा त्वन्नेनैवं भवति भवतां पूर्णमुदरम् ,
किमर्थं हन्यन्ते पुनरिह तदा मूकपशवः ॥

अन्वयः—अस्मिन् प्रान्ते मासाशन स्वभावतोऽधिक कुर्वन्तीत्यत. अय श्रीमान् अमरसिंहः मुनि. स्वकीये व्याख्याने मासस्य बुभुक्षून् जनान् रसपृक्तै. प्रेमवचनैः प्रतिदिनं दिशति, तद्यथा—यदा एवम् तु भवताम् उदरम् अन्नेन पूर्णं भवति, तदा पुन· इह मूकपशवः किमर्थं हन्यन्ते । अतो मूकपशूनां हिंसन निरर्थकमित्यर्थ. ।

अर्थ—इस प्रान्त मे मासाशन स्वभाव से अधिक करते है—अत आप श्री अमरसिंहजी मुनिराज अपने व्याख्यान मे मास के बुभुक्षुमनुष्यो को करुणार्द्र प्रेम के वचनो से प्रतिदिन उपदेश करते थे, जैसे कि जव इस प्रकार आपका पेट अन्न से भर जाता है, तव फिर यहाँ वेजुवान जानवरो को किसलिए मारा जाता है । इसलिए मूक पशुओ की हिंसा निरर्थक है । धर्म की दृष्टि से तो कितना पाप है, वह तो फिर कहने की वात ही क्या ? अभी तो व्यवहार मे ही, यह मासाशन वेकार है ।

(१५)

भ्रमन्तीमे सन्तः परमशुचितां वृत्तिमभितः ,
ग्रहीतुं कर्त्तुं वा प्रतिगृहमतस्ते निरलसाः ।
अनाच्छन्नं मांस नयति मुदितः कोऽपि सरणौ ,
नमन्तं तं दृष्ट्वा द्रवितहृदया दुःखमनयन् ॥

अन्वय—यदा इमे सन्त. परमशुचिताम् वृत्तिम् अभितः कर्त्तुं वा ग्रहीतु ते निरलसा अत प्रतिगृह भ्रमन्ति। किन्तु कोऽपि सरणौ मुदितः अनाच्छन्न मास नयति, (मुनीश्चासौ नमति), तदा त नमन्त दृष्ट्वा द्रवित हृदया. (मुनय) दु खम् अनयन्।

अर्थ—जव ये सन्त परम प्रासुक भिक्षावृत्ति को इधर-उधर करने अथवा ग्रहण करने के लिए इससे घर-घर घूम रहे थे। कि इतने ही मे कोई रास्ते मे प्रसन्न हो, विना ढके हुए मास को ले जा रहा था, (किन्तु उसने मुनियो को नमन किया), तव उस नमन करते हुए को देखकर कोमल हृदय के मुनिजन दु खी हुए कि यह कितना अवोध है। किन्तु विनयी है।

(१६)

न हेतुं हिंसायाः कमपि मनुते प्राकृतजनः ,
परन्त्वेतत्तथ्यं प्रियतममम्ं पुत्रमवितुम् ।
सहस्रं यत्नेभ्यो हितमुपगतो याति रचितुम् ,
अतो नित्यं सत्यं गणयति सुखं स्वार्थसहितम् ॥

अन्वयः—मनुष्योऽयं कियान् स्वार्थी विद्यते– प्राकृतजन. हिंसाया. कमपि हेतु न मनुते, किन्तु अमु प्रियतमम् पुत्रम् अवितुम् हितम् उपगत· (असौ प्राकृतजन.) सहस्रं हित यत्नेभ्य रचितुम् याति। अतः मनुष्य. स्वार्थसहित सुख गणयति–एतत् नित्यम् सत्य निश्चीयते।

अर्थ—मनुष्य कितना स्वार्थी है—अवोध मनुष्य हिंसा का कोई कारण नही मानता, किन्तु अपने इस परमप्रिय पुत्र की रक्षा के लिए हितैषी वनकर वही अल्पज्ञ, हजारो हित यत्नो को कर-करके प्रस्तुत होता हैं, जैसे कि कोई हानि न पहुँचे। किन्तु दूसरो की जान लेता है। यह कितना वडा अनर्थ है। आखिर वह भी तो किसी का पुत्र है। इससे यह नित्य सत्य निश्चित होता है कि मनुष्य स्वार्थ के साथ सुख मानता है, पर हित अथवा हिंसा को वह कुछ नही समझता।

(१७)

ततोऽनुग्रामं ते प्रतिपदमतिक्रम्य सहसा ,
समागच्छन्नेतेऽमृतसरमिति ख्यातनगरम् ।
मुनीनामायानं श्रवणमधिगच्छन्ति शुभगम् ,
तदा ये भद्रास्ते सुलभसमया यान्त्युपमुनि ।।

अन्वयः—तत. ते मुनयो गुरुदेव पुरस्कृत्य अनुग्राम सहसा प्रतिपदम् अतिक्रम्य एते अमृतसरम् इति ख्यातनगर समागच्छन् । तदा ये भद्रा मुनीनां शुभगम् आयानम् श्रवणम् अधिगच्छन्ति, ते सुलभसमयाः उपमुनि यान्ति ।

अर्थ—तदनन्तर वे मुनिजन गुरुदेव को पुरस्कृत कर ग्राम के वाद ग्राम, स्थान-स्थान पर पारकर एकसाथ प्रसिद्ध अमरसर पहुँचे । मुनियो के शुभ आगमन को जो श्रावक सुनते हैं, वे समय प्राप्त कर मुनियो की सेवा मे उपस्थित होते हैं ।

(१८)

त्रिकृत्वस्ते नन्तु प्रतिमुनि विभक्ताः प्रतिपदम् ,
समायाता भक्ताश्चिरपरिचितं तं मुनिगणम् ।
सुखं शान्ति पृष्ट्वाऽभिदधति पुनश्चातिविनयम् ,
महान्तः पद्यन्ते विनयरसिका लोकसरणिम् ।।

अन्वय—सम्प्रति भक्ता विभक्ता. सन्त प्रतिमुनि । प्रतिपद त्रिकृत्व. नन्तु समायाता., (ततश्च ते त चिरपरिचित मुनिगण सुख च शान्ति पृष्ट्वा पुन अतिविनयम् अभिदधति । (यतो हि) महान्त विनयरसिका सन्तः लोकसरणिं पद्यन्ते ।

अर्थ—अव भक्त विभक्त होकर मुनि-मुनि की ओर स्थान-स्थान पर वारत्रय अभिवादन करने के लिए उपस्थित हुए । और फिर सुख-शान्ति की पिपृच्छा कर फिर अतिविनय के साथ वातचीत करने लगे । क्योकि वड़े मनुष्य विनय के प्रेमी वनकर ससार की रीति को निभाते हैं ।

(१९)

समागत्य स्थानं कृतवसतयो ज्ञानिमुनयः ,
भवन्ति प्रष्टव्या प्रतिपुरजनं ते रमयितुम् ।
समूलं निर्मिथ्यं स्वमति परिणामावधि ततम् ,
समीक्ष्यान्तस्तत्त्वं विनिदधति सत्यं हृदि हृदि ।।

अन्वयः—विहारिणो मुनय —स्थान समागत्य कृतवसतय. ज्ञानि-मुनयः (विराजन्ते) तदा ते प्रष्टव्या भवन्ति। ते ज्ञानिनः (प्रश्ने सति) स्वमतिपरिणामावधि समूल निर्मिथ्य ततम् अन्तस्तत्त्व समीक्ष्य प्रतिपुरजन रमयितु सत्य हृदि हृदि विनिदधति।

अर्थ—विहरणशील सभी मुनि—स्थानक पहुँचकर जब विश्राम करने वाले ज्ञानी मुनिराज विराजते हैं, तब वे जिज्ञासुओ के द्वारा प्रष्टव्य होते हैं। वे ज्ञानिजन प्रश्न होने पर अपनी बुद्धि के निचोड तक सिद्धान्त के अनुसार मिथ्यारहित विस्तृत रहस्य की समीक्षा कर प्रत्येक नागरिक को आनन्दित करने के लिए सत्य को सभी के हृदय मे पूरी तरह जमा देते हैं।

(२०)

यदा चेहायातान् समधिगतसद्धर्मविषयान् ;
जनानुद्बोद्धुं ते मतविमतयुक्तया प्रभवितुम् ।
समर्था एतेभ्योऽपि च तु परितोषं न ददति ,
तदा तान् सन्तोष्टुं मुनिरमरसिंहः प्रभवति ।।

अन्वयः—यदा च ते मुनय इह आयातान् समधिगतसद्धर्मविषयान् जनान् मतविमतयुक्तया प्रभवितु समर्था अपि, (तान् च प्रभवितु) तु एतेभ्यः परितोषं न ददति, तदा (स्वयम्) अमरसिंह. मुनि तान् जनान् सन्तोष्टु प्रभवति।

अर्थ—और जब वे मुनिजन यहाँ आये हुए धर्म के जानकार मनुष्यो को मत और विमत की युक्ति से प्रभावित करने के लिए समर्थ होते हुए भी उनको प्रभावित करने के लिए उनको परितोष न दे सके, तब स्वय श्रीअमरसिंह जी मुनिराज उन प्रश्नकर्त्ता अथवा जिज्ञासु मनुष्यो को सन्तुष्ट करने के लिए प्रभाव डालते हैं। परिणामत. वे मनुष्य सन्तुष्ट होकर मुनिश्रीजी की वाह-वाह करते हैं।

(२१)

निरस्तास्ते सर्वे सकलविकलोक्तेर्विचलिताः ,
समागत्य ज्ञातुं नियमसहितं पद्धतियुतम् ।
विधिं संप्रेहन्ते प्रथितनियमातर्कितविधेः ,
मुनेर्विद्यासिद्धेरमरसिंहादविरतम् ॥

अन्वयः—यदा सकलविकलोक्तेः विचलिता ते सर्वे निरस्ताः, (तदा ते) स्थानकं समागत्य प्रथितनियमातर्कितविधेः विद्यासिद्धे मुनेः अमरसिंहात् नियमसहितं पद्धतियुतं विधिम्-अरम् ज्ञातुम् सप्रेहन्ते ।

अर्थ—जब सभी विकलोक्ति से विचलित वे उत्तरों से निरस्त हो गए तब स्थानक आकर प्रख्यात नियमों से अच्छी तरह जानली गई है विधि जिसकी ऐसे विद्यासिद्ध मुनि श्रीअमरसिंहजी महाराज से नियम सहित पद्धति के साथ विधि को शीघ्र जानने के लिए बराबर चेष्टा करते हैं ।

(२२)

स्वदोषं संस्मृत्य प्रथितमहिमानं मुनिममुम् ,
नमन्ति स्पन्दन्ते विनयजयिनंसस्मितमुखम् ।
कराभ्यां प्रत्येकं चरणकमलेतस्य च मुनेः ,
स्वतः संस्पृश्येमे विनतवदनास्ते पदमितः ॥

अन्वयः—ततस्ते जिज्ञासवः—विनतवदना सन्तः स्वदोषं संस्मृत्य अमुम् प्रथितमहिमानम् विनयजयिनं स्मितमुखं मुनिम् प्रत्येकं कराभ्याम् तस्य मुनेः चरणकमले संस्पृश्य नमन्ति, इमे च (पुनः) ते स्वतः इतः पदम् स्पन्दन्ते ।

अर्थ—तदनन्तर वे जिज्ञासु लज्जित होकर अपनी भूल को स्मरण कर उन परम प्रसिद्ध महाविनयी मुस्कराते हुए मुनि को, और प्रत्येक ने हाथों से इन मुनिजी के चरणकमलों को छू कर नमन किया, और फिर ये अपने आप यहाँ से चल दिए ।

(२३)

पुनस्ते तर्कन्ते मुनिरयमतो भाविनि युगे ,
महानाचार्यः स्यात् परमयशसा दिव्यवदनः ।
अवश्य स्यादेतद् भवति मनसश्शङ्कितमिदम् ,
यतो भावी वृक्षो जगति परमश्चिक्कणदलः ॥

अन्वयः—गच्छन्तस्ते पुन. तर्कन्ते यद् भाविनी युगे परमयशसा दिव्यवदन अय मुनि महान् आचार्य स्यात् । इदम् मनसः शङ्कितम् अवश्यम् भवति, अत एतत् स्यात् यत. जगति भावी वृक्ष. परम. चिक्कण-दल. (भवति) ।

अर्थ—जाते हुए वे फिर तर्क करने लगे कि आने वाले युग मे अनेक कीर्त्तियो से उपलक्षित दिव्य वदन महान् आचार्य आप ही होगे । क्योकि यह मनका सोचा हुआ अवश्य होता हैं, अत ऐसा अवश्य होगा । क्योकि ससार मे होनहार वृक्ष के बड़े चीकने पत्ते होते हैं ।

(२४)

स्वकीयैः सिद्धान्तैर्विविधविषयभ्रान्तिरहितान् ,
अनुष्ठातुं सिंहः कृतपरिचयान् प्रायतत स. ।
तदोद्बुद्धा जैना अतिशयितवृत्ति मुनिमिमम् ,
विवृद्ध्यै सयोक्तुं समुचितमुपाय विदधति ॥

अन्वयः—स (असरसिंह) सिंहः स्वकीयै. सिद्धान्तै. कृतपरिचयान् विविधविषय-भ्रान्तिरहितान् अनुष्ठातु प्रायतत । तदा उद्बुद्धा जैना. इमम् अतिशयितवृत्ति मुनि विवृद्धयै सयोक्तु समुचितम् उपाय विदधति ।

अर्थ—वे सिंहसदृश श्री अमरसिंह जी महाराज, अपने सिद्धान्तो से जाने-पहिचाने भाइयो को अनेक विषयो की भ्रान्ति रहित बनाने के लिये प्रयत्न करते थे । तब जगे हुए जैन बन्धु इन विशिष्टवृत्ति के मुनिजी की अभिवृद्धि के लिए सयोग की उचित तरकीब सोचने लगे ।

(२५)

समुद्भूता भावा प्रकटमुदयं लब्धुमधिकम् ,
अतोऽहं मे मन्ये मनसि नियतं ते कमपि तम् ।
यदाधारं मत्वा मुनिममरसिंहं व्युपगताः ,
मुनिं ते शोभन्ते पुनरिममहो शोभयितु मे ॥

अन्वयः—साम्प्रत कवि. मुनिमुत्प्रेक्षते सर्वगुणाधारमत —अहम् मे मनसि नियत मन्ये यत् भावा अधिक प्रकटम् उदयम् लब्धुम् समुद्भूताः, तदा ते तम् कमपि आधार मत्वा, (तदा) अमरसिह मुनि व्युपगताः । (तस्य मुनेराश्रयात् ते तु शोभन्ते, किन्तु अहो ए, एते ते भावा (गुणा) पुनः इम मुनिम् (अपि) शोभयितु (सन्ति) ।

अर्थ—अब कवि मुनिजी को सर्वगुणसम्पन्न हो ऐसी उत्प्रेक्षा करता है—इसलिए वह कहता कि मैं अपने मन मे पक्की तरह से मानता हूँ कि भाव अर्थात् गुण जब अधिक प्रकट उदय प्राप्त करने के लिए उठ खडे हुए, तब उन्होने किसी को आधार मानने के लिए मुनि श्री अमरसिंह जी को आधार बना लिया । क्योकि बिना आधार के गुण शोभा नही पाते । अतः मुनिजी के आश्रय से वे गुण तो स्वय शोभा पा रहे हैं, किन्तु कृतज्ञ गुण, मुनिजी को अहो ए शोभित कर रहे है ।

(२६)

अहो सम्प्रत्येव प्रकृतिविषमो रोग उदित. ,
गुरुं तं क्लिश्नाति प्रकृतविदितैः कर्मभिरिमम् ।
तदा ते सेवन्ते विपदमधिगम्यापि मुनयः ,
विहाय स्वालस्यं सततनियतं दु·खितममुम् ॥

अन्वयः—विहारसमय एव सम्प्रति, अहो प्रकृतिविषमः रोगः प्रकृतविदितै कर्मभि उदित तम् इमम् श्री लालचन्द्र मुनिम् गुरुं क्लिश्नाति । तदा ते मुनयः (ये शिष्या आसन्) स्वालस्य विहाय विपदम् अधिगम्य अपि अमुम् दु खित गुरुं सततनियत सेवन्ते ।

अर्थ—विहार के समय मे ही अब अहो प्रकृति से भयङ्कर रोग, प्रकरणो से जाने गए कर्मो के द्वारा उदित होकर, उन गुरु श्री लालचन्द्र जी महाराजश्री को क्लेश पहुँचाता है । तब आपके वे शिष्य मुनिजन कष्ट सहन करके भी अपने आलस्य को छोड़कर इन दु खित गुरुदेव की निरन्तर निश्चय के साथ सेवा करते हैं ।

(२७)

यदा रोगोत्पत्तिर्भवति समये केऽपि च तदा ,
भवेयुस्ते नित्यं स्थितिविचलिताः सन्ति पुरुषाः ।
स्थिरास्तिष्ठन्त्येमे नियतमतयो नश्च मुनयः ,
परन्त्वेते सन्तोऽभिदधति सदा मङ्गलपदम् ॥

अन्वय—सेवानिमग्ना सन्त. कीदृशा दृढा सन्ति—इति वर्णयन्नाह-समये यदा रोगोत्पत्ति भवति, तदा ते केऽपि भवेयु, नित्य पुरुषा स्थितिविचलिता सन्ति। (किन्तु) इमे न. नियतमतय. मुनयः स्थिरा तिष्ठन्ति न केवल ते स्थिरा एव) परन्तु (आगच्छतो जनान्) सदा एते सन्त मङ्गलपदम् अभिदधति ।

अर्थ—सेवा निमग्न सन्त कितने दृढ हैं—यह बताते हुए—कवि कहता है कि—कभी जब रोग की उत्पत्ति होती है, तब ये कोई भी क्यो न हो, नित्य ही पुरुष स्थिति से विचलित हो जाते हैं। किन्तु ये हमारे मुनिजन पक्के इरादे के साथ निश्चल खडे रहते है। न केवल वे निश्चल खडे ही रहते हैं, परन्तु आगत मनुष्यो को निरन्तर ये मुनिजन मागलिक भी सुनाते रहते हैं।

(२८)

पुनर्ज्ञात्वा रोगं परमविकटं वैद्यमुखतः ,
ततः कष्टं वोढुं श्रयति सततं कर्मफलकम् ।
मुनिष्वेकः प्रष्ठो दिशति मरणान्तं व्रतमिदम् ,
अतो यावज्जीवं त्यजति गरणञ्चाशनमयम् ॥

अन्वय—पुन वैद्यमुखत. परमविकट रोग ज्ञात्वा कर्मफलक कष्ट वोढु सतत श्रयति। तत मुनिषु एक प्रष्ठ इदम् व्रतम् मरणान्त सथारेति ख्यात दिशति। अत. (अधुना) अय मुनि श्रीलालचन्द्र. गरणम् अशनञ्च यावत् जीव त्यजति।

अर्थ—फिर वैद्य के मुख से परम विकट रोग को जानकर कर्मफलवाले कष्ट को सहने के लिये सदा के हेतु सहारा लिया। तदनन्तर सथारा पचखने के लिये मुनिओ मे से किसी वरिष्ठ मुनि को बुलाया और यह मरणान्त व्रत मुनिश्री लालचन्द्र जी महाराज ने स्वेच्छा से धारण किया। व्रत का स्वरूप यह है कि व्रती पुरुष खाना पीना यावत् जीवन के लिये छोड देता हैं। अतः उन्होने निगरण, (पान) और अशन का यावज्जीवन के लिये प्रत्याख्यान कर दिया।

(२९)

ततश्चैते शिष्या गुरुवरमिमं सम्प्रति परम् ,
स्वत: सेवन्ते तं परमपदलब्धारमनिशम् ।
तदेतन्माहात्म्यं सकलभुवने केवलमत. ,
मुनीनां जैनानां स्वयमतिशयं साधयति यत् ॥

अन्वयः—तत. एते मुनेः शिष्या. मुनय. सम्प्रति इमम् तम् परमपदलब्धारम् गुरुवरम् स्वतः अनिशं पर सेवन्ते। अतश्चजैनानाम् मुनीना केवलम् एतत् तत् संस्तारग्रहणात्मक माहात्म्यम् यत् स्वयम् अतिशय साधयति। स्वभावतस्त जैनमुनयो मूर्धन्या. सन्त्येवेत्यर्थ ।

अर्थ—सथारा पचखने के वाद मुनि महाराज के शिष्य मुनिजन इन परमपद को प्राप्त करने वाले गुरुदेवश्री की अपने आप निरन्तर खूब सेवा करते है। क्योकि जैन मुनियो का केवल यही माहात्म्य सर्वमहान् सिद्ध कर देता है। वैसे तो जैन मुनियो के कार्य इस प्रकार के हैं कि जो उनको मूर्धन्य सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं—यह व्यङ्ग्यार्थ है।

(३०)

अतस्तत्संस्तारात् प्रथममभितः स्वामिनममुम् ,
समाहूयाष्टाङ्ग प्रथितमहिमानं समरसम् ।
प्रभान्तं त्वाचार्य्यं शुभममरसिंहं गुरुरयम् ,
व्यधादाधारादि मरुधरधरोद्धारकमिमम् ॥

अन्वयः—अतः सस्तारात् अभित प्रथमम् अमुम् समरसम् अष्टाङ्ग-प्रथितमहिमानं प्रभान्त स्वामिनम् शुभम् अमरसिंहम् समाहूय गुरु. अयम् इमम् (अमरसिंहम्) आधारादि मरुधरधरोद्धारकम् आचार्यम् व्यधात्।

अर्थ—अत. सस्तारग्रहण से पहले ही इन समरस अष्टाङ्गप्रथित महिमावाले प्रभावी मुनि श्री अमरसिंहजी को बुलाकर इन गुरुदेव श्री लालचन्द्रजी महाराज ने इनको मूलरूप मारवाड़ भूमि के उद्धारक आचार्यपद से अलंकृत कर दिया था।

(३१)

समे श्रीसंघास्तं समयमधिकृत्यातिशयितम् ,
मुनीनामाचार्यं शुभममरसिंहं गुरुवरम् ।
महाज्योतिष्मन्तं परमगरिमाणं प्रतिपदम् ,
वहन्त श्रीमन्तं विदधति सपर्यां सुनुतिभिः ॥

अन्वय.—तदनन्तर समे श्रीसघा समयम् अधिकृत्य अतिशयितम् महाज्योतिष्मन्तम् गुरुवरम् मुनीनाम् आचार्य्यम् शुभम् परमगरिमाण प्रतिपद वहन्त श्रीमन्तम् अमरसिंहम् सुनुतिभि. सपर्याम् विदधति ।

अर्थ—तदनन्तर सब श्रीसघो ने समयानुसार अतिशयी महाज्योतिष्मान् गुरुदेव मुनियो के आचार्य शुभ परमगौरवशाली श्रीमान् अमरसिंहजी महाराज का वास्तविक स्तुतियो से सत्कार किया गया ।

(३२)

ततोऽसावाचार्यः परमविनयी संघसदृशम् ,
क्रियाचारोत्पन्नं व्यवहृतिसमं सव्यवहरन् ।
अवादीत्प्रत्यग्रं श्रवणरसपीयूषवचनम् ,
प्रकीर्णं व्याख्यानं हृदयकमलं द्योतितुमलम् ॥

अन्वयः—ततः परमविनयी असौ श्रीमान् अमरसिंह आचार्य व्यवहृतिसमम् क्रियाचारोत्पन्न सघसदृश सव्यवहरन् हृदयकमलम् अल द्योतितुम् प्रत्यग्र श्रवणरसपीयूषवचनम् प्रकीर्ण व्याख्यानम् अवादीत् ।

अर्थ—श्रीसघो के द्वारा आदर किए जाने पर परमविनयी उन श्रीमान् अमरसिंहजी आचार्य ने व्यवहार के समान क्रियाचार से उत्पन्न सघ के अनुकूल व्यवहार करते हुए, जनता के हृदय-कमल को पूर्ण विद्योतित करने के लिए नया कानों के लिए रसामृत वचन वाला बिखरा हुआ व्याख्यान, जिसमे थोडा-थोडा सभी बातों पर प्रकाश डाला गया था, दिया ।

(३३)

सहैवैतत्प्रोक्तं यदि परिणमेन्मङ्गलमयम् ,
शुभाचार्यत्वं मे फलति शुभगं श्रावकजनम् ।
तदामन्वीयाह यदिह घटितं गौरवपदम् ,
अहिंसा मातेयं विलसति यदा मङ्गलमयी ॥

अन्वयः—व्याख्यानेन सह एव एतत् अपि प्रोक्तम् यदि मे शुभाचार्यत्व फलति, तदा श्रावकजनम् मङ्गलमयम् शुभगम् परिणमेत् । यदिह गौरवपद घटित विद्यते, अह तदा गौरवपद घटित मन्वीय, यदा मङ्गलमयी इयम् अहिंसा माता विलसति ।

अर्थ—व्याख्यान के साथ ही यह भी वताया कि मैं मेरे इस आचार्यत्व को सफल तव समझूंगा, जवकि मेरा श्रावकसमुदाय आनन्दित और सव के लिए भला साबित हो । और गौरव पद जो घटित है, उसको गौरवपूर्ण तभी मानूंगा, जव कि सव जगह मङ्गलमयी यह अहिंसा माता विद्यमान रहे ।

इति श्रीमता राजस्थानकेसरिणा पण्डितरत्नेन
उपाध्याय पदालङ्कृतेन पुष्करमुनिना विरचिते
श्रीमदाचार्यामरसिंह महाकाव्ये
पञ्चम सर्गः



षष्ठः सर्गः

(१)

सदैवैतद् दृष्टं जगति परमं चित्रजनकम् ,
यदा किञ्चिद् भिन्नं भवति जगतः कृत्यसरणेः ।
तदा युक्तं कर्त्तुं परमपुरुष कोऽपि यतते ,
विधत्ते पन्थानं विषमपि सुगं प्राक्तनमसौ ॥

अन्वयः—जगति सदा एव अस्माभिः एतत् परम चित्रजनक दृष्ट विद्यते, यत् यदा जगत कृत्यसरणेः भिन्न (कार्य्यं) भवति। तदा कोऽपि परमपुरुष युक्त (कार्य्यं) कर्त्तुं यतते। असौ (एव) प्राक्तन विषमम् अपि पन्थान सुग विधत्ते।

अर्थ—ससार मे सदा ही हमने ऐसा परम आश्चर्यजनक देखा है कि जब ससार की कृत्य-सरणि से पृथक कार्य होता है, तब कोई न कोई महापुरुष (आता है) और उचित कार्य करने के लिए काम करता है और वही सदातन के विषम मार्ग को भी सुगम कर देता है।

(२)

अतोऽय दिव्यात्मा मुनिषु विरलो लोकमहितम् ,
सदालोकं ज्ञान वितरति विहातुं जगदिदम् ।
स्वतश्च ज्ञप्तोक्तं व्युपदिशति धर्मं समुचितम् ,
महान्तः सन्तस्ते परहितरताः केवलमलम् ॥

अन्वयः—अत अय मुनिषु विरल दिव्यात्मा (अमरसिंह आचार्य) इद जगत् विहातु सदालोकं लोकमहित ज्ञानम् वितरति, स्वतश्च समुचित ज्ञप्तोक्त धर्मं व्युपदिशति। यतो हि केवल महान्त सन्त ते परहितरता अलम् (भवन्ति)।

अर्थ—इसलिए ही ये मुनिविशिष्ट दिव्यात्मा आचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज इस ससार को छोडने के लिए सत्प्रकाश लोकपूज्य ज्ञान का वितरण करते थे। और अपने आप समुचित ज्ञप्तोक्त धर्म का उपदेश करते थे। क्योकि केवल महान् सन्त ही वे हैं जो सदा परोपकार मे ही लगे रहते हैं।

सर्गेऽस्मिन्नपि 'शिखरिणी' छन्द एवास्ति। लक्षणतु पूर्वमुक्तमेव।

(३)

सुपुत्रा जायन्ते जगति सततं मङ्गलभुव· ,
दधत्येते चान्यत् विहितसदृशं कर्म लपितुम् ।
परन्त्वेतेभ्योऽन्यं सुगुणगरिमाण प्रभवितुम् ,
महापुण्यात्मानं सृजति जननी सूनुमपरम् ।।

अन्वयः—एवन्तु-जगति मङ्गलभुव सुपुत्रा सतत जायन्ते, एते च विहितसदृश लपितु अन्यत् कर्म दधति, परन्तु एतेभ्य. अन्यम् सुगुणगरिमाण प्रभवितु (काऽपि विरला) जननी एव अपरं महापुण्यात्मानं सून सृजति ।

अर्थ—ऐसे तो जगत् मे श्रेष्ठ सुपुत्र निरन्तर उत्पन्न होते हैं, और वे धार्मिक कर्म जैसा कहने भर के लिए दूसरा कार्य भी करते हैं, किन्तु इन सब से पृथक् सुगुणो के गौरव को बढाने के लिए कोई विरल माता ही अद्वितीय महापुण्यात्मा पुत्र को जन्म देती है ।

(४)

ततश्चाचार्योऽयं विहरति सदा संघमहितः ,
प्रतिग्रामं चैवं सकलमुनिभिः साकमपरान् ।
जनानायातान् य. प्रतिदिशमसौ सोमसदृशः ,
सदुद्देश्यं वाक्यं निगदति मुदा स्नेहसरसम् ।।

अन्वयः—ततश्च सदा सघमहित अयम् आचार्य अमरसिंहः सकल-मुनिभि साक प्रतिग्राम विहरति । एवञ्च य सोमसदृश. असौ प्रतिदिशम् अपरान् आयातान् जनान् मुदा स्नेहसरसम्-सदुद्देश्यं वाक्य निगदति ।

अर्थ—और फिर सदा सङ्घपूज्य ये आचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज अपने सभी मुनियो के साथ ग्राम-ग्राम मे विहार करते थे । इसी प्रकार जो चन्द्र जैसे वे आचार्य महाराज भिन्न-भिन्न दिशाओ से आए हुए दूसरे मनुष्यो से हर्ष के साथ प्रेम-स्निग्ध अच्छे उद्देश्य के साथ बात-चीत करते थे ।

(५)

नितान्तं सौभाग्य मनसि मनुजा भक्ति विभवाः ,
मुनीनां मन्यन्ते निलयवसिता दर्शनमपि ।
वयं कुर्म श्रुत्वा जगति कृतपुण्या अत इति ,
ततश्चान्ये द्रष्टु जहति शरणं तान् मुनिवरान् ।

अन्वय—भक्तिविभवा मनुजा. मनसि नितान्त सौभाग्य मन्यन्ते, यद् निलयवसिता अपि मुनीना दर्शन कुर्म, अतः वयं कृतपुण्या. स्म. इति श्रुत्वा ततश्च अन्येऽपि मनुजा तान् मुनिवरान् द्रष्टु शरण जहति ।

अर्थ—भक्ति है विभव जिनकी अर्थात् भक्त मनुष्य मन मे परम सौभाग्य मानते हैं कि घर बैठे ही आए हुए मुनियो के दर्शन कर रहे है, अत हम भाग्यशाली है—यह सुनकर तब और दूसरे भी मनुष्य उन मुनियो को देखने के लिए घर छोड रहे हैं ।

(६)

दिदृक्षून् दृष्ट्वा तानथ परिचितांश्चापरिचितान् ,
स्वतः शिक्षां दातुं परममरसिंहः करुणया ।
अहिंसायाः सारं सरसवचनैः संगदितवान् ,
विहातुं ते हिंसामभिदधति शब्दैरनुमतिम् ॥

अन्वयः—परिचितान् अपरिचितान् तान् दिदृक्षून् दृष्ट्वा अथ अमरेपुंसिंह स अमरसिंह आचार्य स्वतः शिक्षा दातु करुणया अहिंसाया पर सार सगदितवान् । (तत सार श्रुत्वा) ते दिदृक्षव हिंसा विहातु शब्दैः अनुमतिम् अभिदधति । यथा अत. पर वय हिंसा नाचरिष्याम इति ।

अर्थ—परिचित और अपरिचित उन दर्शनार्थियो को देवताओ मे सिंह के समान वे अमरसिंहजी आचार्य अपनी ओर से शिक्षा देने के लिये करुणा के कारण अहिंसा के वास्तविक रहस्य को सम्यक्रूप मे बताने लगे । तदनन्तर रहस्य सुनकर वे सभी दर्शनार्थी मनुष्य शब्दो के द्वारा अनुमति प्रकट करने लगे, जैसे इसके बाद हम कभी हिंसा का आचरण नही करेंगे ।

(७)

विभिन्नग्रामेषु प्ररचितपथेषूपवसतौ ,
यथास्थानं स्थित्वा मुनिजनसमेतः स्वयमयम् ।
प्रदीप्तश्चाचार्यः प्रचरति शुभं शासनमिदम् ,
महावीरोपज्ञं परमपदमेतुं निरुपमम् ॥

अन्वयः—विभिन्नग्रामेषु प्ररचितपथेषु सत्सु विहरन् उपवसतौ यथास्थानं स्थित्वा अयं मुनिजनसमेतः प्रदीप्तः आचार्यः स्वयम् अमरसिंहः इदं शुभं महावीरोपज्ञं शासनम्, निरुपमम् परमपदम् एतुं प्रचरति ।

अर्थ—सुगम मार्ग वाले ऐसे अनेक ग्रामो के होते हुए विहार करनेवाले, उपाश्रय मे यथास्थान ठहर कर ये मुनिजन समेत तेजस्वी आचार्य स्वयं श्री अमरसिंहजी महाराज इस पवित्र, महावीर स्वामी के द्वारा बताए हुए शासन को निरुपम परमपद मोक्ष प्राप्त करने के लिए प्रचार करते थे ।

(८)

तदस्य प्रान्तस्य प्रथितनगरेषु प्रतिगृहम् ,
पदैः स्पृष्ट्वाचार्यो रचयति जनान् स्वाशयरतान् ।
प्रसन्नानाचार्यं प्रतिपदमतो नन्तुमधिकम् ,
समागच्छन्तीमे विनयविनताः श्रावकगणाः ॥

अन्वयः—तत् आचार्यः श्रीमान् अमरसिंहः अस्य प्रान्तस्य पञ्चापस्य प्रथितनगरेषु प्रतिगृहं पदैः स्पृष्टवा प्रसन्नान् जनान् स्वाशयरतान् रचयति । अतः इमे विनयविनताः श्रावकगणाः आचार्यं प्रतिपदम् अधिकं नन्तुं समागच्छन्ति ।

अर्थ—तत् पश्चात् आचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज इस पंजाब प्रान्त के प्रसिद्ध नगरो में घर-घर चरणो से स्पर्श कर प्रसन्न हुए मनुष्यो को अपने सिद्धान्त के प्रेमी बना लेते थे । इस कारण से ये परम विनीत श्रावकगण आचार्य महाराज को स्थान-स्थान पर अनेक बार प्रणाम करने के लिए उपस्थित हो उठते थे ।

(६)

प्रतिस्थान दृष्टवा नगरनगरं शोभिततरम् ,
विशालं शैलाभं गगनतलमालम्बिशिखरम् ।
यदृच्छासकाशं गतच्चिचलिषोऽसौ मुनिगणः ,
विहायेच्छां सम्यक् विरमति सुखं शाखिनिलये ।

अन्वय—सम्प्रति प्रतिस्थान विशाल शैलाभ गगनतलम् आलम्बि-शिखर शोभिततर नगर नगर दृष्टवा गतचिचलिष मुनिगण इच्छा सम्यक् विहाय शाखिनिलये यदृच्छासकाश सुख विरमति ।

अर्थ—सम्प्रति विहार करते हुए स्थान-स्थान पर विशाल पहाड़ जैसे आकाश को छूने वाली चोटियाँ हैं, जिनकी ऐसे बढिया से बढिया नगर के बाद नगर को देखकर थकने के कारण चलने की इच्छा समाप्त हो गई है, जिसकी ऐसा मुनिमण्डल इच्छा को एक तरफ कर पेडो के बने हुए घर पर मर्जी मुताबिक आराम के साथ विराम करने लगे ।

(१०)

प्रसङ्गादाचार्यः सहजिगमिषून् भक्तिविभवान् ,
जनानन्यान्वासौ उपदिशति यत् कर्म किमपि ।
असद्वा सच्चादो विदधतु कदा नापि सहसा ,
विमृश्यैवं कर्त्तॄन् वरयति पुनः श्री. स्वयमहो ।।

अन्वयः—प्रसगात् असौ आचार्यः अमरसिंह. सहजिगमिषून भक्ति-विभावान् जनान् अन्यान् वा उपदिशति यत् किमपि सत् असत् वा अद कर्म कदापि सहसा न विदधतु । यतो हि विमृश्य कर्त्तॄन् पुन. अहो श्रीः स्वय वरयति ।

अर्थ—प्रसङ्ग के अनुसार वे आचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज साथ चलने वाले भक्त पुरुषो को अथवा दूसरे उपस्थितो को उपदेश करते थे कि कोई भी कर्म फिर चाहे अच्छा हो अथवा बुरा हो कभी सहसा (विना सोचे-विचारे) न करो । क्योकि सोच-विचार कर कर्म-कर्त्ताओ को लक्ष्मी स्वय अपना लेती है ।

(११)

अनादृत्य ज्ञानं विदधति जनाः कार्यमपि किम् ,
विवेकाभावस्तान् नटयति जनान् कष्टनिकरैः ।
विमर्शान्निश्चेतुं प्रथममभितो ये सुनियतम् ,
यतन्ते जायन्ते फलमुपगतास्ते सुकृतिनः ॥

अन्वयः—पुनरपि स्वयमाचार्यस्तमेवार्थं विशदयति—ये जनाः ज्ञानम् अनादृत्य किमपि कार्यं विदधति, तान् जनान् विवेकाभाव कष्टनिकरै नटयति। अतः अभितः प्रथम ये जनाः विमर्शात् सुनियत निश्चेतु यतन्ते, ते सुकृतिनः फलम् उपगता. जायन्ते।

अर्थ—फिर उसी को प्रकारान्तर कहते हैं—जो पुरुप ज्ञान की उपेक्षा कर कोई कार्य करते हैं, उन पुरुषो को विवेकाभाव कष्टो से नचाता है। इसलिये जो सबसे पहले विमर्श को लेकर ठीक प्रकार से निश्चय करने के लिए काम करते है वे सुकृती पुरुप फल प्राप्त करते हैं। अर्थात् वे सफल होते हैं।

(१२)

विहारं कृत्वैवं नियत समये सर्वमुनयः ,
समागच्छन्त्येते गुरुवरममुं स्थानकमिमे ।
पुरस्कृत्यातस्ते नियमसहितं नित्यनियमम् ,
विधातुं चेष्टन्ते प्रतिदिनमथ ज्ञानमभित. ॥

अन्वयः—वर्षावासार्थम्—एते एव विहारं कृत्वा सर्वमुनय. इमे अमुम् गुरुवर पुरस्कृत्य स्थानक समागच्छन्ति। अथ अभितः ज्ञानम् ते नियम-सहितं नित्यनियमम् विधातु प्रतिदिन चेष्टन्ते ।

अर्थ—वपावासार्थ—ये इस प्रकार विहार कर सभी मुनि अपने गुरुदेवश्री को आगे रखकर स्थानक पहुँचे। तदनन्तर ज्ञानपूर्वक वे मुनिजन नियम सहित नित्य नियम को करने मे प्रतिदिन लगे रहते थे।

(१३)

चतुर्णां मासानां समयमधिगम्यैव मुनयः ,
व्यवस्थां कुर्वन्ति प्रतिदिनमिदं यातु नियतम् ।
जपस्तोत्रञ्चैतद् भवतु च गुरोः सत्प्रवचनम् ,
व्यवस्थातारोऽतो विदधति यथा बोधितमदः ॥

अन्वय.—मुनय एव समयम् अधिगम्य चतुर्णां मासाना व्यवस्था कुर्वन्ति, तद्यथा—प्रतिदिनम् नियतम् इद जपस्तोत्र यातु, गुरोश्च एतत् सत्प्रवचन भवतु – अत. व्यवस्थातार यथा बोधितम् अद. विदधति ।

अर्थ—मुनिजन ही समय के अनुसार चार मासो की व्यवस्था करते हैं, जैसे कि प्रतिदिन नियत जपोपवासादि हो और प्रतिदिन ही गुरुदेव श्री का सत्प्रवचन हो। इसलिए व्यवस्था करने वाले जैसा बताया गया, वही करते हैं ।

(१४)

चतुर्मासं यावत् प्रतिदिनमिमे ज्ञप्तनियमान् ,
विधीन्वाऽनुष्ठातुं किमिति मुनयः किन्तु भविकाः ।
समे धर्मिष्ठास्ते नियतसमय व्येतुमनिशम् ,
न ते चेच्छन्त्यन्ये कथमथ पुनः शक्नुयुरिमे ॥

अन्वय—चतुर्मास यावत् किमिति इमे मुनय ज्ञप्तनियमान वा विधीन् अनुष्ठातुम् (आसन्) किन्तु समे भविका धर्मिष्ठा ते अपि नियत-समयम् अनिश व्येतु न इच्छन्ति, तर्हि च अन्ये इमे नियतसमय व्येतुम् अथ कथ पुन शक्नुयु ।

अर्थ—चार मास पर्यन्त क्या ये ही मुनिजन ज्ञप्तनियमो को अथवा विधियो को करने के लिए थे ? किन्तु यहाँ के सभी धार्मिक पुरुष भी ऐसे थे कि वे नियत समय को निरन्तर खोने के लिए इच्छा नही रखते थे, तव फिर और दूसरे ये कौन होंगे जो कि यो ही कुछ कर-धर सकेंगे ! अर्थात् व्यर्थ समय खोने के लिए यहाँ कोई नही था ।

(१५)

तथापीमान् साधून् रमयति परं श्रावकगणः ,
यथेच्छं भिक्षेच्छून् प्रतिगृहमितः सङ्क्रमयितुम् ।
अनायासो रन्तुं जन इव जनान् प्रेरयति तान् ,
सुखेच्छाविश्रान्तान् सुनियतमुनीन् गन्तुमपथम् ॥

अन्वयः—शरीरयात्रार्थं मुनयोऽपि कल्पिता भिक्षामाचरन्ति, तथापि विनोदार्थं श्रावकगणः, इत. इमान् भिक्षेच्छून् साधून् यथेच्छं सङ्क्रमयितु प्रतिगृह परं रमयति, अनायासः जनः रन्तु जनान् अपथ गन्तु प्रेरयति इव, प्रतिगृहं गन्तु सुखेच्छाविश्रान्तान् सुनियतमुनीन् प्रेरयति ।

अर्थ—शरीरयात्रा के लिए मुनि भी कल्पनीय भिक्षा ग्रहण करते हैं, तथापि विनोद के लिए कोई श्रावकगण उपाश्रय से इन भिक्षेच्छु मुनिओ को यथेच्छ साथ ले चलने के लिए घर-घर पर विनोद करते है । अनायास कोई मनुष्य, विनोद के लिए मनुष्यो को अपथ की ओर प्रेरित करता है, टीक इसी तरह वह श्रावकगण भी प्रतिगृह जाने के लिए सानन्द विराजित प्रतिष्ठित मुनिओ को प्रेरित करता है । किन्तु कुछ भी मुनिजन तो नियमपूर्वक सूजती भिक्षा करते हैं, अत विनोदार्थ प्रेरणा से कुछ नही होता ।

(१६)

अतश्चैवं सर्वे विनयिमुनयो ज्ञप्तविहितम् ,
प्रवर्षावासं तं सुविधिसहितं ते कथयितुम् ।
समाप्य श्रीमन्तं गुरुममरसिंहं सविनयम् ,
अभिप्रायं स्वेषां प्रणयमभित संनिरगमन् ॥

अन्वयः—अत च एव त ज्ञप्तविहित सुविधिसहितं प्रवर्षावासं समाप्य ते सर्वे विनयिमुनयः श्रीमन्तम् अमरसिंह गुरु स्वेषाम् अभिप्रायं प्रणयम् अभित. सविनय कथयितु सनिरगमन् ।

अर्थ—और फिर उस ज्ञप्तविहित सुविधिसहित उत्कृष्ट वर्षावास को समाप्त कर वे सभी विनयी मुनिजन, श्रीमान अमरसिंहजी गुरुदेव को अपने अभिप्राय को प्रणयपुरस्सर विनय के साथ कहने के लिए चल दिए ।

(१७)

हसन्तस्ते सन्तः सततविनया यान्त्युपगुरु ;
समायातान् दृष्ट्वा गुरुरपि हसन् प्रष्टुमभितः ।
समुत्कोत्कण्ठां तां ज्ञपयति पुनस्तान् स्मितमुखम् ;
मनीषी तत्त्वज्ञो ज्ञपयितुमलं सिद्धमनसा ॥

अन्वयः—ते सततविनयाः हसन्तः सन्तः (यदा) उपगुरु यान्ति, (तदा) अभितः प्रष्टुम् समायातान् (मुनीन्) दृष्ट्वा हसन् गुरुः अपि तान् तां समुत्कोत्कण्ठा स्मितमुख ज्ञपयति। यतो हि तत्त्वज्ञो मनीषी ज्ञपयितु सिद्ध-मनसा अलम् (भवति)।

अर्थ—वे विनयी मुनिराज हँसते हुए जब गुरुजी के पास पहुँचते हैं, तब पूछने के लिए आए हुए मुनियो को देखकर हँसते हुए गुरुदेव श्री ने भी उस, उत्कण्ठितो की उत्कण्ठा मुस्कराने के साथ बतला दिया कि आप सब किस लिए आगे हैं। क्योकि तत्ववेत्ता ज्ञानी जान लेने के लिए अपने सिद्धि-प्राप्त मन से सर्वथा समर्थ होते हैं।

(१८)

अतस्ते सन्तस्तं प्रकटमभितः सद्गुरुमपि ,
स्वकीयाभिप्रायं ज्ञपयितुमलं व्यक्तवचसा ।
भवन्त्युत्प्रेक्षन्ते स्वपरमपरं सन्तमनिशम् ,
गुरुर्ज्ञानी बुद्ध्या प्रथयति फलं स्वेङ्गितसमम् ॥

अन्वयः—अतः ते सन्तः अपि तं सद्गुरुम् स्वकीयाभिप्राय प्रकटम् अभितः ज्ञपयितु व्यक्तवचसा अलं भवन्ति। (किन्तु ते शिष्यमुनयः) स्वपरम् अपर सन्तम् अनिशम् उत्प्रेक्षन्ते यद् (अस्माक गुरुः) ज्ञानी सन् बुद्ध्या स्वेङ्गितसम फलम् प्रथयति।

अर्थ—इसलिए वे मुनि भी अपने गुरुदेव को स्वकीय अभिप्राय प्रकट रूप में बताने के लिए स्पष्ट शब्दो मे साफ-साफ तत्पर हो गए। किन्तु वे शिष्यमुनि अपने से दूसरे सन्त को अपनी कल्पना के साथ कहते थे कि हमारे गुरुदेव अन्तर्यामी होकर बुद्धि के द्वारा अपने सोचे हुए के समान सब कुछ बता देते हैं।

(१९)

तदाचार्योऽयं तान् विदितमनसः स्पष्टवचसा ,
मुनीन् स्वाभिप्रायं विशदयति तं स्वीकृतिमयम् ।
विहर्त्तुं स्वच्छेच्छां भवदभिमतां मेऽभिलषिताम् ,
स्वयं जानन्त्वेतां कथमपि परां मा व्यवगमन् ॥

अन्वयः—तदा अयम् आचार्य. तान् विदितमनस. मुनीन् स्पष्टवचसा तं स्वाभिप्राय स्वीकृतिमय विशदयति । यद् विहर्त्तुं भवदभिमताम् एता स्वच्छेच्छा मे स्वयम् अभिलषिता जानन्तु, कथम् अपि (इमा) परा मा व्यवगन् ।

अर्थ—तव इन आचार्य श्री ने उन समझे हुए मुनियो को स्पष्ट वचन से उस अपने अभिप्राय को स्वीकृतिमय वताया कि विहार के लिए आपकी चाही हुई स्वच्छ इच्छा ही मेरी स्वय की इच्छा है—ऐसा इसको जानिए और किसी प्रकार से दूसरी इच्छा मत समझिए ।

(२०)

अतस्ते सन्तोऽमी स्वगतमभितो वक्तुमनसः ,
निवृत्ता. प्रासीदन् सममविकलं स्वाशयमिमम् ।
स्वतो व्यञ्जन्तीमे परमनुपमं चर्चितमितः ,
यतो वर्ण्येनालं गुरुरयमहोनो गुरुरयम् ॥

अन्वयः—अत· ते अमी सन्त. अभित स्वगत वक्तुमनस. निवृत्ताः प्रासीदन् । इमे इमम् स्वाशयम् अविकल समम् इत स्वत. चर्चितम् परम् अनुपमं व्यञ्जन्ति । यतः अहो न. अय गुरुः, गुरुः अयम्, वर्ण्येन अलम् ।

अर्थ—अत वे ही सन्त स्वगत को लेकर कहते-कहते वापिस आए और वहुत प्रसन्न थे । ये इस अपने आशय को पूरा का पूरा यहाँ अपने आप कहने को काफी अनोखा समझते थे । क्योकि हमारे गुरुजी महाराज तो वास्तव मे गुरुजी ही हैं, हम इस अर्थ को कहकर सावित नही कर सकते !

(२१)

ततस्ते पञ्चापं विहितविधयस्त्यक्तुमनसः ।
मुहूर्त्ते प्रस्थातुं गुरुवरनिदेशं प्रभवितुम् ।
प्रतीक्षन्ते कर्त्तुं सुविधिविहितं पात्रनिचयम् ,
समुद्धर्त्तुं वास. ग्रथनसहितं ग्रन्थनिवहम् ॥

अन्वयः—तत ते पञ्चाप त्यक्तुमनस. विहितविधय (मुनय.) सुविधिविहित पात्रनिचय कर्त्तुं वास. ग्रन्थनसहित ग्रन्थनिवहम् समुद्धर्त्तुं गुरुवरनिदेश प्रभवितु मुहूर्त्ते च प्रस्थातु प्रतीक्षन्ते।

अर्थ—तदनन्तर पजाव प्रान्त को छोडने की भावना वाले सर्व कार्य पूरा कर वे मुनिजन, भली प्रकार से जमाए जाने वाले पात्रो को सगृहीत करने के लिए, कपडो से लपेटने के साथ ग्रन्थो को ढोने के लिए, गुरुदेवश्री के निदेश को मूर्त्त रूप देने के लिए और मुहूर्त्त पर प्रस्थान करने के लिए प्रतीक्षा करने लगे।

(२२)

पुनश्चान्ते सन्तो विदितगुणभूमेः सुयमिनः ,
गुरोः सद्यः सिद्धेस्तमभिलषितं मङ्गलमयम् ।
पुरस्कृत्यादेशं परममहिते मङ्गलयुते ,
प्रयाणं प्रेक्षन्ते सुयशसि मुहूर्त्ते सशकुनम् ॥

अन्वयः—अन्ते च पुन ते सन्त विदितगुणभूमेः सुयमिन· सद्य' सिद्धेः गुरोः तम् मङ्गलमयम् अभिलषितम् आदेशम् पुरस्कृत्य परममहिते मङ्गलयुते सुयशसि मुहूर्त्ते. सशकुनम् प्रयाण प्रेक्षन्ते।

अर्थ—और फिर अन्त मे वे सभी सन्त, महागुणी सुसयमी सद्य सिद्धि वाले गुरुदेव के उस मङ्गलमय अभिलषित आदेश को पुरस्कृत कर परमादृत मङ्गल समेत प्रसिद्धि मुहूर्त्त पर सशकुन प्रयाण की तलाश करने लगे।

(२३)

पदातिं सङ्गन्तुं विदितयशसं शिष्यमुनयः ,
चतुर्णां मासानां गुरुवरमिमं ते सहचराः ।
व्रजन्तं चान्वीक्ष्य गमनसमये जानपदिका ,
तदोत्तिष्ठन्तेऽन्ते विदधति नतिं प्रेक्ष्य युगपत् ।।

अन्वय—चतुर्णां मासानाम् अन्ते गमनसमये ते सहचरा. शिष्य मुनय विदितयशस गुरुवर पदाति प्रेक्ष्य सङ्गन्तुम् उत्तिष्ठन्ते, तदा च जानपदिका (श्रावका अपि) इम व्रजन्तम् अन्वीक्ष्य युगपत् नतिं विदधति ।

अर्थ—चार मासो के अन्त मे प्रस्थान के समय पर वे सहचर शिष्य मुनिजन प्रख्यात गुरुदेव को पैदल चलते देखकर साथ चलने के लिए उठ खडे हुए। और तब जनपद-निवासी श्रावक भी आपश्री को पधारते हुए देखकर एक साथ नमन करने लगे।

(२४)

अथ स्वान्ते शुद्धः कृतसुविनतिः श्रावकगणः ,
महान्तं श्रीमन्तं महितमहिमानं सुमनसम् ।
गुरुं सिहाचार्यं गमयति कथां भक्तिसहिताम् ,
वयं सर्वे क्षम्याः प्रति किमपि जातं त्रुटिगतम् ।।

अन्वयः—अथ महितमहिमान सुमनस सिहाचार्यं महान्त श्रीमन्त गुरु प्रति कृतसुविनति. स्वान्ते शुद्ध श्रावकगण भक्ति सहिताम् कथा गमयति, (यत्) किमपि त्रुटिगतं जातं (भवेत्), (तर्हि) वय सर्वे क्षम्या· स्म. ।

अर्थ—विहार के समय—परमप्रसिद्ध प्रसन्नचित्त प्रशस्त आचार्य महान् श्रीमान् गुरुदेवश्री से भोले-भाले वे श्रावक भक्तिपूर्वक वात चलाकर वोले कि हम से यदि कोई भूल हुई हो तो हम सभी क्षम्य है। क्योकि हम अवोध हैं—यह व्यङ्ग्यार्थ है।

(२५)

दयालु. सिंहोऽसौ मुनिजनसनाथः सुसमये ,
स्वकीय प्रस्थानं सुविधिविहितं कर्त्तु मनिशम् ।
अवोचत् सर्वस्वं महितवचसां सातिशयितम् ,
मुनीनां जैनानां श्रमणशरणं मङ्गलवचः ॥

अन्वयः—तदा सुसमये स्वकीय सुविधिविहित प्रस्थानम् अनिश-कर्त्तुम् असौ मुनिजनसनाथ दयालु सिंहः महितवचसां जैनानां मुनीनां सातिशयितं सर्वस्व श्रमणशरण मङ्गलवच: अवोचत् ।

अर्थ – तब अच्छे समय पर अपने यथोचित प्रस्थान को निरन्तर बनाए रखने के लिए वे मुनिओ के साथ दयालु आचार्यश्री पूज्यवचन वाले जैनमुनियो का सर्वोत्कृष्ट सर्वस्व श्रमणशरण माङ्गलिक फरमाने लगे ।

(२६)

यथा मन्दं मन्दं वहति पवनो नन्दनवने ,
पुनर्नासारन्ध्रे सरति सुरभिः पुष्पसमये ।
तथा निस्स्वे विश्वे चलति दमन संघशरणः ,
मुनिष्वाचार्योऽसौ श्रमण-रमणो धोरणगुणः ॥

अन्वय.—सम्प्रति मुनयो गुरु पुरस्कृत्य शनै. शनै. प्रतिष्ठन्ते-नन्दन-वने यथा पवनः मन्द मन्द वहति, पुनः पुष्पसमये यथा सुरभि. नासारन्ध्रे सरति, यथा निस्स्वे विश्वे असौ मुनिषु आचार्य दमन. सघशरण. श्रमण-रमणः धोरणगुण सन् चलति ।

अर्थ—अब मुनिजन गुरुदेवश्री को आगे कर धीरे-धीरे प्रस्थान कर रहे है—इन्द्र के उद्यान नन्दनवन मे जैसे वायु मन्द-मन्द चलती और फिर महक वसन्त मे जिस प्रकार नाक के रन्ध्र मे धीरे-धीरे प्रवेश पाती हैं, उसी प्रकार असार ससार मे दमी, सघ के शरण, श्रमणो के आनन्ददाता, धोरणगुणवाले वे मुनियो मे आचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज धीरे-धीरे विहार कर रहे हैं ।

(२७)

अनुग्रामं गत्वा पुनरपि समे शान्तगतय. ,
कथंचिद् विश्रम्य प्रमुनय इमे तं परिचयम् ।
विबुद्ध्यान्ते तेभ्यो नियमसहितां वृत्तिमपराम् ,
विधाय ग्रामान्ते नियतमशनं यान्ति रचितुम् ।।

अन्वयः—ग्रामस्य पश्चात् ग्राम गत्वा समे इमे शान्तगतय प्रमुनय कथ चित् विश्रम्य, त परिचयं विबुद्ध्य, अन्ते तेभ्य. (श्रावकेभ्य) पुनरपि अपरा वृत्ति विधाय ग्रामान्ते नियतम् अशनम् रचितुम् यान्ति ।

अर्थ—ग्राम के वाद ग्राम का स्पर्श कर सव ये धीमी गति वाले प्रकृष्ट मुनिजन थोडा-वहुत विश्राम लेकर पूर्व परिचय को जानकर, अन्त मे उन श्रावको से ही दूसरी गोचरी कर ग्राम के वाहिर नियत अशन के लिये चल देते है ।

(२८)

तदा सर्वे लोका अतिपरिचितान् नन्तुमधिकम् ,
मुनीनायान्त्येते चतुरचतुरा संग्रहरताः ।
ततश्चानन्दार्थं प्रतिपदमहो कौतुकमता ,
जिघृक्षां दीक्षायाः समभिदधतीमान् नटयितुम् ।।

अन्वयः—पुनरागमन श्रुत्वा—एते सग्रहरता चतुरचतुरा. सर्वे लोकाः अतिपरिचितान् मुनीन् नन्तुम् आयान्ति । तत च अहो कौतुकमताः (ते) आनन्दार्थम् इमान् मुनीन् नटयितुम् दीक्षाया जिघृक्षा प्रतिपद समभिदधति । (यतः दीक्षार्थं समुद्यत जनं मुनय. पर स्पृहयन्ति, शृण्वन्ति, अनुगृह्णन्त्यपि ।

अर्थ—मुनिजन के पधारने की वात सुनकर—ये सग्रही अधिक चतुर सभी मनुष्य पूर्ण परिचित मुनियो की वारवार वन्दना करने के लिए आते हैं । और वे कौतुकी वनकर आनन्द के लिए इन मुनियो को चक्कर देने के लिए दीक्षा लेने की इच्छा को प्रतिपद कहते थे । क्योकि दीक्षा लेने वाले मनुष्य से मुनिजन वहुत स्पृहा रखते हैं, सुनते भी हैं और अनुग्रह भी रखते हैं ।

(२९)

अतस्ते सानन्दा परमविनताः श्रोतुमधिकम् ,
तदीय वृत्तान्त किमिव घटित ज्ञातुमपरे ।
समागच्छन्त्येते परमविवशास्तेऽपि मुनयः ,
ततो ज्ञात्वा तत्त्वं समभिदधतीमं कुरु कृपाम् ।।

अन्वयः—दीक्षा जिघृक्षोर्वृत्त श्रुत्वा—ते परमविनता· सानन्दा मुनय अत अधिक तदीय वृत्तान्त श्रोतुम्, अपरे किमिव घटित ज्ञातुम् च समागच्छन्ति, किन्तु परमविवशास्ते एते मुनय अपि तत्त्व ज्ञात्वा इमम् दीक्षा जिघृक्षुम् समभिदधति यत् तत कृपा कुरु । अर्थात् त्वमितो गच्छ ।

अर्थ—दीक्षा के ग्रहीता की वात सुनकर—वे अतिनम्र आनन्दित मुनि—इससे और अधिक सुनने के लिए, दूसरे मुनि कैसा क्या हुआ जानने के लिए भी आ पहुँचते हैं, किन्तु अधिक विवश वे ही मुनिजन तत्त्व जानकर इस दीक्षार्थी से कहते हैं कि तव तू दया पाल । अर्थात यहाँ से तू लम्बा हो ।

(३०)

पिपृच्छामेषां ते शमयितुमिमे मे विनयिनः ,
यतन्तेऽथायान्तं मुनिजनवर नन्तुमसकृत् ।
समुत्तिष्ठन्ते ते स्थलमुपगताः सन्ततमिमम् ,
तदाचार्यं दृष्ट्वा विदधति नतीनां शतमिदम् ।।

अन्वयः—किं जातमिति पृच्छताम् - एषा पिपृच्छा शमयितुम् इमे ते विनयिन मुनय यतन्ते, अथ तदा एव ते मुनय आयान्तम् मुनिजनवरम् आचार्यं दृष्ट्वा असकृत् नन्तुम् समुत्तिष्ठन्ते, (किन्तु) ते स्थलमुपगता जना - इमम् आचार्यं दृष्ट्वा इद नतीना शत विदधति ।

अर्थ—'क्या हुआ' इस वात को पूछने वाले इन मनुष्यो की पूछने की इच्छा को शान्त करने के लिए ये ही वे मुनिजन जव प्रयत्न करने लगे तभी वे मुनि पधारते हुए मुनियो के पूज्य आचार्य श्री को देखकर वार-वार वन्दना करने को उठ खड़े होते हैं, किन्तु वे भूमि पर वैठे हुए श्रावक इन आचार्य जी महाराज को देख सैंकडो प्रणाम करने लगे ।

(३१)

ततश्चेन्द्रप्रस्थं प्रति विहरणं जायत इदम् ,
जना: श्रुत्वेत्येव किमिति बहुधा प्रष्टुमनस: ।
यतन्तेऽथाचार्यः प्रवदति तदा केवलमलम् ,
न कष्टं यत् किञ्चित्तदपि गमनं मे ध्रुवमित: ।।

अन्वय:—तत इन्द्रप्रस्थ प्रति विहरण जायते इति श्रुत्वा जना: इदम् एवम् किम् इति वहुधा प्रष्टुमनस. यतन्ते । तदा आचार्यः प्रवदति यत् किञ्चित् कष्टं न (विद्यते), केवलम् इत. मे गमनम् तदपि ध्रुवम्, अत. निवासाय अथ आग्रहेण अलम् ।

अर्थ—तदनन्तर 'इन्द्रप्रस्थ की ओर विहार हो रहा है' ऐसा सुनकर सभी श्रावक 'यह ऐसा क्यो होता है' ऐसा अनेक प्रकार से पूछने वाले प्रयत्न करने लगे। तव आचार्य श्रीअमरसिंहजी मुनिराज ने फरमाया कि यहाँ कोई कष्ट नहीं है, केवल यहाँ से मेरा प्रस्थान तो फिर भी निश्चित है। इसलिए निवास के हितार्थ आग्रह से कोई काम नहीं चलेगा।

(३२)

तदेन्द्रप्रस्थस्था निखिलजनता धर्मशरणम् ,
समागच्छन्तं तं मुनिगणधरं स्वागतमलम् ।
समायाता: कर्त्तुं मुनिगणपुरोगा: सविनयम् ,
त्रिकृत्व. साष्टाङ्गं प्रणमति मुनीशं सुमनसा ।।

अन्वय.—तदा इन्द्रप्रस्थस्था मुनिगणपुरोगा निखिलजनता तम् धर्म-शरणम् मुनिगणवर समागच्छन्त मुनीशं स्वागतम् अलम् कर्त्तुं समायाता, ततश्च सुमनसा त्रिकृत्व. साष्टाङ्ग सविनय प्रणमति ।

अर्थ—तव दिल्ली की मुनिगण को आगे की हुई सारी जनता उस धर्मरक्षक मुनिमण्डल के साथ आते हुए आचार्य महाराज को स्वागत से सुशोभित करने के लिए पहुँची, और फिर भाव-भीने हृदय से तीन वार साष्टाङ्ग विनय से प्रणाम किया।

(३३)

अथ श्रद्धाराद्धः स्वयमतुलितं वक्तुमपरम् ,
स्वकीयं मन्तव्यं परमुपगतान् सन्मुनिवरान् ।
समाख्यातुं स्वीयै रुचिरमधुरैस्तत्त्ववचनै. ,
प्रवृत्त शीर्षस्थान् यदिति करणीय पुनरिमान् ।।

अन्वयः—अथ स्वागतसमये श्रद्धाराद्ध (आचार्य. अमरसिह. मुनि.) अपरम् अतुलित स्वकीय पर मन्तव्य यत् करणीयम् इति स्वय वक्तुम् इमान् उपगतान् शीर्षस्थान् स्वीयै रुचिरमधुरै तत्त्ववचनै समाख्यातु प्रवृत्त. ।

अर्थ—तदनन्तर स्वागत के समय, श्रद्धा से आराधनीय आचार्य श्रीअमरसिंह मुनिजी महाराज 'दूसरा अनोखा अपना वडा मन्तव्य, जो किया जाना चाहिए' यह स्वयं वताने के लिए इन आये हुए श्रेष्ठ मुनियो को अपने प्यारे-मीठे खाश वचनो से खुलासा करने के लिए तत्पर हुए ।

(३४)

मरोर्भुवं श्रामणजैनशासने, नियोक्तुमिच्छासदृशं गुरोरयम् ।
ततो विधातुं श्रमणावतसक·, स्वयं मरुं गन्तुमित समीहते ।।

अन्वय—तत अय श्रमणावतसक· मरोः भुव श्रामणजैनशासने नियोक्तुम् अत गुरो इच्छासदृश विधातुम् स्वय मरु गन्तु समीहते ।

अर्थ—तत्पश्चात् ये आचार्य जी महाराज मरु की पृथिवी को श्रमणोपासक जैन धर्म मे लगाने को जिससे गुरुदेव की इच्छा के अनुसार कार्य हो, करने के लिए मारवाड पहुँचने की चेष्टा कग्ने लगे ।

(३५)

अतोऽग्रिमेऽङ्के यदि वर्णनंमुनेः, प्रसङ्गसङ्गेन सुविस्तृत भवेत् ।
ततो निरागा अहमस्मि साम्प्रतम्, गुणा अनेकेऽस्य गुरोस्तुदन्ति माम् ।।

अन्वयः—यदि अग्रिमे अङ्के मुने वर्णन विस्तृत भवेत्, तत- तु साम्प्रतम् अहम् निरागा अस्मि, (यतो हि) अस्य गुरो.- अनेके गुणा (वर्णनाय) मा तुदन्ति ।

अर्थ—यदि आगे के सर्ग मे मुनिमहाराज का वर्णन प्रसङ्ग के साथ विस्तृत होता हो, तो फिर अव मैं निरपराध हूँ, क्योकि इन गुरुदेव के अनेक गुण वर्णन करने को मुझे विवश करते है ।

(३६)

इयं वसन्तस्य ऋतोर्विशेषता, प्रपर्णवृक्षोऽपि तु पुष्पितः पुन ।
सुमूकपुंस्कोकिल एव कूजते, कविर्भवाम्येवमहं गुणैर्मुने ॥

अन्वयः—इय वसन्तस्य ऋतो विशेषता अस्ति, यत् प्रपर्ण. अपि वृक्ष', तु पुनः पुष्पितः भवति (पर्णाना तु कथैव का), एव सुमूकः पुस्कोकिल एवापि कूजते (रवाणा तु वर्णन किम्) ? एवम् मुने गुणै' अहकवि. भवामि। मुनेर्गुणानां विशेषतेत्यर्थ. ।

अर्थ—यह वसन्त ऋतु की 'विशेपता है कि पत्ररहित भी वृक्ष, तो फिर फूलवाला हो जाता है, पत्तो की तो वात ही क्या ? ऐसे ही पूर्ण चुप रहने वाला कोकिल कूजने लगता है, गुनगुनाने का कहना ही क्या ? इसी प्रकार मुनिमहाराज के गुणो से, मौन रखने वाला मैं जैनमुनि कवि वन रहा हूँ तो कोई वडी वात नही है, यह मुनिमहाराज के गुणो की विशेषता है ।

(३७)

अहं तु शब्दैरनुरञ्जयेयं भक्तान् गुरोर्मेऽमरसिंहशास्तुः ।
भवेदिदं काव्यगुणेन तुल्यं तदा कृपैवास्ति महाकवीनाम् ॥

अन्वयः– अह तु अमरसिंहशास्तु मे गुरोः भक्तान् शब्दै' अनुरञ्जयेयम् (इति विचार्य वर्णनमकुर्वम्) किन्तु इद वर्णन यदि काव्यगुणेन तुल्य भवति, तदा इय महाकवीना कृपा एव अस्ति ।

अर्थ—मैं तो श्रीअमरसिंहाचार्य मेरे गुरु के भक्तो को केवल शब्दो से ही अनुरक्त किया चाहता हूँ—ऐसा विचारकर मैंने वर्णन किया। यदि फिर भी यह वर्णन काव्य के अनुरूप मान लिया जाता है तो फिर मैं इसको, महाकवियो की कृपा है, ऐसा समझूंगा !

इति श्रीमता राजस्थानकेसरिणा पण्डितरत्नेन
उपाध्यायपदालङ्कृतेन पुष्करमुनिना विरचिते
श्रीमदाचार्यामरसिंह महाकाव्ये
षष्ठः सर्गः

❀

सप्तमः सर्गः

(१)

दयाविचारेन्दुविभाविलासिनो जिनेन्द्रसिद्धान्तशिरोमणेर्मुने ।
नखप्रभाभूपितयो. पदाब्जयोर्नतोऽस्म्यहं भक्ति विरक्तिनालयोः ॥

अन्वय —दयाविचारेन्दु विभाविलासिन जिनेन्द्र सिद्धान्त शिरोमणेः मुने नखप्रभा भूषितयोः भक्ति-विरक्तिनालयोः अह (पुष्करमुनि·) नत. अस्मि ।

अर्थ—दया के विचार रूपी चन्द्रमा की विभा के विलासी जिनेन्द्र के सिद्धान्त की शिरोमणि मुनि के नख की प्रभा से अलकृत भक्ति और विरक्ति है दण्ड जिनके ऐसे चरण रूपी कमलो मे मैं पुष्करमुनि नत हूँ ।

(२)

अथागतं मण्डलिनं गुरुं जना, उपाश्रये संस्थितमात्मदैवतम् ।
अहर्मुखे द्रष्टुमिमं प्रियंवदं, समागताः सलपितुं च ते समे ॥

अन्वयः—अथ ते समे जना उपाश्रये सस्थितम् मण्डलिनम् आत्मदैवत प्रियवदम् इमम् आगत गुरुम् अहर्मुखे द्रष्टुसंलपितु च समागता ।

अर्थ—नगर मे पदार्पण करने के पश्चात् वे सव श्रावक उपाश्रय मे विराजे हुए मुनिमण्डल के साथ आत्मदेव स्वरूप प्रियभापी इन आए गुरुदेव को प्रभात मे दर्शन करने के लिए और परस्पर मे वातचीत करने के उपस्थित हुए ।

(३)

विहारमुल्लक्ष्य समे प्रसङ्गत·, सुखेन शान्त्या च पदार्पणं पुनः ।
इदं तु जातं किमुतान्यथेति वा, जना अनुप्रश्नमुदाहरन्ति ते ॥

अन्वय —विहारम् उल्लक्ष्य समे ते जना प्रसङ्गत अनुप्रश्नम् उदाहरन्ति, यत् ते पुन. इद पदार्पण तु सुखेन शान्त्या च जात किम् उत वा अन्यथा इति ?

अर्थ—विहार को लक्ष्य मान कर वे सव श्रावक प्रसग के अनुसार प्रश्न पर प्रश्न करते है कि आपका फिर यह पदार्पण सुख और शान्ति के साथ हुआ क्या, अथवा कोई तरह से हुआ ? यह वे जानना चाहते है ।

सर्गेऽस्मिन् 'वशस्था जृतौ जृरौ ।'

(४)

ततो जनास्ते मुनयोऽनुभाविनः वदन्ति प्रत्युत्तरमेव केवलम् ।
विहारिणः स्युर्मुनयः सदेत्यसौ, शशास शास्ता भगवान् जिनो मुनि. ।।

अन्वय—तत. ते अनुभाविन. मुनय. केवलं प्रत्युत्तरम् एव वदन्ति, यत् असौ शास्ता जिन मुनि. भगवान् शशास, यत् सदा मुनय विहारिण. स्यु । अतो वय तु विहराम —इति जानीम. ।

अर्थ—तत. ये दयालु मुनिजन केवल प्रत्युत्तर ही देते कि उस शास्ता जिन मुनि ने शासन किया, कि सदा मुनिजन विहार करने वाले होने चाहिये । इससे हम तो घूमते रहते हैं—यही हम जानते है, शेप सब गृहस्थो के लिए छोड दिया है ।

(५)

शनैः शनैरेवमुपागता इमे, निदेशनां दातुमिहार्थयन्ति तम् ।
गुरुं स्वकीयं प्रतिभाविलासिनम्, समागतं पञ्चनदादिम जना. ।।

अन्वयः—शनै शनैः एवम् उपागता इमे जना. इह निदेशना दातुम् इमं तम् पञ्चनदात् समागत प्रतिभाविलासिन स्वकीय गुरुम् अर्थयन्ति ।

अर्थ—धीरे-धीरे इस प्रकार ये श्रावक यहाँ पर उपदेश देने के लिए इन्ही पजाव से आए हुए प्रतिशाली अपने गुरुदेवश्री से अर्ज करते हैं ।

(६)

निवेदनं जैनमतानुयायिनाम्, तथा परेषामपि धर्मधारिणाम् ।
निशम्य शुक्लाम्बरजैनभास्करः, जिनागमज्ञानविभां स्फुरत्यसौ ।।

अन्वय.—असौ शुक्लाम्बरजैन भास्कर आचार्यामरसिंह जैनमतानुयायिनाम् तथा परेषा धर्मधारिणा निवेदन निशम्य जिनागमज्ञानविभा स्फुरति ।

अर्थ—तव वे शुक्लाम्वर जैनो के सूर्य आचार्य श्री अमरसिहजी महाराज ने जैनधर्म के अनुयायी और उसी प्रकार अन्य धर्म के मानने वालो के भी निवेदन को सुनकर जिनभगवान् के आगमो के ज्ञान के प्रकाश को और ज्योतित किया ।

(७)

उपाश्रय बोधमतो दिशत्यसौ, समागतेभ्योऽनुदिनं तदोषसि ।
क्षिणोति तेषां मनसो विकारजम्, शनैर्मुनिर्दोषमशेषमालपन् ॥

अन्वयः—तदा मुनि उषसि, अनुदिनम् उपाश्रय समागतेभ्य. (श्रावकेभ्य) बोध दिशति । अत असौ तेषा (श्रावकाणा) मनस. विकारजम् अशेषम् दोषम् शनै क्षिणोति ।

अर्थ—तब मुनिश्री प्रभात मे प्रतिदिन उपाश्रय आए हुए श्रावको के लिए ज्ञान का उपदेश करते थे । अतएव वे उन आए हुए श्रावको के मन के विकारज सम्पूर्ण दोष को धीरे-धीरे क्षीण करते थे ।

(८)

इदं मनोऽश्वो विकटोऽतिदुर्दमः समुच्यते यद्रभसोक्तमस्ति तत् ।
अहं तु मन्ये परम सहायकम् यतो मनो वेत्ति रहस्यमात्मन ॥

अन्वयः—आचार्योऽय शनै शनैरुपदिशति—यत् कैश्चित् समुच्यते यत् इद मन —अतिदुर्दम विकट अश्व. (अस्ति) । तत् रभसोक्तम् अस्ति । अह तु (मन) परमं सहायक मन्ये । यत मन एव आत्मन रहस्य वेत्ति ।

अर्थ—आचार्यजी महाराज शनै शनै उपदेश करते थे कि कुछ मनुष्यो ने समझाया है कि यह मन वेकावू भयङ्कर घोडा है । वह जल्दी मे कहा गया है । मैं तो मन को परम सहायक मानता हूं । क्योकि मन ही आत्मा के रहस्य को जानता है ।

(९)

जगद्विधातृ प्रथमं विधायकम्, विनाशकञ्चापि कथोत्तमोद्गतम् ।
मनोऽनुकूलीकरणाय सन्ततम्, प्रयत्न एषोऽस्तु मनोऽस्त्यतो महत् ॥

अन्वयः—अत मन महत् अस्ति, (यत) इद कथोत्तमोद्गतम् जगद्-विधातृ प्रथम विधायकम् विनाशकम् च अपि अस्ति, (तस्मात्) मनोऽनुकूली-करणाय एष प्रयत्न. अस्तु ।

अर्थ—यह मन महान् है । क्योकि यह जगत् वनाने वाला पहला विधाता है और कहानियो के उत्तम इतिहास से उत्पन्न है, साथ ही जगत् विनाशक भी यही मन है । इसलिए आपका मन को अनुकूल वनाने के लिए सदा प्रयत्न रहना चाहिए ।

(१०)

ततोमन. सत्यमिदं जगद्वृथा, कथेयमित्येव मनीषिभिर्मता ।
भवद्भिरेवाकलनीयमन्यत:, मनोजमस्त्येव जगद् यत: स्वयम् ॥

अन्वयः—तत: इद मन सत्यम् जगत् वृथा इति इय कथा एव मनीपिभिमता । अन्यत भवद्भि अपि एव आकलनीयम् यत जगत् स्वयम् मनोजम् एव अस्ति ।

अर्थ—इसीलिए यह मन सत्य है, जगत् वृथा है, ऐसी यह वात विवेकियो ने भी मानी है । दूसरे आप भी समझ ही रहे हो कि जगत् स्वय मन से ही पैदा होता हैं ।

(११)

भवी यदाऽऽयाति कृतं निर्वर्त्तितुम्, ऋते शरीरान्न हि तस्य सन्निधौ ।
पुनश्च तस्यैव कला प्रकल्पितम्, विशालमागारमिदं तथापरम् ॥

अन्वय.—यदा जन्मी कृत निर्वर्त्तितु (जगति अस्मिन्) आयाति, तदा तस्य सन्निधौ शरीरात् ऋते (किमपि) न हि (आसीत्) । पुनश्च तस्य एव इद विशालम् आगारम् अस्ति तथा अपरम् (अपि अस्ति) ।

अर्थ—जव प्राणी किए हुए को भुगतने के लिए इस जगत् मे आता है, तव उसके पास मे शरीर को छोडकर, कुछ नही होता । किन्तु उसके ही फिर कारीगरी वाले विशाल भवन उसी प्रकार और दूसरे सामान सव वन जाते हैं ।

(१२)

प्रवर्त्ततेऽसौ मनस समुद्भव:, समस्तसंसार विकासकल्पित. ।
अतोऽहमेवं समितौ समब्रुवम्, मनो विधात्रेव मन. सुहृत् पर: ॥

अन्वयः—आचार्य उपदिशन् समर्थयति—यत् मनस समुद्भव असौ समस्त ससारविकासकल्पित. प्रवर्त्तते । अत. अहम् एवम् समितौ समब्रुवन् यद् (इद) मन एव विधातृविद्यते, मन. एव पर: सुहृत् अस्ति ।

अर्थ—आचार्यश्री उपदेश करते हुए समर्थन देते हैं कि मन से पैदा हुआ यह सम्पूर्ण ससार का विकास कल्पित है । इसलिए मैंने सभा मे वताया था कि मन ही विधाता है और मन ही वडा मित्र है ।

(१३)

सुकर्मणां पुण्यफलोदयं मनः, प्रभुर्महावीर इति समुक्तवान् ।
न रत्नमेकं लभते विना मन., सुदूरमेतत्कथनात् पुनस्त्रयीम् ॥

अन्वयः—प्रभु महावीर समुक्तवान् यद् मन. सुकर्मणा पुण्यफलोदयम् अस्ति इति । प्राणी मन विना एक रत्न न लभते, पुन त्रयी लभते, एतत् सर्वं कथनात् सुदूर वर्त्तते ।

अर्थ—भगवान् महावीर ने फरमाया है कि मन सुकर्मों के पुण्यफल का उदय जिससे होता हो-ऐसा है । प्राणी मन के विना एक रत्न को प्राप्त नही कर सकता, तव फिर तीन रत्नो को प्राप्त कर लेगा—यह सव कहने से काफी दूर है। अर्थात् ऐसा हो नही सकता ।

(१४)

अतो मनः साधयितुं सुचञ्चलम्, स्वभावतो योजयितुं सुकर्मभिः ।
रसेऽनुलिप्तं यदि वा भवेदिदम्, महाजयोऽयं जयिनो महारणे ॥

अन्वय —अत सुकर्मभि योजयितुम् इदम् स्वभावत सुचञ्चल मनः भवेत्, यदि वा सुकर्मणा रसे अनुलिप्त भवेत्, तर्हि द्रष्टव्यम्—कियदाश्चर्यं मन करोति । किन्तु अह मन्ये यदि एव भवेत्-तदा तु महारणे अय जयिन. महाजयः (अस्ति) ।

अर्थ—इसलिए सत्कर्मों के साथ जव इस चञ्चल मन को जोडने के लिए अनुकूल प्रयत्न होगा अथवा सत्कर्मों के रस मे यह मन गर्क रहेगा, तव देखेंगे कि यह मन क्या गजव ढाता है ! यदि ऐसा वनता हो तो मैं यह मानूंगा कि एक योद्धा ने महायुद्ध मे पूर्ण विजय प्राप्त करली ।

(१५)

रसोपलब्धेर्यदि मूलमिष्यते, तदोपसाधु प्रति गन्तुमीहताम् ।
यदा सनिष्ठो यतते निरन्तरम्, रसानुभूतिः स्वयमव जायते ॥

अन्वयः—यदि, रसोपलब्धे मूलम् इष्यते, तदा उपसाधु प्रति गन्तुम् ईहताम् । यदा सनिष्ठ सन् निरन्तरं यतते, तदा रसानुभूति. स्वयम् एव जायते ।

अर्थ—यदि आत्मरस की प्राप्ति का मूल चाहते हो, तव साधक गुरु की सेवा मे पहुँचने का प्रयत्न करना होगा । जव सनिष्ठ होकर मूलजिज्ञासु प्रयत्न करता है, तव रस की अनुभूति स्वय ही पैदा हो जाती है ।

(१६)

न कोऽपि शक्तो भुवने मनोजनः, रसं विना योजयितुं भवेदसौ ।
रसं सनिष्ठोऽनुभवाय शक्ष्यति, रसस्य निष्ठा जननी सतां मते ॥

अन्वयः—असौ, कः अपि भुवने शक्त न अस्ति, (यः) रस विना मन. योजयितुं भवेत्। अतः सनिष्ठः (साधक एव) रसम् अनुभवाय शक्ष्यति। (यतो हि) सताम् मते निष्ठा रसस्य जननी (विद्यते)।

अर्थ—ससार मे ऐसा कोई भी समर्थ पुरुष नही है, जो रस के विना इस मन को अपने साथ लगाए रखे। अत सश्रद्ध साधक ही रसका अनुभव करने के लिए समर्थ हो पायेगा। क्योकि सन्तो के सिद्धान्त मे रस की जन्मदात्री श्रद्धा है।

(१७)

अतो मनः पातुमिमं रसं प्रियम्, समीहते नित्यमिदं स्वभावतः ।
परन्तु निष्ठा परमा वियोगिनो, रिरसुरेषा नितरां भ्रमत्यसौ ॥

अन्वयः—अत इद मन स्वभावतः इमम प्रिय रस पातु नित्य समीहते। किन्तु असौ एषा रिरसु निष्ठा परमा वियोगिनी सती नितरा भ्रमति।

अर्थ—इसलिए यह मन स्वभाव के कारण इस प्रिय रस को पीने के लिए सदा लालायित रहता है। किन्तु वही यह रमणशील श्रद्धा एक वियोगिनी बनकर मारी-मारी फिरती है। अत समय पर मन को रस नही मिल पाता तो यह भी विवश होकर चकराने लगता है। यह इसका व्यङ्ग्यार्थ है।

(१८)

रसं विना चञ्चलतामुपेत्य तत्, प्रयत्नमन्यं कुरुते यथास्थिति ।
रसं प्रदातुं मनसे सुखार्थिनः, भवन्त्वतस्ते सततं समाहिता. ॥

अन्वयः—रस विना तत् (मन) चञ्चलताम् उपेत्य यथास्थिति (रस प्राप्तुम्) अन्य प्रयत्न कुरुते। अत ते सुखार्थिन. मनसे रस प्रदातु सतत समाहिताः भवन्तु।

अर्थ—विना रस के वह मन अधीर होकर स्थिति के अनुसार रस की प्राप्ति के लिए दूसरा प्रयत्न करने लगता है। इस कारण से वे सुख के चाहने वाले अथवा कल्याणार्थी पुरुष मन को रस देने के लिए सदा सावधान रहे।

(१९)

अतो विकल्पान् परिहाय दूषितान्, सुकल्पमेकं सुरसे निमज्जितुम् ।
निधाय चित्ते सततं भ्रमन्तु ते, न कोऽपि किञ्चित् प्रतिकर्त्तुमीहते ॥

अन्वय —अत दूपितान् विकल्पान् परिहाय सुरसे निमज्जितुम् एकं सुकल्प चित्ते निधाय ते सतत भ्रमन्तु, (यत. तेपा) क अपि किञ्चित् प्रतिक्रर्तुं न ईहते ।

अर्थ—अत एव दूपित विकल्पो को छोडकर सुरस मे डुवाने के लिए एक सुकल्प को हृदय मे रखकर वे आत्मकल्याणार्थी सदा घूमे, क्योकि फिर उनका कोई भी कुछ विगाड करने का प्रयत्न नही करेगा ।

(२०)

समाप्य चित्तस्य विवादसंग्रहम्, मुनिप्रगल्भोऽन्यदिनस्य भाषणे ।
अभीष्टचेष्टाघटनापटीयसम्, तमात्मकं ख्यातुमतो व्यकल्पयत् ॥

अन्वयः—चित्तस्य विवादसग्रह समाप्य मुनिप्रगल्भ सः आचार्य. श्रीमान् अमरसिंह अत अन्यदिनस्य भाषणे तम् अभीष्टचेष्टाघटनापटीयसम् आत्मकम् आत्मान वा ख्यातुम् व्यकल्पयत् ।

अर्थ—जनता के चित्त की उलझनो को समाप्त कर मुनिश्रेष्ठ आचार्य श्री अमरसिहजी महाराज ने अव दूसरे दिन के भाषण मे उस मन चाहे जैसे कार्य करने मै अत्यन्त प्रवीण आत्मा को प्रकट करने के लिए इच्छा व्यक्त की ।

(२१)

अतोऽद्य संसारविधानकारणम्, स्वभाव विद्योतितरत्नमेतकम् ।
तमात्मनामानमहं सदातनम्, विचार चर्चाविषयीकृत ब्रुवे ॥

अन्वय.—अत. अद्य अह विचारचर्चाविषयीकृतं त ससारविधान-कारण स्वभावविद्योतितरत्नम् सदातनम् आत्मनामानम् एक ब्रुवे ।

अर्थ—इसलिए क्योकि मैंने आज विचार की चर्चा का जो विपय नही था, फिर भी विषय मानकर, आज मैं उस ससार के वनाने के कारण, स्वभाव से चमकने वाले रत्न के समान अजर-अमर आत्मा जिसका नाम है, ऐसे एक को वताना चाहता हूं ।

(२२)

अयं सदात्मा सकलैर्विवोधितः, सुविज्ञवर्य्यैं प्रथमैर्मनीषिभिः ।
तथापि युक्त्या विदितं स्वरूपिणम्, महान्तमात्मानमिमं समादधे ।।

अन्वयः—सदा प्रथमै सकलै सुविज्ञवर्य्यै मनीषिभि अयम् आत्मा विवोधित अस्ति, तथापि (अह) युक्त्या इम स्वरूपिण विदित महान्तम् आत्मानम् समादवे ।

अर्थ—सदा पूर्व के सभी सुविज्ञो मे से भी सुविज्ञ विवेकियो ने इस आत्मा को ममझाया है, तथापि मैं युक्ति के साथ इस विशिष्ट विख्यात महान आत्मा को समाहित किया चाहता हूँ ।

(२३)

अयं विशुद्धः परमोऽतिनिर्मलः कषायरागादिभिरेव साविलः ।
विकृत्य रूपं परिवर्त्ततेयदा, शरीरसंयोगजनुर्मलं यथा ।।

अन्वयः—अय परम. अतिनिर्मल विशुद्धश्च आत्मा विद्यते, किन्तु कषायरागादिभि. एव (अयमात्मा) साविल जायते, तदा विकृत्य रूप परिवर्त्तते, यथा शरीरसयोगजनु मल भवति ।

अर्थ—यह परम अतिनिर्मल और विशुद्ध आत्मा है, किन्तु कपाय, राग, आदियो से आविल हो जाता है, तव विकृत होकर रूप वदलता है । जैसे शरीर के सयोग से पैदा होने वाला मल होता है ।

(२४)

अयं सुकर्त्ता परमोविकर्तृकः, तथापि सारोपपरा इमे समे ।
करौ, शरीरं, करणानि चादयः, मनः समेता हि विकारकारिणः ।।

अन्वयः—अयमात्मा सुकर्त्ता, परम विकर्त्तृक (अपि) अस्ति । तथापि इमे सर्वे सारोपपरा करौ, शरीर, करणानि चादय विद्यन्ते । यत. इमे सर्वे मन समेता. हि विकारकारिणो भवन्ति ।

अर्थ—यह आत्मा महान कर्त्ता है और वडा उपद्रवी है । इतने पर भी यह समझना चाहिए कि ये सव विशेपण रस आत्मा के आरोप-परक हैं । क्योकि यह वास्तव मे विशुद्ध है । जिम प्रकार मन के साथ मिलकर ही हाथ, शरीर और इन्द्रियाँ आदि विकार करने वाली है । वस्तुत ये न विगाडते और न विगडते है । ठीक इसी प्रकार आत्मा की स्थिति है ।

(२५)

पुनश्च मुक्तानवतारिण. समान्. वदन्ति ये ते भ्रमवादिनो जनाः ।
न कर्ममुक्तो जनिमावलम्बते, यतो हि जन्मास्ति विकर्मणः फलम् ॥

अन्वय.—आचार्य. जनभ्रान्ति निरस्यति—पुनश्च कतिपये ये मुक्तान् अवतारिण. समान् वदन्ति, ते जना भ्रमवादिन (सन्ति) । यतो हि कर्ममुक्तः (जीव) जनिम् न आवलम्बते, जन्म तु विकर्मण फलम् अस्ति ।

अर्थ—आचार्यश्री जनभ्रान्ति को निरस्त करते हैं कि कुछ जो मुक्तो को अवतारी के समान बताते हैं, वे मनुष्य भ्रान्त है । क्योकि कर्ममुक्त जीव जन्म का कभी आलम्बन नही करता, जन्म तो विकर्म का परिणाम है ।

(२६)

अनादिकालात् समटन्त्यनेकशः, नितान्तमात्मान इतस्तत परे ।
इतीदृशोऽसीमित सख्यका इमे, वदन्ति ते केवलिनो महाशया ॥

अन्वय.—अनेकश परे आत्मान. अनादिकालात् इतस्तत नितान्त समटन्ति । ईदृश आत्मान इमे असीमितसख्यका. (सन्ति) । इति ते महाशया केवलिन वदन्ति ।

अर्थ—अनेकानेक अन्य आत्माएँ अनादिकाल से लेकर इधर-उधर सदा घूमती चली आ रही हैं । और ऐसी आत्माएँ ये असीमित सख्या की हैं—ऐसा वे महाशय जो केवलज्ञानी है, फरमाते है ।

(२७)

अथापरस्मिन्दिवसे महागुरु, जनानुपेतान् विषयानुसारिणम् ।
क्रमं समुल्लङ्घ्य सुबोधरीतित , सुयोगमाहागतजीवकर्मणो ॥

अन्वयः—अथ अपरस्मिन् दिवसे महागुरु अमरसिंहः विषयानुसारिण क्रमम् उल्लङ्घ्य उपेतान् जनान् सुबोधरीतित. आगतजीवकर्मणोः सुयोगम् आह ।

अर्थ—तव फिर दूसरे दिन आचार्यश्री अमरसिहजी महाराज ने विषयानुसारी क्रम को छोडकर आए हुए श्रावको को समझाने के लिए सुबोधरीति से, उत्पन्न जीव और कर्म के सुयोग की व्याख्या करने लगे ।

(२८)

अयं हि जीव· कुरुते शुभाशुभम्, स्वभावत कर्मफलं तथाप्नुते ।
इदं महाश्चर्यकरं तु दृश्यते, कृतेऽशुभे कर्मणि चेष्यते शुभम् ॥

अन्वयः—जीव. हि अयम् शुभाशुभम् कुरुते, स्वभावत च जीव. कर्मफलम् (अपि) तथा (एव) आप्नुते। किन्तु इद महाश्चर्यकर दृश्यते, यत् (जीवेन) अशुभे कर्मणि कृते सति शुभम् (फलम्) इष्यते।

अर्थ—यह जीव ही शुभ-अशुभ कर्म करता है और स्वभाव से जीव भी वैसा ही कर्मफल भोगता है। किन्तु यह महाश्चर्यकर हो ऐसा दिखता है कि जीव के द्वारा अशुभ कर्म किए जाने पर शुभ फल चाहता है।

(२९)

न कर्म तं प्रेरयति स्वतो विधिम् विधातुमात्मानमिमं सदातनम् ।
स कर्मबद्धः शुभमेव वाऽशुभ, विधि विधातुं जगति प्रवर्त्तते ॥

अन्वयः—कर्म तम् इमं सदातनम् आत्मान स्वत. विधि विधातु न प्रेरयति, किन्तु स. कर्मबद्ध आत्मा जगति शुभ व अशुभविधि विधातु प्रवर्त्तते।

अर्थ—कर्म उस सदातन आत्मा को अपनी ओर से क्रिया करने के लिए प्रेरणा नही देता, किन्तु वह कर्मबद्ध आत्मा ससार मे शुभ अथवा अशुभ क्रिया करने के लिए प्रवृत्त होता है।

(३०)

अतोऽयमर्थोभवति प्रभावितः, शुभाशुभैरेवहि कर्मपुद्गलै ।
युतो भवन् जीव इति स्वयं ततः, सुखी च दु खी परिणाममेत्यसौ ॥

अन्वयः—अत अयम् अर्थ. प्रभावित भवति, यद्धि शुभाशुभै कर्मपुद्गलैः युत· भवन् जीव तत असौ 'अह सुखी वर्त्ते च अह दु खी वर्त्ते' इति परिणामम् एति।

अर्थ—इससे यह अर्थ सिद्ध हुआ कि शुभ और अशुभ कर्मों के पुद्गलो से युक्त हुआ जीव खुद 'मैं सुखी हूँ और मैं दु खी हूँ' ऐसा परिणाम प्राप्त करता है।

(३१)

यथा हि जीवा विविधा इमे समे, महाविचित्रा प्रकृतिश्च निश्चिता ।
तथा तु कर्माणि समान्यनादय, विकल्पमेषां नहि जैनशासने ॥

अन्वयः—यथा हि इमे समे विविधा जीवा अनादय वर्त्तन्ते तथा तु च महाविचित्रा निश्चिता प्रकृति अनादि, समानि कर्माणि च अनादीनि वर्त्तन्ते । जैनशासने एषा प्रकृति-कर्म-जीवानाम् (अनादिस्थितौ) विकल्प नहि (अस्ति) ।

अर्थ—जिस प्रकार से ये सब अनेक जीव अनादि हैं, तो ठीक यह महाविचित्र सिद्धान्त सिद्ध प्रकृति भी अनादि है और सभी कर्म अनादि ही हैं। जैन शासन मे इन प्रकृति, कर्म और जीवो की अनादि स्थिति मे कोई विकल्प नही है।

(३२)

कषाययोगावथ कर्ममूलकौ, यदात्मना सार्धमथानयोर्द्वयोः ।
समागमोऽयं प्रथितः स बन्धकः, कषायिनोऽन्ये गणितादस्तदन्यत् ॥

अन्वयः—कषाययोगौकर्मबन्धस्य हि मूलम् स्तः, यदा आत्मना सार्धम् अनयो द्वयो कषाय-योगयो समागम (भवति), अय स. एव बन्धकः बन्ध एव वा प्रथित विद्यते। कषायिनः (अपि) अन्ये गणिता सन्ति तदन्यत् अस्ति ।

अर्थ—कषाय और योग ये दोनो बन्ध की मूल है। जब आत्मा के साथ कषाय और योग इन दोनो का समागम होता है, तब वही बन्ध कहा जाता है। कषायी भी गिने हुए हैं, किन्तु वह अभी प्रतिपाद्य नही है।

(३३)

अयं सदात्मा सकलैः समन्वितै., सुदर्शन-ज्ञानचरित्रकर्मभिः ।
विमुच्यतेऽतः श्रमणा इमे समे, निरन्तर ता त्रितयीमुपासते ॥

अन्वय—सकलै. समन्वितै सुदर्शन ज्ञानचरित्रकर्मभि अयम् आत्मा सदा विमुच्यते। अतएव इमे समे श्रमणा ता त्रितयीम् निरन्तरम् उपासते।

अर्थ—सभी सम्मिलित सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक्चरित्रकर्मो से यह आत्मा शुद्ध हो जाती है। इसीलिये ये सब श्रमणजन उस त्रितयी की निरन्तर उपासना करते है।

(३४)

ततः प्रशस्तोज्ज्वलकीर्त्तिमण्डलम्, समे जना दर्शनलाभलालसाः ।
मुनिं समावृत्य गुणाञ् जिघृक्षवः, स्तुवन्ति देवेन्द्रमिवेन्द्रवन्दिनः ।।

अन्वयः—तत. समे दर्शनलाभलालसा. गुणान् जिघृक्षवः जना प्रशस्तोज्ज्वल कीर्त्तिमण्डल मुनिम् आचार्यम् अमरसिंहम् समावृत्य इन्द्र-वन्दिनः इव देवेन्द्रं स्तुवन्ति ।

अर्थ—आचार्यश्री के उपदेश समाप्त होने पर—सभी दर्शन के लाभ की इच्छा रखने वाले गुणो के जिघृक्षु श्रावकजन पवित्र कीर्त्ति से व्याप्त मुनि आचार्य श्रीमान् अमरसिंहजी महाराज को घेर कर इन्द्र के वन्दियो के समान देवेन्द्र की स्तुति करने लगे ।

(३५)

रसस्य विस्तारवती सरस्वतीम् ,
प्रवाहयन्ति श्रुतितत्त्ववेदिन. ।
अहं यदास्याः पयसो जिघृक्षया ,
स्खलामि तस्यां कवयो हसन्ति ते ।।

अन्वयः—श्रुतितत्त्ववेदिन कवय. रसस्य विस्तारवतो-सरस्वती प्रवाहयन्ति, यदा अह अस्याः सरस्वत्या पयसो जिघृक्षया अस्मि तदा तस्या स्खलामि, अत. ते हसन्ति ।

अर्थ—श्रुति के तत्त्व के वेत्ता कविजन रस की विस्तारवती सरस्वती बहाने लगे । जब मैं इस सरस्वती के जल को लेने की इच्छा से तैयार होता हूँ, तब उस सरस्वती मे खिसल पड़ता हूँ, इससे वे हँसते है ।

इति श्रीमता राजस्थानकेसरिणा पण्डितरत्नेन
उपाध्याय पदालङ्कृतेन पुष्करमुनिना विरचिते
श्रीमदाचार्यामरसिंह महाकाव्ये
सप्तम सर्गः

❀

अष्टमः सर्गः

(१)

सदोरकर्णाश्रितपत्तिमन्मुखम्, गुरु' तमूर्णौ घधराधिकन्धरम् ।
तडिच्छटाक्षुण्णपटीविशेपया, विभान्तमेनं मुनयो नमन्ति ते ॥

अन्वयः—तम् ऊर्णौ घधराधिकन्धर सदोर - कर्णाश्रितपत्तिवन्मुख तडिच्छटाक्षुण्णपटीविशेपया, विभान्तम् एन गुरु ते मुनय. नमन्ति ।

अर्थ—उन ऊन के ओघ को रखने वाले साधन को कन्धरा पर धारण कर रखा है जिन्होने ऐसे, डोरे के साथ कर्णों से आश्रित पत्ति वाला है मुख जिनका ऐसे, बिजली की छटा निरन्तर स्थिर हो पछेवडी से चमकते हुए इन गुरुदेव को वे मुनिजन जो आपश्री के शिष्य है, वन्दना करने लगे ।

(२)

ततः क्रियां नित्यविधिप्रतिष्ठितां, प्रलेखनां कर्त्तु मिमां प्रवर्त्तते ।
तथा मुनीश्चापि यथोदितामसौ, विशेषत. प्रेरयितुं मुनीश्वरः ॥

अन्वयः—तत असौ मुनीश्वर नित्यविधिप्रतिष्ठिता क्रिया प्रलेखनाम् इमा कर्त्तु तथा च मुनीन् यथोदिता कर्त्तुम् विशेषत प्रेरयितु प्रवर्त्तते ।

अर्थ—तदनन्तर वे आचार्यश्री नित्यविधि के रूप से प्रतिष्ठित क्रिया प्रलेखना को करने के लिए, तथा और मुनियो जैसा कि कहा गया है, करने के लिए विशेषतः प्रेरित करने के लिए प्रवृत्त हुए ।

(३)

प्रलेखनान्ते समयेन भाविनीम्, असौ विधातु ननु बाह्यभूमिकाम् ।
मुनीन् समाहूय विनोदयन्मुनि , प्रयातुमिच्छासदृश तदुक्तवान् ॥

अन्वयः—प्रलेखनान्ते असौ मुनि समयेन भावनी बाह्यभूमिका विधातु मुनीन् समाहूय ननु इच्छासदृश प्रयातु तत् विनोदयन् उक्तवान् ।

अर्थ—प्रलेखना के बाद उन मुनि महाराज ने समय से होने वाली बाह्य भूमिका को करने के लिए मुनियो को बुलाकर अब इच्छानुसार जाने के लिए (तैंयार हो जाइये) यदि शङ्का हो तो, ऐसा विनोद करते हुए ।

सर्गेऽस्मिन्नपि 'वंशस्था' एवास्ति । लक्षण तूक्तमेवपूर्वम् ।

(४)

उपस्थितानानयितुं मुनीनयम्, प्रवर्त्तयन् वाचमवोचदालयान् ।
तदा हि प्राप्तुं प्रतियन्तु गोचरीम्, विकीर्णकेशच्छुरितामलच्छवि. ॥

अन्वयः—तदा विकीर्णकेशच्छुरितामलच्छवि अयम् आचार्य. उपस्थितान् मुनीन् प्रवर्त्तयन् गोचरीम् आनयितुम् आलयान् प्राप्तु प्रतियन्तु हि वाचम् अवोचत् ।

अर्थ—तव उपस्थित मुनियो को प्रवृत्त करते हुए, विखरे से केशो की छिटकती हुई स्वच्छ छवि वाले इन आचार्यश्री ने गोचरी लाने के लिए घर-घर पहुँचने को जाइये, इस प्रकार बात कही ।

(५)

गृहं गृहं यन्ति यथाप्रकल्पितम्, विधातुमिच्छासदृशीं च गोचरीम् ।
विधाय सर्वे मुनयो यथाव्रतम्, इमामि मे ते प्रतियन्त्युपाश्रयम् ॥

अन्वयः—ते सर्वे मुनय यथा प्रकल्पित इच्छासदृशी च गोचरी विधातु गृह गृह यन्ति, इमे मुनय. इमा गोचरी यथाव्रतम् विधाय उपाश्रयम् प्रतियन्ति ।

अर्थ—गुरुदेव के आदेश से वे सव मुनिजन प्रकल्पित के अनुसार इच्छानुकूल गोचरी करने को घर-घर पहुँचते हैं। ये मुनिजन गोचरी को व्रत के अनुसार कर उपाश्रय लौटते हैं ।

(६)

उपाश्रयं प्राप्य नता इमे समे, धरन्ति पात्राणि गुरोस्तदान्तिके ।
मुनीश्वरस्तान्यवलोक्य सस्मितम्, पुनर्गुरुस्तानशितुं समुक्तवान् ॥

अन्वय.—तदा उपाश्रय प्राप्य इमे समे नताः मुनय गुरोः अन्तिके पात्राणि धरन्ति । पुन मुनीश्वर गुरु. तानि पात्राणि सस्मितम् अवलोक्य तान् मुनीन् अशितु समुक्तवान् ।

अर्थ – तव उपाश्रय पहुँचकर ये सव नम्र मुनिजन गुरु पास मे अपने पात्रो को रख देते है। फिर आचार्य गुरुदेव ने उन पात्रो को मुस्कान के साथ देखकर उन मुनियो को अशनार्थ आदेश किया ।

(७)

ततो दिनान्ते समये प्रतिक्रमम्, विधिं विधातु समुपस्थिता इमे ।
कृते विधौ ते मुनय. सुभावत, गुरुं महात्मानमिमं व्युपासते ॥

अन्वयः—तत इमे मुनय दिनान्ते समये प्रतिक्रम विधिं विधातु समुपस्थिता. (अभवन्) । विधौ कृते सति ते मुनय. सुभावत इम महात्मान गुरुं व्युपासते ।

अर्थ—तदनन्तर दिनान्त समय पर ये मुनिजन प्रतिक्रम (प्रतिक्रमण) विधि का सम्पादन करने के लिए उपस्थित हुए । प्रतिक्रमण के समाप्त होने पर वे मुनिजन श्रद्धा से इन महात्मा गुरुदेव की विशेष उपासना करने लगे ।

(८)

विशिष्ट सेवासमये महाशया, गुरोः सकाशे विविधाशयाश्रयाम् ।
अशोषशङ्का शमनाय मानसीम्, विरोधिशङ्कामधिगन्तुमीशते ॥

अन्वय—महाशया (मुनय) विशिष्ट सेवासमये अशेषशङ्काशमनाय गुरो सकाशे मानसी विविधाशयाश्रया विरोधिशङ्काम् अधिगन्तुम् ईशते ।

अर्थ—गम्भीर हृदय के मुनिजन विशिष्ट सेवा के समय पर सम्पूर्ण सन्देहो को शान्त करने के लिए गुरुदेव के पास मे मन मे सम्बन्ध रखने वाली अनेक अभिप्राय हैं आश्रय जिसके विरोधियो की शङ्का को समझने के लिए समर्थता प्राप्त करते हैं ।

(९)

ततश्शयान. श्रुतिशेमुषापति., विरोधिशङ्काशमनाय सुन्दरम् ।
विचाररत्न सकल प्रदेवितुम्, मुनीशवर्यो निकषं व्यबोधयत् ॥

अन्वय—तत शयान श्रुतिशेमुषीपति मुनीशवर्य्य विरोधिशङ्काशमनाय सुन्दर सकल विचाररत्न-प्रदेवितु निकषम् व्यवोधयत् ।

अर्थ—तदन्तर पौढे हुए श्रुतिबुद्धि के स्वामी आचार्य महाराज ने विरोधियो के सन्देहो को शान्त करने के लिए सुन्दर कलाओ के साथ विचार रूपी रत्न को उत्तेजित करने के लिए कसौटी वतादी ।

(१०)

विलक्षणं तं निकप विबुऽध्यते, निपेदिवांसोऽतिशयं व्यलासिषुः ।
परस्परं नाम हसन्ति सस्मयम्, कियन्महत्त्वं परमं हि नो गुरोः ॥

अन्वय'—ते मुनय. त विलक्षण निकप विवुध्य निषेदिवांस' सन्तः अतिशय व्यलासिपु. । (ते च मुनय) परस्परं-सस्मय हसन्ति, यत् नः गुरोः हि कियत् परम महत्व नाम ।

अर्थ—वे मुनिजन उस अनोखी कसौटी जानकर वैठे-वैठे अतिशय की चर्चा कर उठे । और वे ही मुनिजन मुस्कान के साथ परस्पर मे हँसने लगे कि हमारे गुरुदेव का कितना वडा महत्व है। जिसको हम अव तक नही समझ पाए, यह व्यङ्ग्यार्थ है।

(११)

अहर्निशं संयमिनां सतामिमम् क्रमं निरीक्ष्यातिशयं शरीरिणाम् ।
समे परं विस्मितमानसा इमे, जना. प्रशंसन्ति जिनेन्द्रशासनम् ॥

अन्वयः—शरीरिणा सयमिना सताम् अहर्निशम् इमम् अतिशय क्रम-निरीक्ष्य इमे समे विस्मितमानसा जना जिनेन्द्रशासन परप्रशसन्ति ।

अर्थ—शरीरधारी सयमी सन्तो के रात-दिन इस अतिशय क्रम को देखकर ये सब आश्चर्यचकित मनुष्य जिन भगवान् के प्रज्ञप्त धर्म की प्रशसा करते हैं और कहते हैं कि धर्म हो तो ऐसा (धर्म) हो।

(१२)

इदं महाश्चर्यकरं सुजीवनम्, यशश्च दिल्लीप्रतिसद्म विस्तृतम् ।
प्रसङ्गशङ्काङ्कुरयुक्तिमद्वच., जनायथेच्छं कथयन्ति चानिशम् ॥

अन्वयः—इद महाश्चर्यकर सुजीवनम्, यशश्च दिल्लीप्रतिसद्म विस्तृत जातम् । जना. च यथेच्छ प्रसङ्गशङ्काङ्कुरयुतिमत् वच अनिश कथयन्ति ।

अर्थ—यह मुनिजन-सम्वन्धी अत्यन्त आश्चर्यजनक प्रशस्त जीवन और यश दिल्ली नगर के घर-घर मे फैल गया । और जनता क्रम से सन्देह पर सन्देह जोड़े हुए कथानक इच्छानुसार हमेशा सुनाने लगे ।

(१३)

यदा समेषां विषयीभवन्नयम्, महामुनिर्गौरव-सौरभं वहन् ।
तदाऽनुभूतो यवनाधिभूभृता, बहादुरेणावगतश्च संश्रुत. ॥

अन्वयः—गौरव-सौरभ वहन् यदा समेषा विषयीभवन् अय महामुनि (अभवत्) । यदा यवनाधिभूभृता बहादुरेण (अपि) अयम् अनुभूत , अवगत. सश्रुत च जात ।

अर्थ—गौरव की सुगन्ध को वहन करते हुए जब सभी के विषय जैसे बने ये आचार्यजी महाराज मुगल बादशाह बहादुरशाह के द्वारा भी आपश्री अनुभूत, अवगत और सश्रुत हुए ।

(१४)

तदायमासीच्च बहादुरोऽधिप तनूजनेर्गर्भकथाव्यथाधर. ।
अतो महाक्रोधवशेन तेन सा, तनूजनिर्मृत्युपथाय कल्पिता ॥

अन्वय.—तदा च अयम् अधिप बहादुर तनूजने गर्भकथा व्यथाधर आसीत् । अत महाक्रोधवशेन तेन बहादुरेण सा तनूजनि मृत्युपथाय कल्पिता (अभवत् ।

अर्थ—और उस समय यह बादशाह बहादुरशाह पुत्री के गर्भ की कहानी की व्यथा को धारण किए हुए था । इसमे अत्यन्त क्रोध के अधीन हुए उस बहादुरशाह ने उस पुत्री को मृत्युदण्ड सुना दिया था ।

(१५)

अनेक यत्नैरवबोधितोऽप्यसौ, दृढोऽभवद् दण्डमिमं व्यवस्थितुम् ।
तदा स्थितोऽयं निकषा बहादुरम्, न्यवेदयत्तं खिवसी महोदय. ॥

अन्वयः—(यदा) असौ अनेकयत्नै अवबोधित. अपि इम दण्ड व्यवस्थितु दृढ अभवत् । तदा बहादुर निकषा स्थित अय खिवसीमहोदय तं बहादुरशाह न्यवेदयत् ।

अर्थ—वह अनेक यत्नो से समझाया-बुझाया हुआ भी इस मृत्युदण्ड की व्यवस्था करने के लिए जब दृढ रहा, तब बहादुरशाह के पास बैठे हुए दीवान खिवसीजी ने उस बहादुरशाह से निवेदन किया ।

(१६)

प्रसिद्धभण्डारिकुलावतंसक ; महीभृतो योधपुरस्य कारणात् ।
अयं प्रमन्त्री खिवसी महोदय , बहादुर सम्मिलितु तदागमत् ।।

अन्वयः—तदा अयं प्रसिद्ध भण्डारिकुलावतसक प्रमन्त्री खिवसी-महोदयः जोधपुरस्य महीभृतो कारणात् वहादुरं सम्मिलितु आगमत् ।

अर्थ—तव उस समय ये प्रसिद्ध भण्डारी कुल के भूषण दीवान श्री खिवसीजी जोधपुर के महाराज की वजह से वहादुरशाह से मिलने के लिए आए थे ।

(१७)

वहादुरं तं युवतिद्वयेऽप्यसौ, रिरंसुके गर्भ उपात्तविग्रहः ।
भवत्यहो मे गुरुदेव उक्तवान्, निवेदयन्नेवमभाषतेति स. ।।

अन्वय.—रिरंसुके युवतिद्वये सति असौ उपात्तविग्रह गर्भ अपि भवति एवम् अहो मे गुरुदेव उक्तवान् इति निवेदयन् सः खिवमीमहोदय. त वहादुरम् अभापत ।

अर्थ—कामार्त्त युवतिद्वय के होने पर यह शरीरधारी गर्भ भी होता है, इस प्रकार अहो मेरे गुरुदेवश्री ने फरमाया है—ऐसा निवेदन करते हुए उन खिंवसीजी ने उस वहादुरशाह से कहा था ।

(१८)

अथेति सत्यं यदि ते भवेदिदम्, तदादिशत्सोऽविरतं प्रतीक्षताम् ।
वध सुतायाः कृमिजं परीक्षितुम्, किमेति तथ्यं वचसश्च ते गुरोः ।।

अन्वय.—अथ ते इद सत्य यदि भवेत् तदा स सुतायाः वधम् अविरतं प्रतीक्षताम् इति कृमिज गर्भं परीक्षितुम् आदिशत् । ते गुरोः च वचस. कि तथ्यम् एति ।

अर्थ—यदि कही तेरा यह सत्य हो— इस आशङ्का से उस समय उस वहादुर-शाह ने पुत्री के कत्ल की अव प्रतीक्षा करो—ऐसा कृमिज गर्भ की परीक्षा करने के लिए, आदेश किया और तेरे गुरु के वचन का क्या तथ्य प्राप्त होता है ? यह भी ज्ञात हो जायेगा यह व्यङ्ग्यार्थ है ।

(१९)

तथेति काले विगते यथोदितम्, गुरोर्वचः सत्यमियाय साम्प्रतम् ।
यतो हि सर्वै.स बहादुरैर्जनैः, निरीक्षितो राजसगर्भजः स्वयम् ॥

अन्वय.—विगते काले गुरो यथोदित वच साम्प्रत सत्यम् इयाय । यतो स वहादुरै सर्वै . जनै स्वय राजसगर्भज इति तथा निरीक्षित. ।

अर्थ—समय वीतने पर गुरुदेव के कथनानुसार वात अव सत्य हुई । क्योकि वहादुरशाह के साथ सभी मनुष्यो ने स्वय रज के गर्भ से पैदा ऐसा वताया हुआ देखा ।

(२०)

अतः स्वयं तद्वचसो यथायथम्, प्रभावमन्त.करणे निधाय सः ।
बहादुरोऽसौ खिवसीसहायितः ददर्श देवेन्द्रगुरुं तदामरम् ॥

अन्वयः—अत स्वय तद्वचस. यथायथ प्रभावम् अन्त.करणे निधाय तदा स असौ खिवसीसहायित बहादुर देवेन्द्रगुरुम् अमर ददर्श ।

अर्थ—इसलिए स्वय उनके वचन के यथार्थ प्रभाव को अन्त करण मे रखकर तव खिवसीजी के साथ वही यह वहादुरशाह देवेन्द्र के गुरु अमरसिंहजी महाराज को देखने पहुँचा ।

(२१)

दयानिधानं यशसोऽमलच्छविम्, विकारगम्भीरसमुद्रमज्जितम् ।
जनोघमुत्तारयितुं धृतव्रतम्, तदानमत्तं मुनिपुङ्गवं नृपः ॥

अन्वय.—तदा नृप बहादुरशाह त दयानिधान यशस अमलच्छविं विकारगम्भीरसमुद्रमज्जित जनौघम् उत्तारयितु धृतव्रत मुनिपुङ्गवम् अनमत् ।

अर्थ—तव राजा वहादुरशाह ने उस परम दयालु, यश की पवित्र मूर्त्ति, विकार के गम्भीर समुद्र मे डूवे हुए जनसमुदाय को पार उतारने के लिए व्रत धारण करने वाले आचार्यश्री अमरसिंहजी महाराज को नमस्कार किया ।

(२२)

महामुनीन्द्रादमरादिहागतात्, तदायमात्मानमुपेत्य शिष्यताम् ।
उपस्थिते सन्मुनिमण्डलेऽमले, गुरोर्हि भक्तं समघोषयत् स्वयम् ॥

अन्वय:—इह आगतात् महामुनीन्द्रात अमरात् शिष्यताम् उपेत्य तदा उपस्थिते अमले सन्मुनिमण्डले अयम् आत्मान गुरो. भक्त स्वय हि समघोषयत्।

अर्थ—यहाँ पधारे हुए आचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज से शिष्यता प्राप्त कर तव उपस्थित पवित्र सन्मुनिमण्डल के रहते हुए इस वहादुरशाह ने अपने आपको गुरुदेव का भक्त स्वय ही घोपित किया।

(२३)

तदा दयालुर्मुनिपुङ्गवोऽधिपम्, बहादुरं पृच्छति धर्ममङ्गलम् ।
नृप. प्रसन्नो दयया मुनेरिमम्, गुरुं समादेशयितु न्यवेदयत् ॥

अन्वय—तदा,दयालु मुनिपुङ्गव. अधिप वहादुर धर्ममङ्गल पृच्छति। मुने· दयया प्रसन्न नृप. इम गुरुं समादेशयितु न्यवेदयत्।

अर्थ—उस समय दयालु आचार्यश्री ने राजा वहादुरशाह से धर्म-मङ्गल की पूछताछ की। मुनि की दया के कारण प्रसन्न हुए राजा ने आदेश करने के लिए निवेदन किया।

(२४)

सदाप्रसन्नेन सतामुना हृदा, बहादुरोऽय दयितुं च जीवितम् ।
प्रजाजनं धर्मपथेन सेवितुम्, प्रणोदितोऽभूद् भृशमानतस्ततः ॥

अन्वय:—तत अमुना सदा प्रसन्नेन सता भृशम् आनत वहादुर जीवित हृदा दयितु प्रजाजन च धर्मपथेन सेवितु प्रणोदित अभूत्।

अर्थ—तदनन्तर इन सदा प्रसन्न सन्त के द्वारा परमविनीत यह वहादुरशाह जीवित पर दया रखने के लिए और प्रजा को धर्म के मार्ग से पालने के लिए प्रेरित हुआ।

(२५)

गुरोर्यथादेशमहं यथायथम्, विधातुमेवं प्रयतेय शासने ।
विना निदेशं यदि राज्यशासने, हस्तस्य न क्षेपमहं सहे पुनः ॥

अन्वयः अह गुरो यथादेश विधातु शासने यथायथम् एव प्रयतेय। यदि राज्यशासने निदेश विना (हस्तक्षेपो भवति), तदा अह पुन हस्तस्य क्षेप न सहे।

अर्थ—मैं गुरुदेव के आदेश के अनुसार करने के लिए शासन में जैसा चाहिए वैसा ही प्रयत्न करूंगा। यदि राजा के शासन मे बिना निदेश के हस्तक्षेप होता है, तब मैं उस हस्त के क्षेप को नही सह सकता।

(२६)

अयं हि भण्डारिपदाभिशंसित॰, ततः प्रसङ्गानुमितेन चेतसा ।
गुरोर्मरु देशमितः प्रतीरणम्, व्यजिज्ञपत्तं पृथिवीपुरन्दरम् ॥

अन्वय॰—तत प्रसङ्गानुमितेन चेतसा भण्डारिपदाभिशसित अय खिवसी महोदय, इत गुरो ईरणम् मरु देश प्रति भविष्यति इति त पृथिवी-पुरन्दर व्यजिज्ञपत्।

अर्थ— तव फिर प्रसङ्ग से अनुमित चित्त से भण्डारिपदोक्त इन्ही खिवसीजी ने—यहाँ से गुरुजी का विहार मारवाड की ओर होगा ऐसा उस वादशाह वहादुरशाह को ज्ञात कराया।

(२७)

अतः प्रशंसासहितेन चेतसा, समादिशत्त खिवसीमहोदयम् ।
गुरो यदृच्छासहित व्यवस्थितुम्, मरोर्धराधीशमह स्वतोऽलिखम् ॥

अन्वयः—अत॰ (स) वहादुरशाह प्रशसासहितेन चेतसा त खिवसी महोदय समादिशत्—यत् अह स्वत मरो धराधीशम् गुरो यदृच्छासहित व्यवस्थितुम् अलिखम्।

अर्थ—इसलिए उस वहादुरशाह ने मय प्रशसा के हृदय से उन खिवसीजी को सूचित किया कि गुरुदेव की मर्जी के साथ प्रवन्ध करने के लिए मैंने स्वय मारवाड़ को लिख भेजा है।

(२८)

यथेच्छमिच्छुर्गमनस्य चेद् भवेत्, तदेव नेदं समभीप्सितं मम ।
यतो हि सन्तः सततोपकारिण. सदा सतां दर्शनमिच्छवो वयम् ॥

अन्वय.—अग्रेऽपि शाहस्त सूचयति—चेत् यथेच्छं गमनस्य गुरु इच्छु भवेत् तदा एव (अहमेतत्कर्त्तुमिच्छामि, किन्तु) इद मम समभीप्सित न (अस्ति)। यतो हि सन्तः सततोपकारिण भवन्ति, अत वय सदा तेषा सता दर्शनम् इच्छव स्म.।

अर्थ—आगे भी बहादुरशाह सूचित करता है कि यदि इच्छानुसार पदार्पण के गुरुदेव इच्छुक हो, तभी मैं यह किया चाहता हूँ, किन्तु यह मेरा चाहा हुआ नही है। क्योकि सन्त निरन्तर उपकारी होते है। अत हम सदा उन सन्तो के दर्शनाभिलाषी रहते हैं।

(२९)

अतः स्थितिं दूरहितार्थसाधने, विचार्य मन्त्री खिवसीमहोदय ।
विधौ गुरुं योजयितुं हिताय तम्, विनेतुमेवं यतते निरन्तरम् ॥

अन्वयः—अतः स्थितिं विचार्य मन्त्री खिवसी महोदय दूरहितार्थ-साधने विधौ हिताय त गुरु योजयितुम् एव विनेतु निरन्तर यतते।

अर्थ—इसलिए स्थिति को देखकर दीवान खिवसीजी साहब दूरगामी फल-वाले कार्य के लिए अपने गुरुदेव को योजित करने के लिए ऐसी विनति मे ही लगे रहते थे।

(३०)

यतोऽपि सत्यं यदि वर्त्तते पुन, तथापि कार्यं समतीव दुष्करम् ।
मरोर्धरायां यतय प्रपञ्चिनः, किमप्यपूर्वं तनुयुर्विडम्बनम् ॥

अन्वय.—यदि अपि सत्य वर्त्तते, तथापि कार्यं समतीव दुष्करम् अस्ति। यत प्रपञ्चिन यतय मरो धराया सन्ति, (ते) किमपि अपूर्व विडम्बन तनुयु।

अर्थ—यद्यपि सत्य है, तथापि कार्य बहुत ही कठिन है। क्योकि प्रपञ्ची यतिजन मारवाड़ की भूमि पर रहते है। वे कुछ भी अपूर्व विडम्बना फैला देंगे।

(३१)

अथ प्रबन्धाय हितप्रयोजने, विहारकार्ये परमोपयोगिनम् ।
पुनस्तमादेशमुपाय हेतुकम्, प्रलभ्य हर्षं भजते महोदय: ॥

अन्वय:—अथ हित प्रयोजने विहारकार्ये प्रवन्धाय त परमोपयोगिनम् उपायहेतुकम् आदेश प्रलभ्य पुन महोदय हर्षं भजते ।

अर्थ—बहादुरशाह के लिखित आदेश मिलने पर—हित-उपकार प्रयोजन वाले विहारकार्य के विपय मे प्रबन्ध करने के लिए उस परम उपयोगी उपायरूप हेतु आदेश को प्राप्त कर फिर दीवान खिवसी महोदय प्रसन्न हुए ।

(३२)

यतो मरो ते यतय: प्रवञ्चका:, विहारकार्ये दधति प्रसङ्कटम् ।
असूचयत्तं खिवसीमहोदयम्, मुनिर्महानेवमिदं तु पूर्वत: ॥

अन्वय—यत महान् मुनि एवम् इद तु पूर्वत त खिवसी महोदयम् असूचयत् यत् मरौ प्रवञ्चका यतय विहारकार्ये प्रसङ्कट दधति ।

अर्थ—क्योकि पूज्य मुनि महाराज ने इस प्रकार यह तो पहले ही इस दीवान खिवसी को सूचित कर दिया था कि मारवाड मे प्रवञ्चक यतिजन विहार-कार्य मे महान् सकट पैदा करते है ।

(३३)

पुनश्च हस्तीकृत सन्नियोजनम्, प्रबन्धमभ्येत्य दुरूहनिग्रहम् ।
पथा प्रयातुं मरुदेशमुर्वरम्, धर्म व्यवस्थापयितुं मुनिर्बभौ ॥

अन्वय.—हस्तीकृत सन्नियोजन प्रबन्धम् अभ्येत्य पथा दुरूहनिग्रहं मरुदेश प्रयातुम् उर्वर धर्म व्यवस्थापयितु मुनि बभौ ।

अर्थ—हस्तगत किया है सुन्दर नियोजन जिसका ऐसे प्रबन्ध को अधिगत मार्ग से अतर्कित हैं निग्रह जिसका ऐसे मारवाड देश को पहुँचने के लिए उपजाऊ धर्म को व्यवस्थित करने के लिए मुनिश्री दमक उठे ।

(३४)

भ्रान्तं तथापि महिमानमुपेयिवांसम् ,
जैनं जनं निगदितु' मुनयः परे ते ।
सन्तीति त मुनिजनेषु परोऽहमेकः ,
शक्नोमि तत्किमपि वक्तुमलं परेण ॥

अन्वयः—'ते परे मुनय· सन्ति' इति मुनिजनेषु पर. एकः अहम् त भ्रान्त तथापि महिमानम् उपेयिवांस जैन जन निगदितु शक्नोमि, तत् किं परेण अपि वक्तुम् अलम् ।

अर्थ—'वे दूसरे मुनिजन है' ऐसा मुनियो मे एक ही हूँ, जो उस भ्रान्त इतने पर भी प्रसिद्ध जैन जन को कहने के लिए समर्थ हूँ । क्या वह दूसरे भी कहा जा सकता है । अर्थात् नही ।

(३५)

लोका दिगम्बरमुनि धृतशुक्लवस्त्रम् ,
जानन्त्यपि प्रतिमुनि न परं तमन्यम् ।
साधोरुपासकमिमं श्रितवक्त्र-पत्तिम् ,
जानन्तु तं मुनिरहं प्रयते मरौ ते ॥

अन्वय—लोका· दिगम्बर मुनिं जानन्ति, धृतशुक्लवस्त्र मुनिम् प्रति अपि जानन्ति, (किन्तु) त धृतशुक्लवस्त्रम् अन्यम् श्रिततुण्डपत्ति साधो उपासकम् इमं पर मुनिं न जानन्ति । मुनिः अह मरौ त मुनिं ते लोका जानन्तु' (इति) प्रयते ।

अर्थ—मनुष्य दिगम्वर मुनि को जानते हैं, शुक्लवस्त्रधारी मूर्त्तिपूजक मुनि को भी जानते हैं, किन्तु उस शुक्ल वस्त्रधारी दूसरे मुखपति वाले श्रमणोपासक इस दूसरे अर्थात् विशिष्ट मुनि को नही जानते । मुनि अमरसिंह मैं 'मारवाड मे भी उस मुनि को वे मनुष्य जाने' ऐसा प्रयत्न करता हूँ ।

इति श्रीमता राजस्थानकेसरिणा पण्डितरत्नेन
उपाध्याय पदालङ्कृतेन पुष्करमुनिना विरचिते
श्रीमदाचार्यामरसिंह महाकाव्ये
अष्टम· सर्गः



नवमः सर्ग;

(१)

ये सन्ति देवसदृशो गरिमाणमाप्तम् ,
धर्मं प्रतिष्ठितमरे लघिमानमन्ये ।
प्राप्तुं चरन्ति विकृतान् यतिनो जनांस्तान् ,
रोद्धुं कृतोद्यमसमांस्तु मुनीन् नमामि ॥

अन्वय—ये देवसदृश. सन्ति, (ते मुनय) गरिमाणम् आप्त प्रतिष्ठित धर्मं प्राप्तु चरन्ति, अरे अन्ये यतिन तु (तमेव) धर्मं लघिमान प्राप्तु चरन्ति। तान् विकृतान् यतिन जनान् रोद्धु ये कृतोद्यमसमा मुनय. सन्ति, तान् देवसदृश कृतोद्यमसमान् मुनीन् (पुष्कर मुनि) अह नमामि।

अर्थ—जो देवो के समान हैं, वे मुनिजन गौरवापन्न प्रतिष्ठित धर्म को प्राप्त करने के लिए आचरण करते हैं, दु ख है कि दूसरे यतिजन तो उसी धर्म को लाघव प्राप्त हो, ऐसा आचरण करते हैं, ऐसे उन विकृत यतिजन को रोकने के लिए जो कृतोद्यम सदृश मुनिजन रहे, ऐसे उन देवतुल्य कृत प्रयत्न जैसे मुनियो को (पुष्कर मुनि) मैं प्रणाम करता हूँ।

(२)

आसीदसौ जयपुरस्य कथानकेन ,
लोकेऽपि सिद्ध इव भूमिगतः प्रतीतः ।
भक्ता इमं त्वमरसिंह मुनिं मुनीशम् ,
नन्तुं गुरोश्चरणयो. समुपागमंस्ते ॥

अन्वयः—लोके जयपुरस्य कथानकेन अपि भूमिगत सिद्ध इव असौ प्रतीत आसीत्। ते भक्ता तु गुरो चरणयो नन्तुम् इम मुनीशम् अमरसिंह मुनिं समुपागमन्।

अर्थ—ससार मे जयपुर के कथनोपकथन से भी भूमि पर पधारे हुए सिद्ध के समान जान लिए गये थे। वे भक्त तो गुरुदेव चरणो मे प्रणाम करने के लिए इन आचार्यश्री अमरसिंहजी के पास पहुँचे थे।

सर्गेऽस्मिन् 'वसन्ततिलका त्भौ जौ गौ।'

(३)

जातो महान् जयपुरे पटवाकुलीनः ,
श्रीरङ्गलालधनिकः कुरुते प्रतिज्ञाम् ।
द्रव्यस्य संग्रहमतस्त्वधिक न कुर्याम् ,
सीमां तदा पुनरय यतते निकृष्टाम् ॥

अन्वयः—जयपुरे जात. पटवाकुलीन. महान् श्रीरङ्गलालधनिकः प्रतिज्ञा कुरुते यद् (अह) तु द्रव्यस्य सग्रहम् अधिक न कुर्याम् । अत. तदा अयम् (द्रव्यस्य) पुन सीमा निकृष्टा यतते ।

अर्थ—जयपुर मे उत्पन्न हुए पटवा वश के वडे धनी श्री रगलालजी ने प्रतिज्ञा की कि गुरुदेव ! अव मैं तो धन का सग्रह अधिक नही करूँगा । इसलिए ये द्रव्य की सीमा वहुत कम करने का प्रयत्न करने लगे ।

(४)

बोध्योऽभवन्ननु पुनर्मुनिनामुनासौ ,
द्रव्यस्य सग्रहमिमं ननु शोचय त्वम् ।
यस्माददः समधिकं धनमेतदेवम् ,
दानेऽधिकं पुनरतो व्ययमेतु नित्यम् ॥

अन्वयः—पुन अमुना मुनिना असौ धनिक श्रीरगलाल बोध्यः अभवत्, यत्ननु त्वम् इम द्रव्यस्य सग्रह शोचय । सीमा सकुचिता न कुर्या. इत्यर्थ. । यस्मात् अद समधिक धनं (भवेत्) अत. एवम् एतत् धन दाने अधिक व्यम् नित्य पुन एतु ।

अर्थ—सेठजी के भाव को समझे हुए उन मुनि महाराज के द्वारा उनको समझाया गया कि तुम इस द्रव्य के सग्रह की सीमा सोच लो । जिससे कि यदि यह धन अधिक होगा तो फिर वह दान आदि मे दिया जा सकेगा और पुण्य का कार्य चलता रहेगा ।

(५)

सर्वे तदानुभविनोऽस्य महामुनेस्ते ,
संवीक्ष्य तस्य विभव क्षणशोविवृद्धम् ।
श्री रंगलालधनिकस्य मनोरहस्यम् ,
सीमाभि-भंग करणे प्रकट प्रथन्ते ।

अन्वयः–तदा ते सर्वे अनुभविन तस्य श्री रङ्गलालधनिकस्य क्षणश· विवृद्ध विभव सवीक्ष्य अस्य महामुने· सीमाभिवृद्धिकरणे मनोरहस्य प्रकट प्रथन्ते ।

अर्थ—तब वे सब अनुभवी पुरुप, श्रीरगलाल धनाढ्य के क्षण-क्षण मे बढते हुए धन-सम्पत्ति आदि को देखकर इन आचार्यश्री के द्रव्य सग्रह की सीमा के बढवाने करने मे मन के रहस्य को प्रकट करने लगे ।

(६)

साकं महामुनिरयं मुनिमण्डलेन ,
प्रस्थाय चिच्छति पुनर्नगरादितस्तम् ।
मध्येगतं त्वजयमेरुमपीह दृष्ट्वा ,
चण्डावल प्रति पुर त्वरया विहर्त्तुम ।।

अन्वयः–सम्प्रति अय महामुनि. मुनिमण्डलेन साकम् इत नगरात् प्रस्थाय पुन इह तु त मध्येगतम् अजयमेरुम् अपि दृष्ट्वा चण्डावल पुर प्रति विहर्त्तुम् इच्छति ।

अर्थ—सम्प्रति ये आचार्यश्री अपने मुनि मण्डल के साथ इस जयपुर नगर से प्रस्थान कर और फिर यहाँ पर उस इतिहास प्रसिद्ध मध्यवर्त्ती अजमेर को देखकर चण्डावल ग्राम को ओर विहार की इच्छा करने लगे ।

(७)

श्रीमन्मुनीन्द्रमुनिशुभ्रपदारविन्दम् ,
चण्डावलं नगरकं प्रति वृद्धिमेति ।
श्रुत्वेति हृष्टहृदयाः स्वजना विरेजुः ,
दुःखं शनैः पुनरिदं यतिभिर्विमृष्टम् ॥

अन्वयः—श्री मन्मुनीन्द्र मुनिशुभ्र पदारविन्द (कर्त्तृ) नगरक चण्डावल प्रति वृद्धिम् एति-इति श्रुत्वा हृष्टहृदया. स्वजना. विरेजुः । किन्तु यतिभि. पुनः शनै इद दु.खमेव विमृष्टम् ।

अर्थ—श्रीमान् आचार्यश्री अमरसिंह मुनि के स्वच्छ अथवा पवित्र चरणकमल उपग्राम चण्डावल की ओर बढ रहे हैं—ऐसा सुनकर भक्तजन परम प्रसन्न हो उठे। किन्तु यतियो ने फिर धीरे-धीरे इसको दु ख ही माना अथवा सोचा।

(८)

स्थाने प्रभावमतुलं प्रसमीक्ष्य तीक्ष्णम् ,
तेषां मतौ विकृति सञ्ज्वलनं यतीनाम् ।
जात ततो मनसि ते निरतं ज्वलन्तः ,
मृत्युं मुने रचयितुं प्रयता अभूवन् ॥

अन्वयः—आचार्यस्य अतुल प्रभाव स्थाने तीक्ष्णम् प्रसमीक्ष्य तेषां यतीना मतौ विकृतिसञ्ज्वलन जातम्, तत ते मनसि निरत ज्वलन्तः मुनेः मृत्यु रचयितु प्रयता अभूवन् ।

अर्थ—आचार्यश्री अमरसिंहजी के अनुपम प्रभाव को स्थान पर तीखा विचार कर उन यतियो की बुद्धि पर विकार की जलन बन गया। इससे वे मन मे एक साथ जल उठे। (अतएव) वे आचार्यश्री की मृत्यु के षड्यन्त्र मे संलिप्त हो गए।

(९)

ये सन्ति दुष्टमतयो विषमा दुरन्ताः ,
एवं सदैव विकृतिं परमा लभन्ते ।
कच्चित् प्रयत्नविफला. परिणाममन्यम् ,
भोक्तु व्रजन्ति नियतं दुरितं सहन्ते ॥

अन्वयः—ये दुरन्ता विषमा दुष्टमतय सन्ति, ते एवम् एव सदा परमाविकृतिं लभन्ते । कच्चित् ते एव प्रयत्नविफला सन्त , अन्य परिणाम भोक्तु व्रजन्ति, (तदन्ते) ते नियत दुरित (च) सहन्ते ।

अर्थ—यह एक व्यवहार की बात है कि जो दुरन्त, विषम और उधमी होते है, वे ऐसे ही वडे कुढंल वन जाते है । सम्भवत वे ही अपने इरादे मे विफल हो, दूसरे नतीजे उठाते है । और हो सकता है कि वे ही निश्चित ताप भोगते हैं ।

(१०)

ख्यातां विपन्न-हृदया अधिसोजत ते ,
यत्नेन मस्जिदगृहे वसतिं विधातुम् ।
भूताधिवासनियते मरणं विचिन्त्य ,
सन्तं निवासयितुमेतमतो यतन्ते ॥

अन्वयः—ते विपन्नहृदया. यतय अधिसोजत भूताधिवासनियते मस्जिदगृहे, मरण विचिन्त्य यत्नेन ख्याता वसति विधातुम्, अत एत सन्त (तत्र) निवासयितु यतन्ते ।

अर्थ—वे ही विपन्नहृदय के यतिजन सोजत मे जिन्दवाली मस्जिद मे मृत्यु को सोचकर कि जो इसमे रहता है, उसको जिन्द मार डालता है—यत्न से 'आप यहाँ ही विराजिए' कहकर इन सन्तजी को मस्जिद मे ठहराने के लिए यत्न करने लगे ।

(११)

दुष्टा इमे यदि कृतौ सफला भवेयु ,
जायेततन् जगदिदं विफलं पुनस्तु ।
निश्चेतुमस्मि पुनरेवमिद हि सत्यम् ,
नित्यं सदा विजयते न तु चानृतं तत् ॥

अन्वयः—इमे दुष्टा यदि कृतौ सफला भवेयु तदा तु पुन इद जगत् तत् विफल जायेत । पुन अहम् 'इद सत्यम् हि तदा नित्य विजयते, न च तत् अनृतम्' एवं निश्चेतु तु अस्मि ।

अर्थ—यह व्यवहार की ही बात है कि—ये दुष्ट यदि अपनी करतूत मे सफल हो जाते तो फिर यह जगत् विफल हो जाता । इसलिए मैं—यह सत्य ही सदा जीतता है, और वह झूठ हारता है—इस प्रकार निश्चय करने के लिए समर्थ हूँ ।

(१२)

धर्मं विहाय यतयश्चरितुं कुकृत्यम् ,
भक्तानिमान् प्रवितथ गमयन्ति भावम् ।
तस्मादिमं मुनिवरं मुनिभिः समेतम् ,
नंष्टुं तदा विकरणैर्विविधै र्यतन्ते ॥

अन्वय—यतय धर्मं विहाय कुकृत्य चरितुम् इमान् भक्तान् प्रवितथ भावं गमयन्ति । तदा ते तस्मात् विविधैं विकरणै. मुनिभि. समेतम् इम मुनिवरं नष्टु यतन्ते ।

अर्थ—यतिजन धर्म को छोडकर कुकृत्य करने के लिए इन अपने भक्तो को झूठा भाव समझाते हैं । तब वे मुनियो के द्वारा वास्तविक भाव के समझाने के कारण, अनेक उपायो से मुनियो के साथ इन आचार्यश्री अमरसिंहजी महाराज को नष्ट करने के लिए प्रयत्न करने लगे ।

(१३)

आसीदयं यतिजनै रचितेपु तेपु ,
प्रोक्तेषु केवलमत· स उपाय एकः ।
येन स्वयं मुनिरयं मरण लभेत ,
तर्केत कोऽपि निधने यतिनो न तस्य ॥

अन्वय—अत यतिजनैः रचितेषु प्रोक्तेपु तेपु केवलम् सः एक. अयम् उपाय (अवशिष्ट) आसीत्—येन अय मुनि स्वय मरण लभेत, क अपि च तस्य (आचार्यस्य) निधने यतिन न तर्केत ।

अर्थ—इसलिए अव यतियो के रचे गए कथित उन उपायो मे से केवल यही एक उपाय वाकी था कि जिससे ये मुनिराज स्वय मृत्यु को प्राप्त करे और कोई भी उन आचार्यश्री के मरण पर यतिजन को तर्क न कर सके ।

(१४)

वस्तु तदा मुनिजनेषु महाविशिप्टः ,
आयात्यसावनुमति पुर एव नेतुम् ।
यत्नोऽप्ययं विफल एव भवेद् यतीनाम् ,
इत्येव बोधयितुमेवमिहागतोऽयम् ॥

अन्वय—तदा असौ मुनिजनेषु महाविशिष्ट वस्तु पुर एव अनुमति नेतुम् आयाति । यतीनाम् अय यत्न अपि विफल· एव भवेत् इति एवम् बोधयितुम् एव अयम् इह आगत (अस्ति) ।

अर्थ—तव वे मुनिजनो मे परम आदरणीय आचार्यश्री निवास करने के लिए पूर्व मे ही अनुमति प्राप्त करने को पहुँचे । यतियो का यह षड्यन्त्र भी विफल हो—ऐसा इस प्रकार वतलाने के लिए ही ये यहाँ मस्जिद मे उपस्थित हुए ।

(१५)

घस्रो महामुनिसनाथविराजितेषु ,
सोढुं भयङ्करमुपद्रवमेव मातः ।
सायं प्रतिक्रमविधौ मुनिषु प्रवृद्धः ,
भूतस्य तस्य शनकैर्विषमोपसर्गः ॥

अन्वयः—इह मस्जिदगृहे महामुनिसनाथविराजितेषु मुनिषु घस्रः भयङ्करम् उपद्रवं सोढुम् एव यातः। सायं प्रतिक्रमविधौ सति तस्य भूतस्य शनकैः विषमोपसर्गः प्रवृद्धः (अभवत्)।

अर्थ—इस मस्जिद के घर मे आचार्य श्री के साथ विराजित मुनियो के रहते हुए दिन तो भयकर उपद्रव को सहने के लिए चलता हुआ। साय मे प्रतिक्रण के समाप्त होने पर उस जिन्द का धीरे-धीरे विषम उपसर्ग वढने लगा।

(१६)

सन्तं विभीषयितुमाकृतिमाविधूय ,
भूतो भयङ्करमुखः करपाद-घातैः ।
शारीरिकी स्थितिमतीव विकृत्य नृत्यन् ,
ब्रूते भवानिह कथं रमते यथेच्छम् ॥

अन्वय.—भयङ्करमुखः भूत. आकृतिम् आविधूय करपादघातैः सन्तं विभीषयितुं शारीरिकी स्थितिम् अतीव विकृत्य नृत्यन् ब्रूते—इह भवान् यथेच्छ कथ रमते।

अर्थ—भयङ्करमुख का जिन्द आकृति को कँपाकर हाथ और पैर की चोटो के साथ आचार्यश्री को डराने की इच्छा के लिए शरीर की हालत को खूब विगाड कर नाचता हुआ पूछने लगा कि इस मस्जिद मे हजरत कैसे मौज उडा रहे है?

(१७)

नीत्या भयङ्करमशेषमथोपसर्गम् ,
मौनं विधाय सहते मुनिपुङ्गवोऽसौ ।
वीजाक्षरैः सह जपन् स्तुति-मन्त्र-वृन्दम् ,
भूतस्तदा पुनरय विरराम रात्रौ ॥

अन्वयः—तदा असौ मुनिपुङ्गव: अशेष भयङ्करम् उपसर्गं नीत्या मौन विधाय वीजाक्षरै सह स्तुति-मन्त्र-वृन्द जपन् सहते। अथ पुनः अय भूतः रात्रौ विरराम।

अर्थ—उस समय उन आचार्यश्री ने पूर्ण भयङ्कर उपसर्ग को नीति के साथ चुप्पी रखकर वीजाक्षरो के साथ स्तुति और मन्त्रो को जपते हुए सह लिया। तदनन्तर फिर यह जिन्द रात्रि मे शान्त होकर वैठ गया।

(१८)

सन्तं महान्तमनुभूय विचारमग्न. ,
ब्रूते कृताञ्जलिरयं गरिमाणमाप्तम् ।
भूतः स्वयं कथयितुं श्रयतेऽभिलाषम् ,
लज्जे परं मनसि ते विपदं प्रदातुम् ॥

अन्वय—गरिमाणम् आप्त महान्तम् सन्तम् अनुभूय अय विचार-मग्नः भूत. स्वय कथयितुम् अभिलाप श्रयते। कृताञ्जलिः च सन् ब्रूते यत् ते विपद प्रदातु (अहं) मनसि परं लज्जे।

अर्थ—गौरवशाली महान् सन्त अनुभव कर यह घबराया हुआ जिन्द स्वय अपनी इच्छा से कहने लगा और हाथ जोड कर निवेदन करने लगा कि आपको कष्ट देने के [illegible] मैं अपने मन मे बडा लज्जित हूँ।

(१९)

कष्टं कदापि यवनो भवते न दद्याम् ,
सोऽहं पुनश्च विफलोऽपि फलं ददामि ।
दोपस्य तस्य च कृते यदि कोऽपि दण्डः ,
दीयते तत्र भवता तमहं सहेय ॥

अन्वय – यवन. स अह कदापि भवते कष्ट न दद्याम्, पुनश्च विफल. सन् फलं ददामि । तस्य च दोपस्य कृते यदि तत्रभवता क. दण्ड. अपि दीयेत तर्हि अहं तं दण्डं सहेय ।

अर्थ—मुसलमान होकर मैं कभी आपको कष्ट नही दूंगा । और फिर विफल रहकर मैं आपको भेंट देता हूँ । और मेरे अपराध के लिए यदि आपश्री के द्वारा कोई दण्ड दिया जाता हो तो उस दण्ड को मैं अवश्य वर्दाश्त करूंगा ।

(२०)

जातः प्रसन्न हृदयोऽहमपि प्रसन्नम् ,
श्रीमन्तमत्र शयितुं यदि वापि वस्तुम् ।
सन्तं कदापि विपरीतमतो न मन्स्ये ,
सद्यो विहाय विकृतिं मनसोऽद्य यामि ॥

अन्वयः—अहम् अपि प्रसन्नहृदयः जातः (अस्मि) । अत. प्रसन्न सन्त श्रीमन्तम् अत्र शयितु यदि वा वस्तुम् अपि (अह) कदापि विपरीतं न मन्स्ये । (अहं) मनस विकृतिं विहाय अद्य सद्यः यामि ।

अर्थ—मैं भी प्रसन्न हुआ हूँ, इसलिए प्रसन्न हुए श्रीमान् को यहाँ सोने अथवा रहने को भी मैं कभी उलटा नही मानूगा । मैं अपने हृदय की बुराई को छोड आज अभी जा रहा हूँ ।

(२१)

अद्य प्रभृत्यहमिमान् यवनान् स्वतोऽत: ,
स्थानं त्विदं परिजिहासयितुं विधास्ये ।
अस्मात्परं मुनिजना: सततं वसेयु: ,
प्रोच्येत्यसौ त्वरितमेव तत: प्रयात: ॥

अन्वयः—अत अहं तु अद्यप्रभृति इमान् यवनान् इद स्थान स्वत परिजिहासयितु विधास्ये (येन) अस्मात् परम् (अत्र) मुनिजना. सतत वसेयु इति प्रोच्य असौ भूत. तत. त्वरितम् एव प्रयात: ।

अर्थ—इसलिए मैं तो आज से इन मुसलमानो को इस स्थान को अपने आप छुडवा देने के लिए उद्यत करूँगा । जिससे कि इसके बाद मुनिजन यहाँ सदा रह सकें, ऐसा कह कर वह जिन्द उस मस्जिद से शीघ्र ही चल दिया ।

(२२)

सूर्योदये विशदभासि विचारपापा: ,
सन्तं दिने विकृतबुद्धय एव बोद्धुम् ।
आयान्ति जातमिति किं विगते निवासे ,
दृष्ट्वा मुनिं परिहसन्ति परस्परं ते ॥

अन्वय.—विशदभासि सूर्योदये विकृतबुद्धय. विचारपापा. विगते दिने निवासे कि जातम् इति सन्तम् बोद्धुम् एव आयान्ति, (किन्तु) ते मुनिं दृष्ट्वा परस्पर परिहसन्ति ।

अर्थ—स्वच्छ कान्तिवाले सूर्य के उदय होने पर बिगडी बुद्धि के ढोंगी, गत दिन मे मुनियो के निवास के विषय मे 'क्या हुआ' इससे सन्त को समझने के लिए आते हैं । किन्तु वे मुनिराज को देखकर एक दूसरे की खिल्ली उडाने लगते हैं ।

(२३)

हासं विहाय विकृताः प्रतियन्ति भक्ताः ,
प्रष्टुं पुनर्विकृतिनो यतिनो जनांस्ते ।
जातं कुतस्तु निधनं न मुनेरिदं यत् ,
यूयं स्थ दूषितमता यतयोऽत एवम् ॥

अन्वयः—एवं पुनः हास विहाय ते विकृताः (यतीनां) भक्ता. विकृतिनः यतिनः जनान् प्रष्टुं प्रतियन्ति, यत् मुने. इद निधन कुतः न जातम् ? अत. यतयः यूयम् दूषितमता. स्थः ।

अर्थ—इस प्रकार फिर हँसी-मजाक छोड़कर विगडे हुए वे यति भक्त विकृत यतिजनो से पूछते हैं कि तुम कहते थे कि मुनिजी को इस प्रकार निश्चितरूप मे संसार से मिटा दिया जायेगा—तो फिर मुनिजी का निधन किस कारण से न हो पाया ? इसलिए तुम यति लोग अपसिद्धान्ती हो। अर्थात् तुम्हारी वात का कोई भरोसा नहीं है।

(२४)

रुष्टा विरुद्धगतयो यतिनोदितास्ते ,
नित्यं परस्परमतो गमनस्य मार्गम् ।
रुन्धन्ति यान्तु यतयो यदि वा वसन्तु ;
शान्ति भजन्त्विति पुनर्वद वा व्रजेतः ॥

अन्वयः—अत. यतिनोदिताः विरुद्धगतयः रुष्टाः सन्तः ते परस्परं गमनस्य मार्ग रुन्धन्ति। रुध्यमानं प्रेरयन्ति यत् त्वम्—यतय. यान्तु यदि वा वसन्तु, किन्तु शान्ति भजन्तु इति वद वा त्वम् इत व्रज।

अर्थ—इसलिए यतिप्रेरित उलटे नाराज हुए वे अव परस्पर मे जाने के रास्ते को रूंध देते हैं और रुंधे हुए व्यक्ति को प्रेरित करते हैं कि अव तू, यति लोग जाएँ यदि वा रहे, किन्तु वे शान्त रहें—ऐसा वोल, अथवा यहाँ से भाग।

(२५)

इत्थं विवेकिन इमे सरलाः प्रसन्नाः ,
भक्तास्तदा विकृतिनो यतिनो निषेद्धुम् ।
गच्छन्ति जातु सकलं निहितं रहस्यम् ;
किं वा भवेदिह यदा यदि वा प्रतीयुः ॥

अन्वयः—तदा इमे सरला प्रसन्ना विवेकिन. भक्ताः विकृतिनः—यतिन निषेद्धु गच्छन्ति, इत्थ जातु यदि वा ते मुनिभक्ता. सकलं निहित रहस्य प्रतीयु यदा इह कि वा भवेत् !

अर्थ—तब ये सीधे-सादे प्रसन्न विवेकी भक्त विकृतयतियों को मना करने पहुँचते है और इस प्रकार (कहते हैं) कि कदाचित् यदि उन मुनिभक्तों को सब छिपा हुआ रहस्य मालूम पड जाए, तब फिर क्या होगा ? अर्थात् द्वेष की आग फैल जायेगी, तब लेने-के-देने पड जायेंगे ।

(२६)

तस्मादिमे सुमतयो यतिनां कुसङ्गम् ,
भक्ता व्रजन्ति परिहाय मुने समीपम् ।
पृच्छन्ति तं मुनिवर सुमतिं ग्रहीतुम् ,
दुष्टा भवन्ति सुजना समयानुसारम् ॥

अन्वयः—तस्मात् इमे सुमतय यतिभक्ता यतिना कुसङ्गं परिहाय मुने. समीप व्रजन्ति । (ते च भक्ता) त मुनिवर सुमति ग्रहीतु पृच्छन्ति । यतो हि दुष्टा समयानुसार सुजना भवन्ति ।

अर्थ—इससे ये समझदार यतियो के भक्त अब यतियो के कुसङ्ग छोडकर मुनि महाराज की सेवा मे पहुँच जाते हैं । और वे भक्त सद्ज्ञान प्राप्ति के लिये मुनि राजश्री से प्रश्न करते हैं । क्योंकि दुष्ट भी समय के अनुसार अच्छे पुरुष बन जाते हैं ।

(२७)

जैनास्तदागमविधि प्रणिपत्य सर्त्तुम् ;
धर्मं सनातनममुं समुपासताद्यम् ।
चक्रं विहाय वितथं यतिनां समेषाम् ,
आयान्ति ते मुनिजनस्य पदेषु नन्तुम् ॥

अन्वय—तदा जैना. आगमविधि सर्त्तुम् अमुम् आद्यं सनातनं धर्मं समुपासत। समेषां यतिना वितथ चक्र विहाय ते मुनिजनस्य पदेषु नन्तुम् आयान्ति।

अर्थ—उस समय आगमो के विधान का अनुसरण करने के लिए उस अनादि से सदा चले आने वाले धर्म की उपासना की। सभी यतियो के झूठे जजाल को छोड कर वे मुनियो के चरणो मे नमन करने के लिए आए।

(२८)

सर्वे ततो मुनिवरं सुसतामधीशम् ,
ज्ञातुं विलक्षसदृशः शतशो यतन्ते ।
ज्ञात्वा भवन्ति शरणागमिनोविशिष्टाः ,
शिष्या इमे प्रमुखत सदुपासकास्ते ॥

अन्वयः—तत सर्वे सुसताम् अधीश मुनिवर ज्ञातु विलक्षसदृश: शतश. (जना.) यतन्ते। ज्ञात्वा (च) इमे प्रमुखत: सदुपासका शरणागमिन विशिष्टा. शिष्या. भवन्ति।

अर्थ—तदनन्तर सभी मनुष्य सन्तशिरोमणि मुनिवर को जानने के लिए आश्चर्यचकित जैसे सैकडो ही वार प्रयत्न करने लगे। और जानकर ये मुख्यरूप मे सच्चे उपासक शरणागत विशिष्ट शिष्य वन गये।

(२९)

एवं महामुनिरयं प्रथमो विधाता ,
जातो मरोर्भुवि धराधिपमौलिवन्द्य. ।
सद्धर्मधारकशिरोमणिरेवभूमौ ,
शास्ता बभूव जगतो जिनशासनस्य ॥

अन्वय'—एव मरो भुवि अय महामुनि. धराधिपमौलिवन्द्य' प्रथमः विधाता जात. । भूमौ एव जिनधर्मशासनस्य जगत. सद्धर्मधारकशिरोमणि. शास्ता बभूव ।

अर्थ—इस प्रकार मारवाड की पृथ्वी पर ये आचार्य श्री अमरसिंहमुनि महाराज राजाओ की मौलि से वन्दनीय प्रथम श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय के विधाता हुए। पृथ्वी पर ही जिनधर्मशासन के जगत् के सद्धर्मधारको के अग्रणी आचार्य आप थे।

(३०)

ख्याति मुनेरतिशयामतुलां निशम्य ,
सोढुं समे यतिजना विफला बभूवु: ।
सम्भूय घोषमपरं रटितुं प्रवृत्ता: ,
शास्त्रानुसारि कथनं न मुनेस्तदेतत् ॥

अन्वयः—मुने. अतुलाम् अतिशयां ख्याति निशम्य सोढु समे यतिजनाः विफला' बभूवु, तदा (ते) सम्भूय अपर घोप रटितु प्रवृत्ता. (यत्) मुने एतत् कथन शास्त्रानुसारि न (अस्ति)।

अर्थ—आचार्य श्री अमरसिंहमुनि महाराज की अद्वितीय अतिशय प्रशसा को सुनकर सहन करने के लिए सभी यतिजन असफल हुए, तब वे एकत्र होकर एक नारा रटने लगे कि मुनिराजश्री का यह उपदेश शास्त्र के अनुसार नही है।

(३१)

यत्ने पराजयममुं परिभाव्य चित्ते ,
भक्तान् विभावयितुमेव तथा हि घोपम् ।
कुर्वन्ति ते विवदितुं मुनिनैव साकम् ,
दुष्टाः सदैव सुजनान् प्रतिकर्त्तुमीशा ॥

अन्वयः—यत्ने सति अमु पराजयं चित्ते परिभाव्य एव ते भक्तान् विभावयितुम् घोप हि तथा मुनिना साकम् विवदितुम् एव कुर्वन्ति । (यतो हि) दुष्टाः सुजनान् प्रतिकर्त्तुं सदा एव ईशाः (भवन्ति) ।

अर्थ—यत्न के होने पर उस पराजय को हृदय मे विचार कर ही वे यतिजन भक्तो को समझाने के लिए नारा, वैसे ही कि मुनि महाराज के साथ शास्त्रार्थ होगा ही, लगाने लगे । क्योकि दुष्ट पुरुप भद्र पुरुषो का प्रतीकार करने के लिए सदैव समर्थ है ।

(३२)

एवं सदैव नियतं प्रचरन्ति सर्वे ;
नालाति कोऽपि यतिनां कथनाय वृत्तम् ।
तस्मात्तथा मुनिरयं स्वयमेवमूचे ,
प्रायध्वमस्म्यहमतीव तु तत्परोऽपरः ॥

अन्वयः—क अपि यतिना 'कथनाय वृत्त न आलाति, एवं सर्वे ते नियत प्रचरन्ति । तस्मात् अयं मुनि. एव तथा स्वयम् ऊचे, यत् यूय प्रायध्वम्, अह तु अपरः अतीव तत्पर. अस्मि ।

अर्थ—कोई भी यतियो के कहने के लिए समाचार नही लाता, इस प्रकार सव वे पक्का प्रचार करते है । उससे सावधान हो, आपश्री अमरसिंह मुनिजी ने भी स्वय ललकार फरमाया कि तुम आओ तो, दूसरे मैं तो आवश्यकता से अधिक तैयार वैठा हूँ ।

(३३)

श्रुत्वा मुनेर्वचनमद्भुतमेव मत्त्वा ,
हासं विधाय चरमे त इमे यतीनाम् ।
स्वीयानमून् यतिवरान् गदितुं यथोक्तम् ।
दूता. प्रयान्ति च तदा प्रतिबोधनाय ॥

अवन्यः—तदा एव मुने. वचन श्रुत्वा अद्भुत मत्वा हास च विधाय इमे यतीना चरमे ते अमून् स्वीयान् यतिवरान् यथोक्त गदितु (दूतान् नियुक्तवन्त)। (अतस्ते) दूता प्रतिबोधनाय प्रयान्ति ।

अर्थ—उसी समय मुनि महाराज के वचन, सुनकर, अद्भुत मान और मजाक उडा इन अतितुच्छ यतियो ने ही उन अपने श्रेष्ठ यतियो को उक्त का अतिक्रमण न कर बताने लिए दूतो को नियुक्त किया। अब वे दूत सूचना देने को चल दिये ।

(३४)

पूर्वं तु ते कलयितुं प्रभवो न जाताः ,
दूतान् निरीक्ष्य यतय कथयन्ति सर्वे ।
वक्तुं किमर्थमिति ते प्रचरन्ति मिथ्या ,
जातं तथापि समये करणीयमास्ते ॥

अन्वय—पूर्वं तु ते कलयितु प्रभव न जाता (आसन्)। (किन्तु अन्ते सर्वे यतय दूतान् निरीक्ष्य कथयन्ति, ते (स्वीया यतय) किमर्थं वक्तुमिति' मिथ्या प्रचरन्ति। अस्तु-जात यज् जातम्, तथापि समये (यत्) करणीयम् आस्ते, तत्तु करणीयमेव)। अयमाक्षिप्तोऽर्थं)।

अर्थ—पहले तो वे यतिवर वात का रस लेने के लिए तैयार ही नही हुए, किन्तु अन्त मे दूतो को आया हुआ देख सभी यति कहने लगे कि 'ये किसलिए, क्यो' ऐसा झूठा प्रचार करते है कि हम शास्त्रार्थ करेगे। अस्तु—जो हुआ सो हुआ, फिर भी समय पर जो करने लायक होगा, वह तो करना ही होगा। अच्छा, आप लोग तो जाइये। (यह आक्षिप्त अर्थ है।)

(३५)

एते समस्तयतयः समवेत्य याताः ,
शास्त्रस्य तत्त्वमतिवाहयितुं यतन्ते ।
मिथ्या मुनेः कथनमस्ति विचारदृष्टेः ,
तस्माद् वयं निचिनुम कथनं विरुद्धम् ॥

अन्वयः—समवेत्य याता एते समस्तयतय शास्त्रस्य तत्त्वम् अतिवाहयितु यतन्ते । विचारदृष्टे. मुनेः कथन मिथ्या अस्ति । तस्मात् वय कथन विरुद्ध निचिनुमः ।

अर्थ—एकत्र हुए ये समस्त यतिजन शास्त्र के आशय को अतिवाहित करने का प्रयत्न करने लगे (और आगे कहने लगे) कि विचार की दृष्टि से मुनिजी का कहना मिथ्या है। इससे हम मुनिजी के कथन को शास्त्र के विरुद्ध चुनते हैं।

(३६)

तत्राधिशास्त्रमपि तेऽधिकृतं न मन्तुम् ,
शक्ता इमे यतिजनाः कथयन्ति मिथ्या ।
भक्तास्तदा मुनिमिमं प्रथयन्ति वक्तुम् ,
प्रष्ठं महातिशयितं जयिन विवादे ॥

अन्वयः—इमे यतिजना तत्र अधिशास्त्रम् अधिकृतम् अपि मन्तु शक्ता न (सन्ति)। (अपितु) ते (तत्) मिथ्या अपि कथयन्ति । तदा (एतत्सर्वं निरीक्ष्य) भक्ताः इम प्रष्ठ महातिशयित मुनि विवादे जयिन वक्तु प्रथयन्ति ।

अर्थ—यतिजन उस शास्त्र के अधिकृत विषय को भी मानने के लिए समर्थ ही नही हुए, इतना ही नही, अपितु वे उसको मिथ्या भी कहने लगे। तब यह सब देखकर भक्तो ने इन अग्रणी सर्वविशिष्ट मुनि महाराज को विवाद मे विजयी कहने के लिए प्रशसा करने लगे।

(३७)

श्रुत्वा जयं मुनिवरस्य विहाय कार्यम् ,
गच्छन्ति तं मुनिममुं जयिन प्रशस्तुम् ।
शक्तो महामुनिरयं प्रथते विचित्रम् ।
शास्त्र-प्रमाणमपि ते श्लथयन्ति सत्यात् ॥

अन्वय—मुनिवरस्य जय श्रुत्वा (जना) कार्यं विहाय अमु मुनिं त जयिन प्रशस्तु गच्छन्ति । किन्तु अय शक्त महामुनि विचित्र प्रथते यत् ते शास्त्रप्रमाणम् अपि सत्यात् श्लथयन्ति ।

अर्थ—आचार्यश्री की जय-जयकार सुन, कार्य को छोड श्रावक उन मुनिजी को जो विजयी हुए है, उनको प्रशस्त सिद्ध करने को उद्यत हो गए । किन्तु समर्थ आचार्यश्री आश्चर्य करने लगे कि वे शास्त्र के प्रमाण को भी सत्य से गिराते हैं ।

(३८)

सत्यं कदापि मनुते न मताग्रहीनः ,
रोद्धुं जनं प्रयततेऽत्र ततः परं किम् ।
भूमौ स्थितश्च मधुपो लभते हिमांशुम् ,
बद्धो यथा शिखरिणः शिखरं ग्रहीतुम् ॥

अन्वय.—अत आग्रही ईन पुरुप कदापि सत्य न मनुते, अपि तु मतान्तरं जन रोद्धु प्रयतते, अत पर किम् ? कथनीयमिति शेष । स्थिति-रियमीदृशी परिलक्ष्यते—यथा मधुप भूमौ स्थित अपि हिमाशु लभते, वद्धश्च यथा शिखरिण शिखर ग्रहीतु प्रयतते ।

अर्थ—ससार मे मताग्रही पुरुप कभी सत्य को स्वीकार नही करता, अपितु मानने वाले को दवाने के लिए प्रयत्न करता है, इससे अधिक क्या, कहा जाए ! इतना शेप है । स्थिति यह ऐसी दिखती है कि जैसे शरावी भूमि पर पडा हुआ भी चन्द्र को हस्तगत करता हो और जैसे कि वँधा पडा भी कोई पर्वत की चोटी पकडने के लिए उद्यत हो ।

(३९)

अन्ते यतीनभिहितान् सहसाऽवमन्तुम् ,
श्रद्धालवो मुनिजनेषु विशिष्टमेनम् ।
पूज्यं विधाय वचनानुचरा यतीनाम् ,
जाताः स्वतन्त्रगतय. ससुखं विहर्त्तुम् ॥

अन्वयः—अन्ते अभिहितान् यतीन् अवमन्त यतीनां वचनानुचराः श्रद्धालव. (जना) सहसा मुनिजनेपु विशिष्टम् एनं मुनिं पूज्य विधाय ससुख विहर्त्तुं स्वतन्त्रगतयः जाता. ।

अर्थ—अन्त मे उक्त यतियो को अवमानित करने के लिए यतियो के वचनानुचर श्रद्धालु पुरुषो ने एक साथ मुनियो मे विशिष्ट इन मुनि महाराज को पूज्य बनाकर आनन्द से विहरण के लिए इच्छाविहारी हो गये ।

(४०)

भूमौ मरोरुपकृतेर्गरिमाणमाप्तुम् ,
जैनं जनं विहितपद्धतिमेव सर्त्तुम् ।
यत्नं विधाय परमं मुनिमण्डलेशः ,
वन्द्योऽभवत्स्वयमहो प्रथमो मुनीशः ॥

अन्वयः—मरो. भूमौ उपकृतेः गरिमाणम् आप्तु जैन जन विहित पद्धतिम् एव सर्त्तुं परम यत्न विधाय मुनिमण्डलेश प्रथमः मुनीश· अहो स्वयं वन्द्य· अभवत् ।

अर्थ—मारवाड की भूमि पर उपकार के गौरव को प्राप्त करने के लिए, जैनजन को विहितपद्धति का अनुसरण करने के लिए, पर्य्याप्त यत्न कर मुनिमण्डल के भाग्य विधाता प्रथम आचार्य अहो स्वय वन्द्य श्री अमरसिंह मुनि महाराज हुए ।

(४१)

मार्गे प्रशस्तसुगमे प्रसरन्ति सर्वे ,
दुष्टे महाभयभरे पदमादधान ।
भीतिं विहाय रमते विरलस्तथाऽयम्,
जातो मरौ मुनिवरोऽनवर. पदाति. ॥

अन्वय—सर्वे प्रशस्तसुगमे मार्गे प्रसरन्ति, किन्तु भीतिं विहाय महाभयभरे दुष्टे मार्गे पदम् आदधान विरल रमते, तथा मरौ अयम् अमरसिंह मुनि' अनवर मुनिवर पदाति जात.।

अर्थ—सब निष्कण्टक सरल मार्ग पर आनन्द से चलते हैं, किन्तु डर को भगाकर अत्यन्त भय से पूर्ण मार्ग पर पैर रखते हुए विरल ही रमते है, उसी प्रकार मारवाड मे ये श्री अमरसिंह मुनिराज महान् आचार्य होकर अकेले पैदल-पैदल विहरे।

इति श्रीमता राजस्थानकेसरिणा पण्डितरत्नेन
उपाध्याय पदालङ्कृतेन पुष्करमुनिना विरचिते
श्रीमदाचार्यामरसिंह महाकाव्ये
नवमः सर्गः



दशमः सर्गः

(१)

सम्प्रत्यसौ मुनिवरो मनुजान् यतीनाम् ,
अन्याञ्जनानपि सदातनजैनधर्मम् ।
सम्बोध्य युक्तिसहितं श्लथितप्रपञ्चम् ,
यातुं सहैव मुनिभि कुरुते प्रतीक्षाम् ॥

अन्वयः—सम्प्रति असौ मुनिवर यतीना मनुजान् अन्यान् जनान् अपि युक्तिसहित श्लथितप्रपञ्च सदातनजैनधर्मम् सम्वोध्य मुनिभिः सह यातुमेव प्रतीक्षा कुरुते ।

अर्थ—सम्प्रति ये मुनिराज यतियो के मनुष्यो को और दूसरे मनुष्यो को भी युक्तियो के साथ हटा दिया है प्रपञ्च जिससे, ऐसे सदातन जैन धर्म को भली तरह से समझा कर मुनिजन के साथ जाने के लिए ही उद्यत हैं ।

(२)

अग्रेऽपि तं सततमागतजैनधर्मम् ,
जैनं तथेतरमिमं जनमप्यभिन्नम् ।
व्याहृत्य स प्रयतते पुनरप्यतस्तम् ,
गन्तुं मुनिर्यतिनिदेशितमन्यदेशम् ॥

अन्वयः—अग्रे अपि सः मुनि. सततं तम् आगतजैनधर्मम् इमं जैन तथा इतरं जनम् तथा अभिन्नम् अपि व्याहृत्य अत. पुन अपि तम् यतिनिदेशितम् अन्यदेश गन्तु प्रयतते ।

अर्थ—आगे भी उन मुनिराजश्री ने सदा से उस आए हुए जैनधर्म को इस जैन को जो भूल रहा था, तथा दूसरे मनुष्य को जो कि जानता ही न था, और फिर अभिन्न जो कि अपने राष्ट्र का अङ्ग है, उसको स्पष्ट वताकर इस स्थान से फिर, उस, यतियो से निदेश प्राप्त किए हुए दूसरे स्थान को जाने के लिए प्रयत्न किया ।

---

० सर्गेऽस्मिन्नपि 'वसन्ततिलका' एवास्ति । लक्षणं तूक्तमेव ।

(३)

पालीपुरादि नगरेषु तथापरेषु ,
स्थानेषु तेषु यतिदुर्गमयेष्वतोऽसौ ।
गत्वा पुनर्जनगणे तममेव धर्मम् ,
गन्तु प्रबोध्य मुनिरिच्छति देशमन्यम् ।।

अन्वय—पालीपुरादि नगरेषु, अपरेषु स्थानेषु तथा तेपु यतिदुर्गमयेषु (स्थानेपु अपि) गत्वा असौ मुनि जनगणे त धर्मम् एव प्रबोध्य पुन अन्य देश गन्तुम् इच्छति ।

अर्थ—पाली आदि नगरो मे, दूसरे स्थानो मे उसी प्रकार से उन यतियो के गढ कहलाने वाले स्थानो मे भी पहुँच कर उन मुनिमहाराज ने जनता के रहते हुए उसी सदातन जैन धर्म को प्रबोधित कर फिर दूसरे स्थान को जाने की इच्छा करने लगे । कहने का अर्थ यही है कि मुनिराज श्री ने मारवाड के प्रतिग्राम मे स्थानकवासी श्रमणोपासक जैन धर्म की धूम मचा दी ।

(४)

भक्ता मुनिं विनयिनो गुरुणा सहेमम् ,
चागत्य प्रत्यहमहो विनिवेदयन्ते ।
शान्त्या सुखेन भगवन् यदि सम्भवोऽयम् ,
भूमिं स्पृशन्तु मुनयो मरुराजधान्याः ।।

अन्वय—प्रत्यहम् आगत्य विनयिन भक्ता इम मुनि निवेदयन्ते, अहो भगवन् ! यदि अय सम्भव भवेत् तर्हि शान्त्या सुखेन च मुनय गुरुणा सह-मरुराजधान्या भूमि स्पृशन्तु ।

अर्थ—प्रतिदिन पहुँचकर विनयी भक्त इन मुनिराज से निवेदन करने लगे कि भगवन् ! यदि यह सम्भव हो सके तो सुख और शान्ति मे गुरुदेव के साथ मुनि-जन मारवाड की राजधानी अर्थात् जोधपुर की भूमि को स्पर्शे अथवा परसे ।

(५)

ज्ञाता तदागमविधेः प्रतिबोधकोऽपि ,
श्रेष्ठश्च सन्नयमतः स्थितिमेव बोद्धुम् ।
निश्चित्य भक्तविनतेर्मिषतः प्रतस्थे ,
सिंहो महामुनिरिवावनिनिर्भयोऽसौ ॥

अन्वयः—तदा आगमविधे ज्ञाता आगमविधेश्च श्रेष्ठ. प्रतिवोधकः सन् अपि अतः अयम् स्थितिम् बोद्धुम् निश्चित्य भक्तविनतेः मिषतः एव असौ महामुनि· अवनिनिर्भय सिंह· इव प्रतस्थे ।

अर्थ—उस समय आगमो की विधि के ज्ञाता और आगमो की विधि के श्रेष्ठ बोधक सन्त होकर ये स्थिति को जानने का निश्चयकर भक्तो की विनति के बहाने से ही वे आप आचार्यश्री पृथिवी पर निर्भय सिंह के समान चल दिए ।

(६)

राज्ये महामुनिरयं परिवीक्ष्य जैनम् ,
धर्मं प्रतिष्ठितमपि प्रतिभावितं तम् ।
सम्भाविनं परमिमं पुनरेव नीतौ ,
पूज्यस्थितिं दृढयितुं स्वयमागतोऽसौ ॥

अन्वयः—अयं महामुनि. राज्ये प्रतिष्ठितम् अपि जैन धर्म प्रतिभावित परिवीक्ष्य तम् इमं पर सम्भाविन नीतौ पुन. पूज्यस्थितिम् एव दृढयितुम् असौ स्वयम् आगत ।

अर्थ—ये आचार्य श्री राज्य मे प्रतिष्ठित हुए भी जैनधर्म को प्रतिभावित देखकर उसी को बडा सम्भावी व्यवहार मे आदरणीय स्थिति को ही दृढ करने के लिए वे स्वय पदार्पित हुए ।

(७)

श्रुत्वा तदा मुनिवरं मुनिभि. समेतम् ,
प्रायान्तमेव तमिमं कृतये पुरोऽसौ ।
श्रेष्ठैः पुन· सहचरैरधिकारिभिश्च ,
साकं त्रिरेव नमते खिवसीर्महौका. ॥

अन्वयः—तदा असौ महौका खिवसी. त मुनिवरं मुनिभिः समेतम् इमम् पुर. कृतये पुनः सहचरैः अधिकारिभि च साक त्रि. एव नमते ।

अर्थ—उस समय प्रतिष्ठित दीवान खिवसीजी साहब उन आचार्य श्री को मुनियो के साथ आपकी अगवानी करने के लिए फिर साथियो और अधिकारियो के साथ वारत्रय वन्दना करने लगे ।

(८)

राज्ञो निदेशमुपवासयितुं विबुध्य ,
प्रासादगोमुखगृहे ससुखं मुनीशम् ।
आवास्य सोऽपि खिवसीर्मुनिभिः सहैव ;
कार्यं विधातुमपि किं प्रययौ तु राज्ञः ॥

अन्वय·—राज्ञ निदेशम् उपवासयितु विबुध्य प्रासादगोमुखगृहे मुनिभि सह एव मुनीश ससुखम् आवास्य स खिवसी अपि तु राज्ञ· किम्अपि कार्यं विधातु प्रययौ ।

अर्थ—राजा के निदेश को ठहराने के लिए समझकर राजमहल के द्वार के घर मे मुनियो के साथ ही आचार्य श्री को आवासित कर वे खिवसीजी भी राजा के किसी कार्य को करने के लिए प्रयाण कर गये ।

(९)

भक्तैरपीह सततं श्रयितं मुनीशम् ,
संवीक्ष्य ते विमनसो ज्वलिता अभूवन् ।
तस्मादिमे नृपममुं विनिवेदयन्तः ,
प्रोचुर्वयं मुनिमिमं न सहेम वस्तुम् ॥

अन्वयः—इह प्रासादगोमुखगृहे अपि सततं श्रयित मुनीशं सवीक्ष्य ते विमनस. ज्वलिताः अभूवन् । तस्मात् इमे ज्वलिता अमुं नृप विनिवेदयन्तः प्रोचुः, यत् वयम् इम मुनिं (इह गृहे) वस्तु न सहेम ।

अर्थ—यहाँ महलो के द्वार के घर मे भी निरन्तर आश्रयित आचार्यश्री को देखकर कुढंल दरबारी लोग जल उठे । इससे जले हुए ये स्थानीय राजा से अर्ज करते हुए बोले कि हम तो इन मुनिजी को इन महलो के द्वार के घर पर रहने को नही सह सकेंगे ।

(१०)

किं कारणं मुनिवरस्य निवासनेन ,
सर्वे भवन्त इतरे ज्वलिता बभूवुः ।
ऊचुः समे नृपमिमं सहसैव वस्तुम् ,
सन्तं भवन्तमुपरीति कथं सहेम ॥

अन्वय.—राजा पृच्छति तान् राजकीयान् मुनिवरस्य निवासनेन भवन्तः इतरे सर्वे ज्वलिता बभूवुः, (अस्य) कारणं किम् (अस्ति) ? (तदा) ते समे इमं नृप सहसा एव ऊचुः, यत् भवन्तम् उपरि (वय) सन्तं वस्तु कथं सहेम ? इति ।

अर्थ—राजा ने उन राजकीय लोगो से प्रश्न किया कि—आचार्यश्री के यहाँ ठहरा देने से आप दूसरे सभी जल उठे, इसका क्या कारण है ? तब वे सभी इस राजा को एक साथ कहने लगे, कि आपके ऊपर हम मुनि को रहते हुए कैसे सह सकेंगे—ऐसा ।

(११)

तस्मादय नृपवरोऽपि तदैव रुष्ट. ,
प्रोवाच तान् मुनिमिम विनिवेदयन्तु ।
गच्छन्तु तावदितरत् ससुखं भवन्तः ,
स्थानं भवद्भ्य उचितं ननु बोधयामः ।।

अन्वयः–तदा अय नृपवर ,अपि तस्मात् एव रुष्ट. भवन् तान् प्रोवाच, यत् (भवन्त) इम मुनि विनिवेदयन्तु तावत् यत् भवन्तः इतरत् स्थान गच्छन्तु, ननु वय भवद्भ्य. उचित बोधयाम ।

अर्थ—उस समय पर इस अच्छे राजा ने भी उसी से क्रुद्ध होते हुए उन राजकीय मनुष्यो से कहा कि आप इन मुनि महाराज से निवेदन कीजिए कि आप सब दूसरे स्थान को जाइये। यदि कोई शङ्का हो तो हम आप सबके लिए उचित स्थान बता दें।

(१२)

तत्ते मुनीशमपरं छल-छद्म पूर्णम् ,
भूताधिवाससहितं भुवि मन्दिरं तत् ।
वस्तुं वदन्ति कियदित्यह सुन्दरं तत् ,
स्थानं प्रदर्श्य सहसा प्रविहस्य याताः ।।

अन्वयः—तत् ते भुवि अपर छलछद्मपूर्ण भूताधिवाससहित तत् मन्दिर वस्तु स्थानं प्रदर्श्य अह यत् कियत् सुन्दर स्थानम् (अस्ति) इति वदन्ति (ते च) सहसा प्रविहस्य याता ।

अर्थ—तदनन्तर वे राजदरबारी दूसरी जगह पर छल और छद्म से पूरे, भूत के निवास से युक्त महामन्दिर को रहने के लिए दिखला कर—अहा ! यह कितना सुन्दर स्थान है ! ऐसा कहने लगे और वे एक साथ हँसकर चल दिये।

(१३)

रात्रौ महामुनिमिमं दृढकाष्ठ पट्टे ,
भूतः शयानमभितः प्रतिबोद्धुमीष्टे ।
प्राणान् जिहासितुमितीच्छसि तच्छयस्व ,
नेच्छा पुनर्गृहमत. प्रतिगच्छ शीघ्रम् ।

अन्वयः—रात्रौ भूत. दृढकाष्ठपट्टे शयानम् इम महामुनिम् अभितः प्रतिबोद्धुम् ईष्टे—यदि त्व प्राणान् जिहासितुम् इच्छसि, तत् त्व शयस्व, यदि प्राणान् हातुम् इच्छा न (अस्ति)। (तर्हि) पुन अतः गृह शीघ्र प्रतिगच्छ, इति ।

अर्थ—रात्रि होने पर भूत, दृढ काष्ट के पट्टे पर शयन करते हुए इन आचार्यश्री को सब ओर से समझाने को उद्यत हुआ। कहने लगा कि यदि तुझे अपने प्राणो के त्यागने की इच्छा है तो तू शयन कर। और यदि प्राणो के परित्याग की इच्छा नही है तो फिर यहाँ से तू अपने घर को शीघ्र लौटजा, ऐसा।

(१४)

किन्त्वेव भूत इति सोऽपि महाकरालः ,
सन्तं महाशयमिमं व्यथते निरन्तम् ।
दुःखं विषह्य परम च मुनीश्वरोऽसौ ,
भूतं विवश्य विषमं जयते जपन्यः ॥

अन्वय—प्रथम तु भूत. एव इति, सः अपि महाकराल । स एतादृश. भूतः इम महाशय सन्त निरन्त व्यथते, किन्तु असौ महामुनीश्वर. परम दु ख विषह्य, विषमं भूतं च विवश्य य जपन् (विजयते) जयते।

अर्थ—वह पहले तो भूत हैं, वह भी महाभयङ्कर है, वह ऐसा भूत इन महाशय मुनिराज को कष्ट देता है, किन्तु वे महामुनि महाराज महाकष्ट सहन कर और विपम भूत को काबू मे कर ये जपते-जपते विजयी हो गए।

(१५)

भूतेन तेन न पुनर्मुनिरेव कृष्टः ,
पट्टो दृढोऽपि शकलेषु विखण्डितोऽसौ ।
हेतुस्त्वयं मुनिरसौ शयितस्तदासीत् ,
क्रुद्धोऽपतत्पुनरतोऽपि च खण्डितोऽद्य ॥

अन्वयः—तेन भूतेन पुन. मुनि· एव न कृष्टः किन्तु दृढः पट्ट· अपि असौ शकलेषु विखण्डित (अभवत्)। अस्य पट्टस्य खण्डने अय तु हेतु, तदा असौ मुनिः पट्टे शयित. आसीत् शयाने मुनौ पुन. क्रुद्ध· भूत. अपतत्। अतश्च (स) पट्ट खण्डित· अद्य अपि विद्यते।

अर्थ—उस भूत ने न फिर वह मुनि ही सताया अपितु दृढ लकडी का पट्टा भी टुकडो मे बाँट दिया। इस पट्टे के टूटने मे कारण यह था कि ये मुनि महाराज पट्टे पर लेटे हुए थे, लेटे हुए मुनिजी पर वह क्रुद्ध कूद पड़ा, जिससे पट्टा खण्डित हुआ आज भी वहाँ पडा है।

(१६)

अन्ते मुनिं वदति भूतविशेष एषः ,
प्रीतोऽस्म्यहं वद यथेति च तेऽनुकूलम्।
कुर्यामिह तदपि ते वचनं ममैतत् ,
स्थानं विहाय तदिदं स्वत एव यामि॥

अन्वयः—अन्ते एष. भूतविशेष मुनिं वदति यत् अहं प्रीत अस्मि इति, यथा च ते अनुकूल भवेत् तत् अपि अह ते (अवश्य) कुर्याम्, मम एतत् वचनम् अस्ति। तत् (अह) स्वत एव इद स्थान विहाय यामि।

अर्थ—अन्त मे यह भूत मुनि महाराज से कहने लगा कि (आपके व्यवहार से) मैं प्रसन्न हूँ—ऐसा। और जैसा आपके अनुकूल होगा, वह मैं अवश्य करूँगा—यह मेरी प्रतिज्ञा है। इसलिए मैं आपकी इच्छा के अनुकूल ही अपने आप इस स्थान को छोडकर जा रहा हूँ।

(१७)

अत्रान्तरे पुनरयं खिवसीर्महौका ,
कार्यान्निवृत्य विरतो यतते च राज्ञः ।
द्रष्टुं गुरुं व्रजति तं न तु पश्यतीमम् ,
खिन्नो भवत्यत इतस्तु गुरोः प्रवासात् ॥

अन्वयः—अत्रान्तरे अय महौका. खिवसीः राज्ञ' कार्यात् निवृत्य विरतः सन् गुरुं द्रष्टु यतते, तं च द्रष्टु व्रजति, किन्तु इम गुरुं तत्र न पश्यति । गुरोः इत. प्रवासात् तु खिन्नः भवति ।

अर्थ—इसी बीच मे ये प्रतिष्ठित खिवसीजी साहब राजा के कार्य से लौटकर उदासीन हुए गुरु के दर्शन के लिए सोचने लगे और उसके दर्शन के लिए गए, किन्तु इनको वे न देख सके। गुरुदेव के यहाँ से पधारने के कारण तो वे दु खी भी हुए ।

(१८)

स्थानान्निवृत्य खिवसी. पुनरेति सन्तम् ,
द्रष्टुं गुरुं स समुनि प्रनिवासितं तम् ।
ज्ञात्वा रहस्यमथ तत् प्रतिकर्त्तुमेतत् ,
संवीक्ष्य धीरहृदयः समयं चिखेद ॥

अन्वयः—स्थानात् निवृत्य सः धीरहृदय· खिवसी पुनः तं प्रनिवासितं सन्त समुनि गुरु द्रष्टुम् एति । अर्थात् रहस्य ज्ञात्वा एतत् प्रतिकर्त्तुं संवीक्ष्य समय चिखेद ।

अर्थ—पहले निवासस्थान से लौट कर वे गम्भीर खिवसीजी फिर उन प्रनिवासित हुए मुनियो के साथ गुरुदेव के दर्शन के लिए वहाँ पहुँचे, (जहाँ पर कि उनको प्रनिवासित किया गया था) तदनन्तर रहस्य को जानकर कि इसका प्रतिकार कैसे होगा ? अच्छी तरह सोच-विचार कर समय के लिए दु.खी हुए ।

(१६)

दृष्ट्वा गुरुं प्रणमति त्रिरथाऽपराधम् ,
स्वीकृत्य सोऽप्यवदत खिवसीर्विधिज्ञः ।
कुर्यां किमत्र विवशोऽगममागतोऽहम् ,
राज्ञो विशेषवचनाद् बहिराशुकारी ॥

अन्वयः—अथ स विधिज्ञः खिवसी गुरुं दृष्ट्वा त्रि. प्रणमति, अपराध स्वीकृत्य अपि अवदत्, यत् राज्ञ.विशेपवचनात् विवशः अह बहि अगमम्, अत अत्र किं कुर्याम् ? (सम्प्रति) अहम् आगतः आशुकारी (अस्मि)।

अर्थ—तव उन विविज्ञ खिवसीजी ने गुरुदेव के दर्शन कर सतिखुत्तो प्रणाम किया और अपराध स्वीकार कर अर्ज करने लगे कि दरवार के आदेश से विवश होकर मैं वाहिर गया था। इसलिए इस विपय मे मैं क्या कर सकता था ? अव मैं आया हूँ, और शीघ्र ही जो करना चाहिए, वह करता हूँ।

(२०)

वासस्य तस्य विषये खिवसीर्महौका: ,
सन्तं निरीक्ष्य मनसा व्यथितेन वन्द्यम् ।
पप्रच्छ किन्तु बहुधा प्रथमो मुनीनाम् ,
हर्षं व्यजीजनदयं सदने निवस्तुम् ॥

अन्वयः—महौका खिवसी व्यथितेन मनसा वन्द्य-सन्त तस्य वासस्य विषये पप्रच्छ, किन्तु अय मुनीना प्रथम. सदने निवस्त बहुधा हर्षं व्यजीजनत्।

अर्थ—पूर्णप्रतिष्ठित खिवसीजी साहव ने अपने भारी मन से आदरणीय सन्तश्री को उनके महलो के द्वार के ऊपर विराजने के विपय मे प्रश्न किए, किन्तु इन आचार्य श्री ने भूत मन्दिर के विपय मे निवास करने को अनेक प्रकार से हर्ष-जनक वताया।

(२१)

जातास्तदा मुनिममुं प्रसितं विलोक्य ,
कृत्ये विशिष्टकुटिला: सकला सलज्जा. ।
कार्यं कृतं न फलितं त्विति, शोचयद्भिः ,
दुष्टैरधोमुखमिवाकुलितं व्यधायि ।।

अन्वय —तदा कार्ये प्रसितम् अमु मुनिं विलोक्य सकला विशिष्ट-कुटिला. सलज्जाः जाता. । कार्यं तु कृत (किन्तु) न फलितम् इति शोचयद्भि दुष्टै: आकुलितम् इव अधोमुख व्यधायि ।

अर्थ—उस समय पर धर्मकार्य मे सलग्न उन मुनि महाराज को देखकर सभी प्रमुख कुटिल लज्जित हो गए । कार्य तो किया, किन्तु फलित नही हुआ-ऐसा सोचने वाले दुष्टो के द्वारा आकुल-व्याकुल जैसे हो, ऐसा नीचे मुखकर लिया गया ।

(२२)

कृत्ये कृते विफलितेऽपि जना निकृष्टाः ,
चित्ते विशेषविकृतिं विषमां विभूय ।
अन्यद् दुरन्तदुरितं रचितुं प्रभूतम् ,
कुर्वन्ति पापमपरं विसृपा इवोत्का. ।।

अन्वयः—निकृष्टा. जना कृते कृत्ये विफलिते अपि चित्ते विषमां विशेषविकृतिं विभूय अन्यत् प्रभूत दुरन्तदुरित रचितुम् अपर पापम्, उत्का विसृपा. इव कुर्वन्ति ।

उत्कण्ठित सर्प के समान नीच पुरुप किये गए कार्य के विफलित होने पर भी चित्त मे विपम विशेष विकृति को वढाकर दूसरे वडे मुश्किल से अन्त होने वाले पाप को रचने के लिए दूमरे जिस से वडे पाप न हो ऐसे पाप करते हैं । यह निम्न प्रकृति के मनुष्यो का स्वभाव है ।

(२३)

अत्रान्तरे स पटवाभिधरङ्गलाल· ,
सन्तं महामुनिममुं वदितुं प्रवृत्तः ।
उक्तस्य मानमभिधाय ततो भजेऽहम् ,
कोटेः परं परिकरं भवतोऽनुमन्ये ॥

अन्वयः—अत्रान्तरे सः पटवाभिध. रङ्गलाल सन्तम् अमु महामुनि वदितु प्रवृत्त (अभवत्)। तत भवत उक्तस्य मानम् अभिधाय तत अह कोटे पर परिकरम् अनुमन्ये ।

अर्थ—वार्तालाप के बीच मे जयपुर (राजस्थान) के प्रख्यात पटवावंश सेठ श्री रगलालजी उन सन्तशिरोमणि महाराज को बताने लगे कि आप श्री के कथन के अनुसार परिग्रह के मान को कहकर ही कोटि रुपयो से अधिक सम्पत्ति का मैं अधिकारी हुआ ऐसा अनुमान करता हूँ। (क्योकि ये सीमित धनराशि के परिग्रह को स्वीकार करना चाहते थे, तब आचार्य श्री ने परिग्रह की राशि को मर्यादा के साथ करने का सकेत किया। परिणाम स्वरूप धन अधिक प्राप्त हुआ। और उस अधिक घन के कारण ही इन्होने वडे-वडे धन-दान किए, यह वात जयपुर के दानियो के इतिहास मे आज भी प्रसिद्ध है)।

(२४)

यान्तं समण्डलममुं चरितुं सपर्य्याम् ,
जैना जना नगरवासिन एव सन्तम् ।
श्रद्धानताः प्रणयिन· स्थगितुं विहारम् ,
आवेदयन्ति सकलाः श्रमणेषु गण्यम् ॥

अन्वयः—सपर्य्यां चरितुम् एव अमु श्रमणेषु गण्य समण्डल यान्त सन्त श्रद्धानताः जैना. प्रणयिन नगरवासिनः सकला' एव विहार स्थगितुम् आवेदयन्ति ।

अर्थ—भाव-भक्ति से पूजा करने के लिए ही उन श्रमणो मे गण्य मुनियो के मण्डल के साथ पधारते हुए सन्त महाराज से श्रद्धानत जैन-प्रणयी जोधपुर नगरवासी सभी विहार को स्थगित करने के लिए प्रार्थना करने लगे ।

(२५)

क्षेत्रं विधाय विकृतं विपुलं विशुद्धम् ,
प्रष्ठः स्वयं मुनिवरेषु विधिं यथोक्तम् ।
सर्तुं महामुनिरयं समवोचदग्र्यम् ,
सङ्घाधिकारिणममुं रचितुं प्रबन्धम् ॥

अन्वयः—विकृतं विपुलं क्षेत्र विशुद्ध विधाय अय मुनिवरेषु प्रष्ठः महामुनिः यथोक्तं अग्र्य विधिं सर्तुम् अमु सङ्घाधिकारिण प्रबन्ध रचितु स्वय समवोचत् ।

अर्थ—बिगडे हुए विशाल क्षेत्र को विशुद्ध कर मुनिवरो के अग्रणी आचार्य श्री यथोक्त अग्रिम विधि को अनुसृत करने के लिए उस सघ के अधिकारी को प्रबन्ध की रचना के लिए स्वय कहने लगे ।

(२६)

सर्वे विहारसमयं समवेक्ष्य गन्तुम् ,
पश्चादिमे मुनिवरस्य समण्डलस्य ।
चित्ते निधाय सफलां सुगुणाविरक्तिम् ,
वन्द्यं गुरोः प्रतिपदं समुपासते ते ॥

अन्वयः—विहारसमय समवेक्ष्य इमे सर्वे समण्डलस्य मुनिवरस्य पश्चात् गन्तु समुपासते । सुगुणाः (च) ते गुरो सफला विरक्ति चित्ते निधाय वन्द्यं महामुनिं प्रतिपदं समुपासते ।

अर्थ—विहार के समय को निहार कर ये सब श्रावक मण्डल के साथ मुनिवर के पीछे चलने को एकत्र हुए और वे सुगुण मनुष्य गुरुदेव श्री की सफल विरक्ति को हृदय मे रखकर वन्दनीय आचार्य श्री की पद-पद पर सेवा-शुश्रूषा करने लगे । अस्तु-उपासना सभी ने की, किन्तु ध्येय भिन्न रहे ।

(२७)

अन्ते विहारसमये मुनिदर्शनाय ,
श्रद्धा-प्रसून-मधुपोऽजितसिंहनामा ।
देशस्य तस्य मरुधरप्रथितस्य राजा, ,
हर्षं प्रसत्ति-सुगमश्च समागतोऽसौ ॥

अन्वयः—अन्ते च विहारसमये तस्य मरुधरप्रथितस्य देशस्य असौ श्रद्धाप्रसूनमधुप अजितसिंहनामा हर्ष-प्रसत्ति-सुगम· राजा (अपि) समागत (अभूत्) ।

अर्थ—और अन्त मे विहार के समय पर उस मरुधर कहे जाने वाले देश का, वह श्रद्धा के पुष्पो के मधु को पीने वाले अजितसिंह जिनका नाम था, हर्ष और प्रसन्नता जिनको सुगम थी, ऐसे राजाजी भी आए थे ।

(२८)

राजाप्ययं कृतनतिर्मुनिराजमूचे ,
द्रष्टुं भवन्तमनिशं पुनरेव रोचे ।
सत्यं वदामि बहुशश्च मुनीनपश्यम् ;
पश्याम्यहं न सदृशं मुनिमेवमन्यम् ॥

अन्वय.—अय कृतनति राजा अपि मुनिराजम् ऊचे—यत् अह भवन्तं पुन अनिशम् एव द्रष्टु रोचे । अह च सत्य वदामि यत् बहुश. मुनीन् अपश्यम्, (किन्तु) अहम् एवम् अन्य मुनि सदृश न पश्यामि ।

अर्थ—इन प्रणाम किये हुए राजा साहब ने भी आचार्य महाराज से कहा कि मैं फिर आपश्री को सदैव देखने की चाह रखता हूँ । और सच कहता हूँ कि मैंने अनेक वार मुनियो को देखा, किन्तु मैंने ऐसा दूसरा मुनि आपकी बराबरी का नहीं देखा ।

(२९)

राज्ञि स्तुतिं विदधति प्रथयन्ति चान्ये ,
भक्ता वदन्ति गुरवः शिथिलान् क्षमन्ताम् ।
शृण्वन्ति तेऽपि गमनं परिवर्त्तयन्तु ,
सन्तः स्थिरं न परिवर्त्तयितुं सहन्ते ॥

अन्वय —स्तुतिं विदधति राज्ञि सति अन्ये (अपि) स्तुतिं प्रथयन्ति, भक्ताः च वदन्ति—यत् हे गुरव ! (अस्मान्) शिथिलान् क्षमन्ताम् । (सहैव) ते । (मुनय) गमन परिवर्त्तयन्तु इति अपि शृण्वन्ति । (किन्तु) सन्त. स्थिर (विषयं) परिवर्त्तयितु (कदापि) न सहन्ते ।

अर्थ—विहार के समय जव जोधपुर-नरेश स्तुति कर ही रहे थे कि दूसरे भी स्तुति करने लगे और भक्तजन कहने लगे—गुरुजन ! हम शिथिलो की त्रुटि को भी क्षमा कीजिए । साथ ही मुनिजन भी सुन रहे थे कि कृपया विहार को परिवर्त्तित कर दीजिए । किन्तु यह सव जानते हैं कि मुनिजन स्थिर वात को वदलने के लिए कभी तैयार नही होते ।

(३०)

तस्मादयं तु मुनिसंघयुतो मुनीशः ,
स्थानादनन्यमहिमा विविधप्रदेशान् ।
गन्तुं जनान् विहितधर्मविधौ नियोक्तुम्, ,
शान्तः स्वभावसरलः कुरुते विहारम् ॥

अन्वयः—अय तु मुनिसंघयुतः अनन्यमहिमा स्वभावसरलः शान्तः मुनीशः तस्मात् स्थानात् विविध प्रदेशान् गन्तु विहितधर्म-विधौ जनान् नियोक्तु विहार कुरुते ।

अर्थ—ये मुनियो के साथ परमप्रसिद्ध स्वभाव सरल और शान्त आचार्यश्री उस स्थान से अनेक स्थानो का स्पर्श करने के लिए विहित धर्म की क्रिया मे मनुष्यो को नियुक्त करने के लिए विहार प्रारम्भ कर देते हैं ।

(३१)

धर्मस्य पूज्ययशसोऽस्य मुनेः सुशिष्य. ,
धन्यो मुनिश्रुतयशा मुनिसङ्गमेतुम् ।
आयादिम मुनिमवाप्य न गन्तुमिच्छुः ,
दृष्ट्वाऽमिलन्मुनिमिमं चलितुं नगोरम् ॥

अन्वय—विहारमार्गे एव कस्मिश्चिद् ग्रामे पूज्ययशस मुने श्री धर्मदासस्य सुशिष्यः धन्य मुनि मुनिश्रुतयशा सन् मुनिसङ्गम् एतुम् (इह) आयात्, किन्तु (तस्मिन् ग्रामे) इम श्रीमन्तम् अमरसिंहमुनिं न अवाप्य धन्य मुनि गन्तुम् इच्छु (यदा अभवत्, तदा) इमम् श्रीमन्तम् अमरसिंह मुनिं दृष्टवा (धन्य मुनि.) नगोर चलितुम् अमिलत् ।

अर्थ—विहार के मार्ग मे ही किसी एक ग्राम मे पूज्य मुनि श्री धर्मदासजी के सुशिष्य धन्ना मुनिजी मुनि महाराज की प्रशसा को सुनते हुए मुनि महाराज के साहचर्य को प्राप्त करने के लिए यहाँ पहुँचे, किन्तु उस ग्राम मे इन श्रीमान् अमरसिंह मुनिजी को न पाकर जाने को तैयार हुए तब उन्होने इन मुनि महाराज को (देखा), देखकर धन्ना मुनिजी नागोर को चलने के लिए मिले ।

(३२)

सर्वे नमन्ति सविधि प्रथमं मुनीनाम् ,
आयान्तमेनमिव तं गणगौतमाभम् ।
सन्तोऽपि ते सुयशसः कथयन्ति शान्ताः ,
माङ्गल्यवाचममुकं प्रथितं महान्तम् ॥

अन्वयः—सर्वे एनम् अपरं गणगौतमाभम् इव आयान्त मुनीना प्रथम सविधि नमन्ति । ते सुयशसः शान्ताः सन्तः अपि अमुक प्रथितं महान्त माङ्गल्यवाच कथयन्ति ।

अर्थ—सभी इनको दूसरे गणधर गौतम की कान्ति वाले के तुल्य आते हुए उन मुनियो के आचार्य को विधि के साथ प्रणाम करते थे । वे प्रसिद्ध शान्त सन्त भी इन प्रख्यात मुनि को महान् मङ्गलवाक् बताते थे ।

(३३)

श्रुत्वा परां मुनिवरस्य यश. प्रशस्तिम् ,
सर्वे प्रशस्तमुनयोऽपि तपोधरं ते ।
श्रोतुं मुनिं महितधर्मधराधुरीणम् ,
पृच्छन्ति योधपुर-कीर्तिकथा विलोक्य ॥

अन्वयः—सर्वे प्रशस्तमुनय, अपि मुनिवरस्य परां यशः प्रशस्ति श्रुत्वा ते महितधर्मधराधुरीण तपोधरं मुनिं विलोक्य योधपुर-कीर्त्तिकथां श्रोतु पृच्छन्ति ।

अर्थ—सब प्रसिद्ध मुनिजन भी आचार्यश्री की बडे यश की विशेषता सुनकर वे पवित्र एव आहृत धर्म की भूमि के भारवाही तपस्वी मुनि को देखकर जोधपुर की कीर्त्ति कथा को सुनने के लिए प्रश्न करने लगे।

(३४)

तस्मादिमे विविधकीर्त्तिधरा मुनीशाः ,
आर्याश्च ताः सहभुजः समभोगवृत्यः ।
ख्याताः समेत्य सकलाः समसूत्रबद्धाः ,
जातास्ततः प्रभृति ते सहभोगभाजः ॥

अन्वयः—इमे विविधकीर्त्तिधरा. मुनीशा. सहभुजः ताः च आर्याः समभोगवत्य. सकलाः समसूत्रबद्धा. समेत्य तस्मात् ते ततः प्रभृति सहभोग-भाजः ख्याता जाता ।

अर्थ – ये अनेक प्रशसाओ के धारण करनेवाले सन्त सहभोजी और वे सतियाँ सहभोजी सभी जो समान सूत्र-आगमो से बँधे हुए थे इन मुनि महाराज के साथ मिलकर आहार मे सम्मिलित होकर ही वे उस समय से लेकर आज तक सहभोगी प्रसिद्ध हुए चले आ रहे हैं।

१—भोगशब्द —जैनमुनिसमाचरणे, आहारार्थक. प्रसिद्धः ।

(३९)

अस्य प्रभावमतुलं प्रसमीक्ष्य सन्तः ,
सर्वे नमन्ति विमलप्रतिभामहिम्नः ।
धर्मस्य रूपमधिकं विहितं विमृश्य ,
चान्ते महामुनिममुं गणयन्ति पूज्यम् ॥

अन्वयः—विमलप्रतिभामहिम्न अस्य अतुल प्रभाव प्रसमीक्ष्य सर्वे सन्त (त) नमन्ति, अन्ते च (अस्य प्रभावादेव) धर्मस्य रूपम् अधिक विहित विमृश्य अमु महामुनि पूज्य गणयन्ति ।

अर्थ—विमल प्रतिभा की महिमा के इस मुनिजी के अनुपम प्रभाव को सोच-विचार सभी मुनिजन आपश्री को अभिवन्दन करते हैं । और अन्त मे आपश्री के प्रभाव से ही धर्म के रूप को अधिक क्रियान्वित विचारकर उन आचार्यश्री को पूज्य गिनते हैं ।

(४०)

एतेन तेन मुनिनाऽमरसिंहनाम्ना ,
ज्योतिर्धरेण सकलं कुहरं यतीनाम् ।
विस्फोटितं विमलकेवलिबोधदीप्तः ,
धर्मः सनातन इह प्रतिबोधितश्च ॥

अन्वय —तेन एतेन अमरसिंहनाम्ना मुनिना ज्योतिर्धरेण यतीना सकल कुहर विस्फोटितम्, इह च विमलकेवलिबोधदीप्त सनातन. धर्म प्रतिबोधित. ।

अर्थ—उन इन्ही ज्योतिर्धर श्रीमदाचार्यामरसिंहमुनिमहाराज ने सारा यतियो का बिल फोड डाला और विमल केवलियो के ज्ञान से दिया हुआ यह सनातन धर्म प्रतिबोधित किया ।

(४१)

अन्ते नितान्तविमलो विशदांशुमालः ,
चन्द्रो महाविकटमेघघटाविलीनः ।
संशोभते परमया कलया विहीनः ,
व्योम्नीव देवसदृशो विलयं गतोऽसौ ।।

अन्वयः—अन्ते असौ देवसदृश. आचार्यः विलय गत (अपि) सशोभते, यथा नितान्तविमल. विशदांशुमालः महाविकटमेघघटाविलीनः परमया कलया विहीन चन्द्र. इव व्योम्नि विलय गत सशोभते ।

अर्थ—अन्त मे वे देव के समान आचार्यश्री विलीन हुए भी शोभा पा रहे है, जैसे पूर्ण स्वच्छ स्पष्टकिरणो से वेष्टित भयङ्करकाले मेघ की घटाओ मे छिपा हुआ अधिक कला से हीन चन्द्र आकाश मे ही लीन होकर भी शोभा पाता है ।

(४२)

अमरसिंहमुनौ रजनीपतौ, विमलकीर्त्तिविभामणिमण्डिते ।
कवलिते सति केतुभयङ्करः, जयति कालबलीव निशाचरः ।।

अन्वयः—विमलकीर्त्तिविभामणिमण्डिते अमरसिंहमुनौ रजनीपतौ कवलिते सति कालवली केतुभयङ्कर. निशाचर· जयति ।

अर्थ—विमल कीर्त्ति की विभारूप मणि से शोभित अमरसिंहमुनि चन्द्रमा के कवलित होने पर कालवली केतु भयङ्कर निशाचर के समान जयी है ।

इति श्रीमता राजस्थानकेसरिणा पण्डितरत्नेन
उपाध्यायपदालङ्कृतेन पुष्करमुनिना विरचिते
श्रीमदाचार्यामरसिंह महाकाव्ये
दशमः सर्गः

❀

(३५)

धन्यो मुनिप्रवरमेत्य मुनिर्महान्तम् ,
शास्त्रस्य सारमखिलं प्रतिबुध्य धीरः ।
नागोर एव मिलितो गुणिभिः प्रशस्तः ,
जातो विशेषमहिमा मुनिसङ्गसेवी ॥

अन्वयः—धीर धन्य मुनि महान्त मुनिप्रवरम् एत्य शास्त्रस्य अखिल सार प्रतिबुध्य नागोरे एव मिलित. गुणिभि प्रमाणित विशेषमहिमा मुनि-सङ्गसेवी जात ।

अर्थ—उस विहारमार्ग के स्थानविशेप नागोर मे—धीर मुनि श्रीधन्नाजी, जो आचार्य श्रीअमरसिंहमुनि जी के साथ-साथ अगवानी कर नागोर आए थे—क्योकि ये कारणविशेष से नागोर मे रहते थे, आचार्य श्री की सेवा मे आकर और शास्त्र के सम्पूर्ण तत्त्व को समझकर नागोर मे मिले गुणियो से प्रमाणित रह आचार्यश्री की सङ्गति के सेवक प्रसिद्ध हुए ।

(३६)

सौहार्दभावमधिगम्य परस्परं ते ,
सर्वे महाशयममुं मुनिमादरन्ति ।
सोऽयं प्रभालसितमण्डलमध्यमूर्त्तिः ,
शोभामिवैति परिवेषगतो हिमांशुः ॥

अन्वयः—ते सर्वे मुनय सौहार्दभावम् अधिगम्य अमु महाशय मुनि परस्परम् आदरन्ति । आद्दत सन् स किमिव शोभते—स प्रसिद्ध आचार्यः अयम् अमरसिंहो मुनि परिवेषगत प्रभालसितमण्डलमध्यमूर्त्ति हिमाशुः इव शोभाम् एति ।

अर्थ—वे सभी मुनिजन सौहार्दभाव अधिगत कर इन महाशय मुनिराज को घेर कर आद्दत करते, तो वे उस समय ऐसी शोभा धारण करते थे, जैसे कि चाँदनी युक्त मण्डल के वीच मे हो विम्व जिसका, ऐसा परिवेषगत चन्द्रमा जैसे शोभा प्राप्त करता है ।

(३७)

नानाप्रदेशपरिधौ गमनं चिकीर्षु. ,
साधूनिमानपि सहैव निनीषुरेष ।
सम्प्रेष्य वृत्तमभितो जनवृन्दमेतुम् ,
श्रेष्ठं महान् मुनिजनेषु दधाति यत्नम् ।।

अन्वयः—नानाप्रदेशपरिधौ गमन चिकीर्षु. इमान् साधून् अपि सहैव निनीषु मुनिजनेषु महान् एष आचार्य अमरसिंह. मुनिः अभितः जनवृन्द एतु वृत्त सम्प्रेष्य श्रेष्ठ यत्नं दधाति ।

अर्थ—अनेक स्थानो की परिधि मे जाने की इच्छा रखकर इन मुनियो को भी साथ ही ले चलने की इच्छावाले ये आचार्य श्रीअमरसिंहमुनि महाराज, सब ओर जनता के पास पहुँचने का समाचार भेजकर, बढिया से बढिया यत्न करने लगे ।

(३८)

अन्ते विभिन्नविषयान् प्रविहृत्य देशान् ,
श्रेष्ठो मुनिप्रवरवृन्दमहाभिवन्द्य. ।
हृद्यानवद्यविनतिप्रथितेषु शान्तिम् ,
वर्षाधिवासनिचयेषु विरम्य लेभे ।।

अन्वयः—विभिन्नविषयान् देशान् प्रविहृत्य मुनिप्रवरवृन्दमहाभिवन्द्य श्रेष्ठ' हृद्यानवद्यविनतिप्रथितेषु वर्षाधिवासनिचयेषु सत्सु अन्ते विरम्य शान्ति लेभे ।

अर्थ—अनेक समस्याप्रधान देशो का विहार कर मुनिवर वृन्द के द्वारा अति अभिवन्दनीय सबसे प्रशस्त आचार्य श्री जी ने प्रिय एव पवित्र विनतियो से प्रसिद्ध वर्षावास के समूहो के समाप्त होने पर ही अन्त मे विराम लेकर शान्त हुए ।

एकादशः सर्गः

(१)

इयं तु पट्टावलिरस्ति तस्य, प्रकृष्टरूपोत्कटगन्धपुष्पा ।
स्रगेव सम्प्रत्यपि कालकृष्टा, विराजते भारतभूमिभागे ॥

अन्वयः—तस्य महामुने श्रीमतोऽमरसिंहस्य इय पट्टावलि. तु प्रकृष्ट-रूपोत्कटगन्धपुष्पा स्रक् कालकृष्टा एव भारतभूमिभागे सम्प्रति अपि विराजते ।

अर्थ—उन आचार्य श्रीमान् अमरसिंह मुनि महाराज की यह पट्टावलि तो प्रकृष्ट रूप के प्रदीप्त गन्ध के पुष्पो की माला समय से खिंची हुई अब तक विद्यमान है ।

(२)

मुनि प्रसिद्धोऽमरसिंहनामा, मरोर्धरायां जिनधर्मवृक्षम् ।
समूलमारोपयिताऽद्वितीयः, नवार्हताचार्यवरो बभूव ॥

अन्वयः—मरो धराया समूल जिनधर्मवृक्षम् आरोपयिता प्रसिद्ध. अमरसिंह नामा मुनि अद्वितीय. नवार्हताचार्यवर बभूव ।

अर्थ—मारवाड की भूमि मे जड़ के साथ जिनधर्म के वृक्ष को रोपने वाले प्रसिद्ध श्री अमरसिंह नाम अनुपम नूतन आर्हताचार्य हुए ।

(३)

प्रसुप्तलोकान् सुगमां विलोक्य, सृति यथाचारविलुप्तबुद्धीन् ।
जिनप्रबुद्धादृतसाधुमार्गे, व्यबोधयत्तान् मुनिरेव सत्याम् ॥

अन्वय.—मुनि एव तान् यथाचारविलुप्तबुद्धीन् प्रसुप्तलोकान् विलोक्य जिनप्रबुद्धादृतसाधुमार्गे सुगमा सत्या सृति व्यबोधयत् ।

अर्थ—श्री मुनि महाराज ने ही जैसा चाहिये ऐसे आचार की विलुप्त हो गई है बुद्धि जिनकी ऐसे गाढनिद्रित लोगो को केवलि प्रज्ञप्त होने से आदृत, साधु मार्ग में सुगम, सच्चा रास्ता बताया ।

---

० सर्गेऽस्मिन् 'उपेन्द्रवज्रा ज्तौ ज् गौ ग् ।'

(४)

अतोऽस्य संघः परमप्रतिष्ठः मरोर्धरायां प्रथमोऽग्रयायी ।
ततान श्वेताम्बरजैनधर्मे, सदोरकर्णाश्रितवक्त्रवस्त्रः ॥

अन्वयः—अत अस्य श्वेताम्बरजैनधर्मे मरो. धराया प्रथम अग्रयायी परमप्रतिष्ठः सदोरकर्णाश्रित वक्त्रवस्त्र सघ. ततान ।

अर्थ—इसलिए आपश्री का, मारवाड की धरती पर श्वेताम्बर जैनधर्म मे पहला अग्रगामी परम आदृत डोरे के साथ कानो के सहारे मुख पर वस्त्र वाला सघ विस्तार प्राप्त कर सका ।

(५)

ततः प्रभृत्येव मुनेस्तुनाम्ना, स्वतः प्रसिद्धोऽमरसम्प्रदायः ।
प्रवर्त्तते सम्प्रतिसोऽप्यतीते, विशेषकाले स्थिति कालवोढा ॥

अन्वयः—मुने. नाम्ना स्वत प्रसिद्ध. अमरसम्प्रदाय· तत प्रभृति विशेषकाले अतीते अपि स्थितिकालवोढा स प्रवर्त्तते एव ।

अर्थ—मुनिश्री जी के शुभनाम से अपने आप प्रसिद्ध हुआ अमर सम्प्रदाय उस समय से आज तक काफी समय वीतने पर भी स्थिति और काल को वहन करता हुआ प्रवृत्त ही है।

(६)

अयं महावीरविभोर्जिनस्य, अतस्तदैकं दश चेति सख्याम् ।
सुपञ्चकृत्वः पुनरेव संख्याम्. प्रपूर्य पट्टस्य स्वतोऽधिकारी ॥

अन्वयः—जिनस्य महावीरविभोः, अत एक च दश चेति संख्या पुन पञ्चकृत्व· प्रपूर्य अर्थात् पञ्च पञ्चाशत पूरणीकृत्य, पञ्चपञ्चाशत्तमस्य पट्टस्य अयम् अधिकारी स्वतः अस्ति ।

अर्थ—प्रभु जिनेश्वर महावीर के पचपनवें पाट के आपश्री गणना-क्रम से अपने आप अधिकारी थे । क्योंकि ११ सख्या को पाँच वार आवृत्ति के साथ पूरण प्रत्ययान्त करने पर पञ्च पञ्चाशत्तम (५५) वनता है ।

(७)

दिवं प्रयाते मुनिनायकेऽस्मिन् पुनस्तदा श्री तुलसीमुनीश. ।
अशोभताचार्यपद मुनीनाम्, गते रवौ चन्द्र इवातिशेते ॥

अन्वय.—अस्मिन् मुनिनायके दिव प्रयाते सति तदा पुन. श्री तुलसी मुनीशः मुनीनाम् आचार्यपदम् अशोभत, रवौ गते चन्द्र इव अतिशेते ।

अर्थ—इन आचार्यश्री के स्वर्गारोहण पर तब फिर श्री तुलसीजी महाराज ने मुनियो के आचार्यपद को सुशोभित किया, रवि के अस्त हो जाने पर जैसे चन्द्रमा शोभा पाता है ।

(८)

अयं हि मेवाड वसुन्धरायाः, प्रतापसिंहाधिपपालितायाः ।
गृहे फकीरेन्दुमहाजनस्य, जनि प्रपेदे जुनियाख्यवासे ॥

अन्वय—अय हि प्रतापसिंहाभिद्य पालिताया मेवाडवसुन्धरायाः जुनियाख्यवासे फकीरेन्दु महाजनस्य गृहे जनि प्रपेदे ।

अर्थ—ये श्री तुलसीमुनि महाराज महाराणा प्रतापसिंहजी राजा के द्वारा सरक्षित मेवाड-भूमि के ग्राम जुनियाँ मे महाजन श्री फकीरचन्द्रजी के घर मे उत्पन्न हुए थे ।

(९)

विवाहित सन्नपि रागरीतिम्, विहाय वव्रे परमां विरक्तिम् ।
अतोऽयमन्ते मुनिदेवसिंहात्, अवाप्य दीक्षां महिमानमाप ॥

अन्वयः—विवाहित सन् अपि अय रागरीति विहाय परमां विरक्ति वव्रे । अत अन्ते मुनिदेवसिंहात् दीक्षाम् अवाप्य महिमानम् आप ।

अर्थ—विवाहित होते हुए भी आपने राग-रीति को छोड परम विरक्ति को स्वीकार किया था । अत. आचार्य श्रीमान् अमरसिंह मुनि महाराज से दीक्षा ग्रहण कर महत्व प्राप्त किया ।

(१०)

महोत्तमं देवसमं गुणीशम्, मुनिं सदावन्दितपादपद्मम् ।
महोपकारी गुरुदेवसिंहः, तदैनमाचार्ययुवानमाह ॥

अन्वयः—तदा महोपकारी गुरुदेवसिंह महोत्तम सदावन्दितपादपद्म देवसमं गुणीशं मुनिं (श्रीतुलसीम्) एनम् आचार्ययुवानम् आह ।

अर्थ—उस समय परम उपकारी गुरुदेवसिंह श्रीअमरसिंहजी महाराज नें परम उत्तम सदागुरुभक्ति मे लीन रहने वाले देवतुल्य सर्वथा योग्य मुनि श्रीतुलसीजी को युवाचार्य वना दिया ।

(११)

अतोऽयमग्रे निपुणोऽधिकर्त्ता, बभूव भव्येऽमरसम्प्रदाये ।
प्रभावमस्याधिकमेव मत्वा, नमन्ति सर्वे मुनयो मुनीशम् ॥

अन्वयः—अत. अग्रे अय निपुण अधिकर्त्ता भव्ये अमरसम्प्रदाये बभूव । अस्य अधिकं प्रभाव मत्वा एव सर्वे मुनय मुनीश (श्रीतुलसीमहाराज) नमन्ति ।

अर्थ—इसलिए आगे चलकर ये निपुण अधिकारी, भव्य अमरसम्प्रदाय मे सिद्ध हुए । इनके अधिक प्रभाव को मानकर सभी मुनिजन (श्रद्धा से) झुक जाते थे ।

(१२)

अयं प्रसिद्धस्तुलसीमुनीशः, विभिन्नदेशेषु विहृत्य धर्मम् ।
विबोध्य जैनं विततायुरन्ते, विभुज्य संस्तारपदं विरेमे ॥

अन्वयः—अयं प्रसिद्ध. तुलसीमुनीश विभिन्नदेशेपु विहृत्य जैन धर्मं विवोध्य अन्ते वितताुः सन् सस्तारपद विभुज्य विरेमे ।

अर्थ—ये प्रख्यात श्रीतुलसीजी आचार्य विभिन्न स्थानो पर विहार कर जैन धर्म को समझाकर अन्त मे लम्वे आयुष्य होने पर सथारा पचख कर विराम प्राप्त किया ।

(१३)

तदाऽस्य शिष्यो विनयोन्नतोऽसौ, कृताधिशान्तिर्यमिनां वरिष्ठः ।
सुजानमल्लो विदुषां विशिष्ट., जातस्तृतीयोऽमरपट्टधारी ॥

अन्वय·—तदा अस्य असौ विनयोन्नत, कृताधिशान्ति, यमिना वरिष्ठ, विदुषा विशिष्ट, शिष्य सुजानमल्ल तृतीयः अमरपट्टधारी जात.

अर्थ—श्रीतुलसीमुनि महाराज के काल कर जाने पर उस समय इनके वे परम विनयी, शान्त, परमजितेन्द्रिय, विशिष्टविद्वान शिष्य श्रीसुजानमलमुनिजी महाराज तृतीय अमरपट्टधारी आचार्य हुए।

(१४)

ततस्तदाचार्य इवातिशोभी, गुरुर्बभूवामरसम्प्रदाये ।
मुनिव्रजे शीर्षमणिर्यथायम्, व्यराजत ख्यातिधरे यशस्वी ॥

अन्वयः—तत. अमरसम्प्रदाये आचार्य अतिशोभी गुरु. इव बभूव। अय ख्यातिधरे मुनिव्रजे यशस्वी शीर्षमणि यथा राजते, तथा व्यराजत।

अर्थ—तदनन्तर अमरसम्प्रदाय मे ये आचार्य श्रीसुजानमलमुनिजी महाराज अतिशोभाधरी बृहस्पति के समान हुए। ये परमयशस्वी मुनियो के समुदाय मे चमकती शिरोमणि जैसे शोभा पाती है, उसी प्रकार आपश्री शोभा पाते थे।

(१५)

र्जनि नगर्यां सरवाडनाम्न्याम्, सुपत्तनस्याजयमेरुनाम्न. ।
गतोऽस्ति भण्डारिण एव नाम्नः, सियाजुजानेर्विजयादिचन्द्रात् ॥

अन्वय—(अय) सियाजुजाने विजयादिचन्द्रात् भण्डारिण· नाम्नः सुपत्तनस्य अजयमेरुनाम्न सरवाड़नाम्न्याम् नगर्यां जनि गत. अस्ति।

अर्थ—आपश्री सियाजुनाम की पत्नी वाले श्री विजयचन्द्रजी भण्डारी से, जिला अजमेर की सरवाड़ नगरी मे, उत्पन्न हुए थे।

(१६)

अयं जगाम श्रमणाधिराजः, समण्डल केवलमेव देशान् ।
विकासशून्यान् गृहविप्रकृष्टान्, विशालमालव्यभुवो मरोश्च ॥

अन्वय—अय समण्डल श्रमणाधिराजः केवल मरो विशालमालव्य-भुव' विकास शून्यान् गृहविप्रकृष्टान् देशान् एव जगाम ।

अर्थ—ये मण्डल के साथ आचार्यश्री केवल मरुभूमि के और विशाल मालव्य की भूमि के अविकसित दूर-दूर घरवाले स्थानो को गए थे ।

(१७)

अतस्ततस्त्या मनुजाः समस्ताः, गतेऽपि कालेऽप्यधुना च नाम्ना ।
सुजानमल्लं मुनिमण्डलेशम्, सदैवमन्त.करणे स्मरन्ति ॥

अन्वय—अतः ततस्त्या समस्ता' मनुष्याः काले गतेऽपि मुनिमण्ड-लेश सुजानमल्ल सदा नाम्ना एवम् अन्त करणे अधुना अपि स्मरन्ति ।

अर्थ—इसलिए वहाँ के निवासी सभी मनुष्य समय वीतने पर भी आचार्य श्रीमुनिसुजानमलजी महाराज को नाम से सदा उसी प्रकार हृदय मे अब भी स्मरण करते चले आ रहे हैं ।

(१८)

महोपकर्त्तारममुं मुनीशम्, न केवलं जैनजनाः स्मरन्ति ।
तथा हि चान्ये सकला मनुष्याः, सुजानमल्लं तमपि स्मरन्ति ॥

अवन्यः—न केवल जैनजना हि अमु महोपकर्त्तार मुनीश सुजानमल्ल स्मरन्ति, अन्ये च सकला मनुष्या तथा स्मरन्ति ।

अर्थ—न केवल जैनजन ही उन महोपकारी आचार्य श्रीसुजानमलजी महाराज को दूसरे सभी मनुष्य उसी प्रकार स्मरण करते रहे हैं ।

(१९)

अयं मुनीशोऽमरपट्टधारी, सुजानमल्लोऽपि तथैवमन्ते ।
विशेपसंस्तारपद विभुज्य, गत सहर्प स्वमुनीन् विहाय ॥

अन्वय.—अयम् अमरपट्टधारी मुनीश सुजानमल्ल अपि अन्ते तथा एव विशेषसस्तारपद विभुज्य स्वमुनीन् विहाय सहर्पं गत. ।

अर्थ—ये अमरपट्टधारी आचार्य श्रीसुजानमलजी महाराज भी उसी प्रकार अन्त मे प्रशस्त सथारा प्राप्तकर अपने मुनियो को छोड महर्प चले गए ।

(२०)

सुजानमल्ले मुनिसंघपूज्ये, दिवं प्रयातेऽमरपट्टधारी ।
वभूव तस्यैव मुनेश्च शिष्यः, चतुर्थ आचार्यवरो जितेशः ॥

अन्वय —मुनिसङ्घपूज्ये सुजानमल्ले दिव प्रयाते सति तस्य च मुने. एव शिष्य जितेश अमरपट्टधारो चतुर्थ आचार्यवर वभूव ।

अर्थ—आचार्य श्रीसुजानमलजी महाराज के स्वर्गारोहण होने पर उन मुनि-महाराज के ही शिष्य श्रीजीतमलजी मुनिराज अमरपट्टधारी चतुर्थ आचार्य हुए ।

(२१)

अयं विशिष्टो विविधक्रियासु, कलाधरोऽभूज्जितमल्लदेवः ।
महाचमत्कारपरासु स्रष्टा, सुलेखनासु प्रथितो मुनीशः ॥

अन्वय.—अय विविधक्रियासु विशिष्ट कलाधर महाचमत्कारपरासु सुलेखनासु प्रथित स्रष्टा मुनीश. जितमल्लदेव. अभूत् ।

अर्थ—ये विविधक्रियाओ मे विशिष्ट कलाधर अत्युत्कृष्ट सुन्दर लेखनाओ मे यशस्वी स्रष्टा आचार्य श्री जीतमलमुनि महाराज हुए ।

(२२)

अथास्य वैशिष्ट्यमशक्नुवन्तः, जना नरेशं गमयन्ति सन्तम् ।
अतो नरेशोऽपि मरोर्धरायाः, परीक्षितुं तं समुपागमत् सः ॥

अन्वयः—अथ जना अस्य वैशिष्ट्यम् अशक्नुवन्त नरेश सन्तम् गमयन्ति । अतः मरो धरायाः स. नरेशः अपि त परीक्षितु समुपागमत् ।

अर्थ—तदनन्तर मनुष्यो ने इनके वैशिष्ट्य को सहन न करते हुए राजा को सन्तश्री के पास पहुँचा दिया । इस प्रेरणा के कारण वह मारवाड की भूमि का राजा भी उनकी परीक्षा करने के लिए आया था ।

(२३)

जैनानिमान् प्रहसितुं कपटोद्भवं तत् ;
राजानमित्यपि पुनर्जलविन्दुवृत्तम् ।
जीवा भवन्ति शतशो निशितेषुपृक्ते ,
विन्दौ वदन्ति मुनय. पिशुना ब्रुवन्ति ॥

अन्वयः—इमान् जैनान् प्रहसितु पिशुनाः 'मुनय वदन्ति, यत् निशितेषु पृक्ते विन्दौ शतशः जीवा. भवन्ति' तत्जलविन्दुवृत्त कपटोद्भवम् इति राजान ब्रुवन्ति ।

अर्थ—इन जैनजन की हँसी उड़ाने के लिए चुगलखोर—'ये मुनिजन कहते हैं कि तीखे वाण के अग्र भाग पर लगी हुई एक बूंद मे शतश जीव होते हैं—वह जलविन्दु वृत्त कपट से उत्पन्न है'—ऐसा राजा को कहने लगे ।

(२४)

उक्तं सविस्मयमिदं सहसा निशम्य ,
ज्ञातुं किमस्ति किमुवा मुनयो वदन्ति ।
इत्थ विचार्यं च पुनर्मुनिमेव गत्वा ,
पृच्छेयमेवमिति तत्स्वयमागतोऽहम् ॥

अन्वयः—राजा कथयति—यत् इदम् उक्तं सविस्मय निशम्य किम् अस्ति ? किमु वा मुनय वदन्ति ? पुनः च गत्वा मुनिम् एव तत् एव पृच्छेयम् इति इत्थ विचार्य अह ज्ञातु सहसा स्वयम् आगत (अस्मि) ।

अर्थ—राजा कहता है कि इस कहे गये को सुनकर कि क्या है ? क्या मुनिजन कहते हैं ? और फिर जाकर मुनिमहाराज से ही वह ऐसा पूछ लूं, ऐसा इस प्रकार सोचकर मैं जानने के लिए एक साथ स्वय आया हूँ ।

(२५)

राज्ञस्तदोच्चरितमेवमिमं निशम्य ,
प्रश्नं मुनि. स्वयमयं वदतीति तथ्यम् ।
जीवा भवन्ति शतश पुनरेकविन्दौ ,
वारो भवन्तमपि सत्यमिदं ब्रवीमि ॥

अन्वय—तदा एव राज्ञ इमम् उच्चरित प्रश्न निशम्य अयं स्वय मुनि वदति, यत् वार एकविन्दौ शतश जीवा भवन्ति इति तथ्यम् (अस्ति) पुन अहम् अपि इद सत्यम् इति भवन्त ब्रवीमि ।

अर्थ—उस समय इस प्रकार राजा के इस उक्त प्रश्न को सुनकर ये स्वय मुनिश्री कहने लगे कि पानी की एक बूंद मे सैकड़ो जीव होते है, यह तथ्य है । फिर मैं भी यह सत्य है, ऐसा आपको बताता हू ।

(२६)

सत्यं तथाप्यवनिप ! स्वयमेवमेव ,
चित्रे विलिख्य करिणः परिदर्शयामि ।
तस्मादिमं भवत एव तु संशय तम् ,
शक्तो भवेयमहमित्यपि दूरमेतुम् ॥

अन्वयः—एव सत्यम् (अस्ति) । तथापि हे अवनिप ! स्वयम् अहम् एव (एकस्मिन्) चित्रे करिण निलिख्य (भवन्त) परिदर्शयामि । तस्मात् भवत. तु इम त सशयम् अपि अह दूरम् एतु शक्त इति भवेयम् ।

अर्थ—यद्यपि इस प्रकार सत्य है, तथापि राजन् ! स्वय मैं ही एक चित्र मे हाथियो को चित्रित कर आपको दिखलाता हूँ । जिससे आपके तो इसी सन्देह को भी मैं दूर करने के लिए समर्थ हो ही सकूँगा ।

(२७)

चित्रं विलिख्य करिणां मुनिरेव विन्दौ ,
राजानमाह पुनरेवमिमे समेते ।
जीवाः स्थिता अपि तु सूक्ष्मशरीरहेतोः ,
विन्दौ स्थितानपि वयं विषयान् न कुर्मः ॥

अन्वयः—(अय) मुनिः एव विन्दौ करिणा चित्र विलिख्य राजानम् आह—यत् इमे समे (करिण) (सन्ति) किन्तु सूक्ष्मशरीरहेतो' वय (इमान् करिणः न पश्याम), एव पुन जीवाः स्थिता अपि (सन्ति), किन्तु सूक्ष्म-शरीरहेतो. विन्दौ स्थितान् जीवान् अपि वय (चक्षुषः) विषयान् न कुर्म अर्थात् तान् न पश्याम ।

अर्थ—इन मुनिजी ने विन्दु मे हाथियो के चित्र बनाकर राजा से कहा कि ये सब हाथी हैं, किन्तु सूक्ष्मकाय के कारण से हम इन हाथियो को नही देख पाते, इसी प्रकार फिर विन्दु मे रहे हुए जीवो को भी हम आँख का विषय नही कर पाते, अर्थात् उन जीवो को देख नही पाते ।

(२८)

आश्चर्यमेवमपहाय धराधिपोऽयम् ,
वक्तु कठोरवचनानि जनान् प्रवृत्तः ।
तत्र स्थितो मुनिरय क्षमते जनांस्तान्,
राजानमप्यविनय क्षमितु प्रयुङ्क्ते ॥

अन्वयः—अय धराधिप एवम् आश्चर्यम् अपहाय जनान् कठोर-वचनानि वक्तु प्रवृत्त, तत्र अय स्थित मुनि तान् जनान् क्षमते राजानम् अपि अविनय क्षमितु प्रयुङ्क्ते ।

अर्थ—इन जोधपुर-नरेश ने इस प्रकार अपने आश्चर्य को दूरकर मनुष्यो को फटकारना शुरू किया तो वहाँ पर इन विराजित मुनिश्री ने उन मनुष्यो को क्षमा किया और जोधपुर-नरेश को भी उनके अविनय को क्षमा कर देने के लिए अपने सामर्थ्य का प्रयोग किया ।

(२९)

सुजानमल्लस्य गुरोरपीदम्, यशो मुनीशस्य प्रसारयन्यः ।
मुनिर्विशिष्टार्जित चित्रविद्य, जात. प्रसिद्धोऽधिमरुप्रदेशम् ॥

अन्वयः—मुनीशस्य सुजानमल्लस्य गुरो अपि इद यश प्रसारयन् अय विशिष्टार्जित चित्रविद्य प्रसिद्ध अधिमरुप्रदेश जात ।

अर्थ—आचार्य श्रीसुजानमलजी गुरुदेव के भी इस यश को फैलाते हुए ये प्रमुख प्राप्त चित्र विद्यावाले श्रीजीतमलजी महाराज मरुधर देश मे प्रसिद्ध हुए ।

(३०)

सुजानमल्लात् सुपितु सुपुत्र, सुमातरि ज्ञातसुभद्रिकायाम् ।
मरौ प्रसिद्धो जितमल्लदेव, बभूव चित्रेश मुनीश्वरोऽयम् ॥

अन्वय.—अय मरौ प्रसिद्ध चित्रेशमुनीश्वर जितमल्लदेव सुजान-मल्लात् सुपितु ज्ञातसुभद्रिकाया सुमातरि सुपुत्र बभूव ।

अर्थ—ये मारवाड मे चित्र ज्ञानी आचार्य श्री जीतमलजी महाराज सुपिता श्रीसुजानमलजी साहब से जानी-मानी श्रीमती सुभद्रादेवीजी की गोद मे सुपुत्र हुए ।

(३१)

न कोऽपि शक्तोऽस्ति जगद् विजेतुम्, तथापि सन्तं जयिनं वदामः ।
न हेतुरन्यो जगति प्रशस्तेः, वयं गुणाना गणनां भजामः ॥

अन्वय—कः अपि जगत् विजेतु शक्त न अस्ति, तथापि (वयम्) इम सन्त (जगतः) जयिनं वदाम । जगति प्रशस्ते हेतु अन्य. (कोऽपि) न अस्ति गुणात् ऋते । (अत) वय गुणाना गणना भजाम ।

अर्थ—कोई भी जगत् को जीतने के लिए समर्थ नही है, तो भी हम इन मुनि महाराज को विजयी कहते हैं। इसका कारण जगत् मे प्रशसा के अतिरिक्त कोई दूसरा हेतु नही हैं । इससे हम गुणो की गणना करते है, अर्थात् जो गुणी हैं, वह जयी है, विजेता है ।

(३२)

अतो महान्तं गुणिनं जयन्तम्, गणं गुणानां गणनीयगुण्यम् ।
श्रयामहे तं जितमल्लदेवम्, जितेन्द्रियं ज्ञाननिधिं मुनीशम् ॥

अन्वयः—अत वयं त गुणाना गणनीयगुण्य गण जयन्त जितेन्द्रिय-ज्ञाननिधि महान्त गुणिनं मुनीश जितमल्लदेवं श्रयामहे ।

अर्थ—इन सब कारणो से हम उन गुणो के गणना करने योग्य गुणो से युक्त, मुनियो के ज्ञान के कोष, महान् गुणी आचार्य श्री जीतमलजी महाराज को आश्रय मानते हैं, भजते है ।

(३३)

दिवं गते श्रीजितमल्लदेवे, विशेषशोभाधरपण्डितेऽस्मिन् ।
ततोऽस्य शिष्यो मुनिशेखरोऽसौ, विशिष्टगीर्ज्ञानमलो बभूव ॥

अन्वय.—अस्मिन् विशेष शोभाधरपण्डिते श्रीजितमल्लदेवे दिव गते सति तत. अस्य असौ विष्टिगी शिष्य. ज्ञानमल. मुनिशेखर बभूव ।

अर्थ—इन कलाधरो मे कुशल श्री जीतमलजी महाराज के काल पूरा करने पर उनके पीछे आपके वे प्रभावीवक्ता शिष्य श्री ज्ञानमलजी मुनि आचार्य हुए ।

(३४)

गुणाग्रणीर्धीरमुनिप्रवीण, सतां विशिष्टोऽपि सुखागभीरः ।
अयं गभीरोऽमरपट्टधारी, विराजतेऽद्यापि यशश्शरीरः ॥

अन्वयः—अयं सतां विशिष्टः सन् अपि सुखः, [illegible] सन् धीरमुनि प्रवीणः गुणाग्रणी सन् गभीरः यशश्शरीरः सन् अमरपट्टधारी अद्य अपि विराजते ।

अर्थ—ये सत्पुरुषों में श्रेष्ठ [illegible] थे, [illegible] धीरमुनियों में प्रवीण थे, गुणों के प्रमुख होते हुए भी गंभीर थे, यश के [illegible] भी अमरपट्टधारी बन आज भी विराजमान हैं ।

(३५)

अयं सुपुत्रोऽभवदग्रगण्यः, शुभैषिणोः पूतयशः सुपित्रोः ।
सुमान जोरावरमल्लनाम्नोः, सुसेतरावास्थ-गुलेच्छगस्थोः ॥

अन्वयः—अयं सुसेतरावांस्थ-गुलेच्छगस्थोः शुभैषिणोः पूतयशः सुपित्रोः सुमानजोरावरमल्ल नाम्नोः अग्रगण्यः सुपुत्रः अभवत् ।

अर्थ—ये सुन्दर सेतरावां (मारवाड़) के गुलेच्छागोत्र के शुभेच्छु पवित्र कीर्त्ति वाले अच्छे माता-पिता शोभन मानदेवी और जोरावरमल नामवालों के अग्रगण्य सुपुत्र थे ।

(३६)

सुलक्षणाया प्रयशास्तु गर्भे, यदास्थितः श्रीमति मानदेव्याः ।
अयं च जोरावरमल्लपित्रा, प्रमाणितः स्वप्नसुखेन मातुः ॥

अन्वयः—यदा च अयं सुलक्षणाया मानदेव्या श्रीमते गर्भे स्थितः, तदा मातुः स्वप्नसुखेन जोरावरमल्लपित्रा तु प्रयशा प्रमाणितः (कृत) ।

अर्थ—और जब आपश्री सुलक्षणा श्री मानदेवी के पवित्र गर्भ में स्थित हुए तभी माता के स्वप्न के सुख को देखकर श्री जोरावरमलजी पिता ने तो अत्यन्त यशस्वी बालक होगा, यह प्रमाणित कर दिया था ।

(३७)

विचारका मातुरिहैवमित्थम्, वदन्ति यस्मिन्समये महात्मा ।
सुगर्भमागत्य विराजतेऽसौ, सदा सुखं वर्द्धत एव शृण्मः ॥

अन्वयः—इह विचारका. (जना.) इत्थ वदन्ति, यस्मिन् समये असौ महान् आत्मा मातु सुगर्भम् आगत्य विराजते, तदा सुखम् एव वर्द्धते, एवम् (वय) शृण्म. ।

अर्थ—यहाँ विचारवान् मनुष्य इस प्रकार बताते है, कि जिस समय माता के पवित्र गर्भ मे पहुँचकर वह महान् आत्मा विराजित होती है, तब सुख ही सुख बढ़ता है । ऐसा हम सुनते हैं ।

(३८)

अतो वयं न्यायमुखेन विद्मः, यदा शुभं जन्म धृतं भवेत् स ।
अवश्यमेवं सुखमागतं स्यात्, यतः समे ते सुखभोगिनः स्यु. ॥

अन्वय.—यदा स शुभ जन्म घृत भवेत्, तदा एव सुखम् आगत स्यात्, यत ते समे सुखभोगिन स्यु. । अत· (एतत्सर्वं) वय उक्तेन न्यायमुखेन विद्म. ।

अर्थ—जब उन्होने शुभ जन्म धारण किया हो, तो अवश्य ऐसा आनन्द आया होगा, जिससे वे सब आनन्दित हुए हो । इसलिए यह सब हम उक्त न्याय द्वारा समझ सकते हैं ।

(३९)

प्रमीयतेऽनेन सुखेन दु खम्, यदा पितृभ्यामिह दुःखमूढम् ।
भवेदिदं यूनि गते विरक्तिम्, कथं तदेतन् न हि तर्कयेम ॥

अन्वय—विरक्ति गते यूनि सति इह पितृभ्या दु खम् ऊढं तत् इद दुःख सुखेन अनेन प्रमीयते, किन्तु तत् कथ भवेत् इति वक्तु न शक्नुमः इत्येव केवल न हि, अपितु (वयं) न तर्कयेम ।

अर्थ—युवा पुत्र के विरक्त होने पर माता-पिता ने दु ख उठाया, वह दु ख इस सुख से समझा जा सकता है। किन्तु वह कैसा होगा, यह कहा नही जा सकता । यह केवल इतना ही नही, अपितु हम उस दु ख को अनुमान से भी नही जान सकते ।

(४०)

तथापि दीक्षानुमतिं ददाते, सुताय तौ यौ पितरौ विमुग्धौ ।
कथं भवेद् दाढ्यमह विरक्ते , सुतस्य तन् नानुमिर्ति दधामि ।।

अन्वयः—तथापि तौ पितरौ सुताय दीक्षानुमति ददाते, यौ पितरौ विमुग्धौ भवेताम् । तस्य सुतस्य विरक्ते दाढ्यं कथ भवेत् । तत् अह तु अनुमिति न दधामि ।

अर्थ—तो भी वे माता-पिता दीक्षा की अनुमति दे देते हैं, जो माता-पिता पूर्ण मुग्ध हो ! उस पुत्र की विरक्ति की कैसी दृढता होगी, उसका मैं तो अनुमान भी नही लगा सकता ।

(४१)

क्रमेण वैशिष्ट्यमुपेत्य यामे, गुरु· पुनः पञ्चमपट्टधारी ।
यतोऽमरेन्द्रस्य मुने· सभायाम्, स्तुति दधन्मृत्युमवाप्य नाकम् ।।

अन्वय – (पुन) अय क्रमेण मुने अमरेन्द्रस्य पञ्चमपट्टधारी गुरुः श्रीज्ञानमल्ल सयमे वैशिष्ट्यम् उपेत्य सभायां स्तुति दधत् मृत्युम् अवाप्य नाक गत ।

अर्थ—फिर ये क्रम से मुनि अमरेन्द्र के पञ्चम पाट के धारक आचार्यश्री ज्ञानमलजी महाराज सयम के विषय मे गौरव धारण कर भक्तो की सभा मे उपदेशार्थ पाट पर विराजे हुए भक्तामरादिस्तोत्र पढते हुए मृत्यु प्राप्तकर स्वर्गाधिकारी हुए ।

(४२)

गुरु. प्रयाते दिवमेष षष्ठ., प्रशस्तसंस्तारमये स्तुतान्ते ।
कृते मुनौ ज्ञानमलेऽमरस्य, स्थितोहि पट्टे मुनिपूर्णिमेशः ।।

अन्वयः—प्रशस्त सस्तारमये स्तुतान्ते कृते सति ज्ञानमले मुनौ दिव प्रयाते अमरस्य पट्टे षष्ठ. गुरु हि एष. मुनिपूर्णिमेश स्थितः (अभवत्) ।

अर्थ—प्रशस्त सस्तार युक्त स्तुति करते-करते अन्त हो ऐसे सस्तार के किए जाने पर श्रीज्ञानमलजी मुनि महाराज के स्वर्गारोहण के पीछे मुनिश्री अमरसिंह जी महाराज के पाट पर छठे आचार्य ये ही मुनि श्रीपूनमचन्दजी महाराज स्थित हुए ।

(४३)

अयं मुनि. पूर्णिमचन्द्रनामा बभूव देवेन्द्र इव प्रशस्त ।
महायशा. पूर्णिमचन्द्र एवम्, विराजते साधुविहायसीन ॥

अन्वयः—अयम् ईन पूर्णिमचन्द्रनामा मुनि. देवेन्द्र. इव प्रशस्त. वभूव । महायशा. सन् एव पूर्णिमचन्द्र· साधुविहायसि विराजते ।

अर्थ—ये समर्थ श्री पूनमचन्दजी नाम के मुनि इन्द्र के समान प्रशसनीय थे । महायश वाले होने से साक्षात् पूर्णिमा के चन्द्र वन मुनियो के आकाश मे सोहते थे ।

(४४)

अयं तु जालोर पदाधिवासि–, प्रसिद्धगान्धीकुलजान्महार्यात् ।
जनि गतोऽभूदुमजोपितु. सः, सुशील-फूलाँजननीशुभाङ्के ॥

अन्वयः—अय स जालोरपदाधिवासि प्रसिद्ध गान्धी कुलजात् महार्यात् उमजीपितु. सुशील फूलाँजननी शुभाङ्के जनि गत अभूत् ।

अर्थ—ये ही जालोर स्थान के रहने वाले प्रसिद्ध गान्धी वश के महाजन श्रीउमजी नाम के पिता से सुशील फूलाँ नाम की माता की पावन गोद मे उत्पन्न हुए थे ।

(४५)

अनेक देशेषु विशेषदृष्टिम्, स्वयं समाधाय ततः प्रतस्थे ।
विहृत्य धर्मस्य विविच्य रूपम्, मुनीश इद्धेषु जनान् प्रवक्तुम् ॥

अन्वयः—तत स्वय विशेषदृष्टि समाधाय धर्मस्य रूपं विविच्य (अय) मुनीश इद्धेषु अनेकदेशेषु विहृत्य जनान् प्रवक्तु प्रतस्थे ।

अर्थ—तदनन्तर स्वयं विशेप दृष्टि को समाहित कर धर्म का विवेचन कर ये आचार्य श्रीपूनमचन्दजी महाराज सम्पन्न अनेक स्थानो मे विहार कर श्रावको को प्रवचन देने के लिए एक स्थान से दूर स्थान पर पहुँचे ।

(४६)

जना· समेतं विबुधेशतुल्यम्, महान्तमाचार्यमगाध धैर्यम् ।
महोपकर्त्तारमिवादिनाथम्, नमन्ति सत्कृत्य दिवौकसस्ते ॥

अन्वयः—ते जना विबुधेशतुल्य अगाधधैर्य महान्तम् आचार्यम्, समेत महोपकर्त्तारम् आदिनाथ दिवौकस इव सत्कृत्य नमन्ति ।

अर्थ—वे श्रावक इन्द्र तुल्म अगाधधैर्यशाली महान् आचार्य को, आते हुए महोपकारी भगवान् आदिनाथ को देवता जैसे सत्कार कर अभिवन्दन करते हैं, वैसी ही सत्कार कर प्रणाम करते थे ।

(४७)

तत· प्रयाते दिवमेव तस्मिन्, मुनीश्वरे पूर्णिमचन्द्रदेवे ।
विशिष्टशिष्यो मुनिजेठमल्ल बभूव तत्पट्टपदाधिकारी ॥

अन्वयः—तत तस्मिन् मुनीश्वरे पूर्णिमचन्द्र देवे दिव प्रयाते सति तत्पट्टपदाधिकारी विशिष्टशिष्य. मुनिजेठमल्ल. एव बभूव ।

अर्थ—तत्पश्चात् उन आचार्य श्री पूनमचन्दजी महाराज के स्वर्गारोहण पर उनके पाट के अधिकारी प्रमुख शिष्य श्रीजेठमलजी मुनि महाराज हुए ।

(४८)

यतोऽस्य शिष्याः परमा विशिष्टा., गुणोत्तरा पञ्च बभूवुरत्र ।
तथापि पञ्चस्वयमेव वृद्ध, बभूव पट्टस्य ततोऽधिकर्त्ता ॥

अन्वयः—यत अस्य परमाः विशिष्टा गुणोत्तरा पञ्च शिष्या बभूवु । तथापि अत्र पञ्चसु अयम् एव वृद्ध , तत पट्टस्य अधिकर्त्ता अयमेव बभूव ।

अर्थ—क्योकि इन श्री पूनमचन्दजी आचार्यश्री के वडे होनहार पाँच शिष्य थे, तो भी इन पाँचो मे वृद्ध श्रीजेठमलजी मुनि महाराज ही थे, इससे इनको ही पाट का अधिकारी वनाया गया ।

(४९)

गुणाग्रणी सिद्धिपदोन्नतश्री, स्वतोविशिष्टोऽमरसम्प्रदाये ।
महामुनिः सोऽयमलंकृतश्रीः, विराजते भक्तगणस्य मौलौ ॥

अन्वय.—स. अयं गुणाग्रणी, सिद्धिपदोन्नतश्री, अमरसम्प्रदाये स्वत. विशिष्ट, अलकृतश्रीः, महामुनि भक्तगणस्य मौलौ विराजते।

अर्थ—वे ही गुणिविशिष्ट सिद्धि के स्थान की शोभा बढाने वाले मुनि श्रीअमरसिंहजी महाराज के सम्प्रदाय मे स्वय प्रमुख शोभा की भी शोभावाले ये आचार्य श्रीजेठमलजी मुनिराज श्रावक समुदाय के मस्तक पर शोभित है।

(५०)

कथा अनेका. परमा विचित्राः, मुने प्रशस्तस्य तु जीवनस्य ।
प्रचर्चिताः सन्ति तथापि तासाम्, परा कथा मृत्युदिनस्य तस्य ॥

अन्वयः—मुने प्रशस्तस्य जीवनस्य तु परमाः विचित्राः अनेका. कथा. प्रचर्चिता सन्ति, तथापि तासा (कथाना) तस्य मृत्युदिनस्य कथा परा (विद्यते)।

अर्थ—आत्मार्थी श्रीजेठमलजी मुनि के प्रशस्त जीवन की तो वडी अनोखी कथाएँ अथवा कहानियाँ काफी चर्चाओ का कारण बनी हुई है, तो भी उन कहानियो मे से मृत्यु के दिन की कहानी वडी अनोखी है।

(५१)

स्वघोषिते मृत्युदिने समस्ताः, जनाः समायान्ति दिदृक्षवस्ते ।
प्रतीक्षमाणा वचसो विशेषम्, निरीक्ष्य तेऽन्ते स्मयमेव जग्मुः ॥

अन्वयः—ते दिदृक्षव समस्ता जना स्वघोषिते मृत्युदिने वचस. विशेष प्रतीक्षमाणा. (आसन्)। अन्ते ते वचस. विशेष निरीक्ष्य स्मयम् एव जग्मु।

अर्थ—वे सभी दिदृक्षु मनुष्य स्वघोषित मृत्यु के दिन के विषय मे वात की सचाई की प्रतीक्षा करते हुए थे, अन्त मे वे वात की सचाई देखकर आश्चर्य चकित हो गए।

(५२)

यत स्वयं तेन दिनत्रयस्य, शुभस्य संस्तारमिमं विहत्तुंम् ।
प्रभाषितं ज्येष्ठमलेन लब्धम्, भविष्यत श्रेष्ठफलं यथोक्तम् ॥

अन्वय—यत तेन ज्येष्ठमलेन शुभस्य दिनत्रयस्य इम सस्तार विहतुं स्वय प्रभाषितम् (आसीत्)। (पुन) तेनैव भविष्यत यथोक्तं श्रेष्ठफल लब्धम् ।

अर्थ—क्योकि उन आत्मार्थी श्रीजेठमलजी मुनि महाराज ने स्वय कहा था कि मैं तीन दिन का सथारा करने के लिए हूँ। फिर जैसा भी उन्होंने कहा था, वैसा ही भविष्य का श्रेष्ठफल उन्होने पाया ।

(५३)

अतो जनास्ते धृतसाक्ष्यभावा:, परस्पर यान्ति विवक्षवोऽमी ।
अहो यथोक्त चरित सदास्य, न याति मिथ्यावचनं मुनीनाम् ॥

अन्वयः—अतः ते धृतसाक्ष्यभावा जना, अमी परस्पर विवक्षव· यान्ति, अहो ! अस्य चरित यथोक्त विद्यते। यतोहि मुनीना वचन मिथ्या न याति।

अर्थ—इसलिए वे सब कुछ साक्ष्य के अनुभवी मनुष्य परस्पर मे कहते हुए चले जा रहे है कि क्या ही उत्तम इन मुनिराज का चरित्र है ! कुछ कहते नही बनता ! क्योकि मुनियो का कहा हुआ कभी गलत नही होता।

(५४)

महामुनेस्तस्य यश प्रशस्तम्, विभाति भूमाविह भक्तिमत्सु ।
सदा जनेषु क्षणश स्मरत्सु, समक्षमक्षण: फलमाप्नुयाम: ॥

अन्वयः—तस्य महामुने· प्रशस्त यश इह भूमौ क्षणश स्मरत्सु भक्ति मत्सु विभाति। वयम् अक्षण समक्ष फलम् सदा आप्नुयाम ।

अर्थ—उन महामुनि श्री का प्रशस्त यश, इस भूमि पर क्षण भर के लिए स्मरण करते हुए भक्तिमान् पुरुषो मे देदीप्यमान है। हम आंख के सामने परिणाम सदा प्राप्त कर सकते हैं।

(५५)

इमं मुनिं वर्णयितुं पुनर्यते, न चेतसस्तोषमहं यतो लभे ।
गुणा अनेके पुनरेकलो मुने, वदेयमित्येवमृते मुनेः कथम् ॥

अन्वय.—यतः अह चेतम तोषं न लभे, (अतः) पुन इम मुनि वर्णयितु यते। मुनेः अनेके गुणा. सन्ति. पुन (अहम्) एकलः अस्मि, पुनरपि अह वर्णयितुमिच्छामि—अह वदेयम् इति एवम् ऋतेमुने अहं कथं वदेयम्-इति भवन्तः स्वत तर्कयन्तु इति व्यङ्ग्योऽर्थः ।

अर्थ—इन मुनिराज का गुण-वर्णन करते हुए हृदय को सन्तोप नही होता, क्योकि गुण तो अनेक हैं, और मैं अकेला हूँ। अत उन मुनिराज की कृपा के विना मैं कैसे यह कार्य कर सकता हूँ।

(५६)

अतोऽस्य शेषं चरितस्य मे मुने, पिपूर्मि सर्गे समयेन सङ्गतम् ।
अधीत्य जानन्तु विशेषतां मुने, अहं मुनेर्भृङ्ग इवाङ्घ्रिपद्मयोः ॥

अन्वयः—अत. अस्य मुने चरितस्य शेष समयेन सर्गे सङ्गत पिपूर्मि। भक्ता. सङ्गत शेषम् अधीत्य मुने विशेषता जानन्तु। अह तु मुनेः अङ्घ्रिपद्मयोः भृङ्ग. इव (अस्मि)। किमह वदेयमधिकम्।

अर्थ—इसलिए इन मुनिमहाराज के वर्णन के शेप को समय से सर्ग मे सङ्गत जिस प्रकार हो, वैसा कर पूरा कर रहा हूँ। श्रावकजन सङ्गत शेप को समझकर मुनिमहाराज की विशेषता को पहिचानने का प्रयत्न करे। मैं तो मुनिराज के चरण कमलो का भ्रमर हूँ और अधिक क्या वताऊँ।

इति श्रीमता राजस्थानकेसरिणा पण्डितरत्नेन
उपाध्याय पदालङ्कृतेन पुष्करमुनिना विरचिते
श्रीमदाचार्यामरसिंह महाकाव्ये
एकादश. सर्गः

❀

द्वादशः सर्गः

(१)

नमो नमस्ते प्रभवे मुनीनाम्, चमत्कृतेर्जेठमलाय कर्त्रे ।
वृतव्रताय श्रितसंयमाय, प्रशस्तगुप्तेः समितेश्च पत्ये ॥

अन्वय—ते मुनीना प्रभवे, श्रितसयमाय, वृतव्रताय, प्रशस्तगुप्ते समितेः च पत्ये, चमत्कृते कर्त्रे जेठमलाय नम नम. (अस्तु)।

अर्थ—उन मुनियो के प्रभु, सयमी, व्रती, प्रशस्त गुप्ति और समिति के धारक और चमत्कृति के कर्त्ता श्रीजेठमलजी मुनिराज के लिए वार-वार प्रणाम हो।

(२)

अयं विशिष्टो मुनिषु क्रियासु, प्रवीण एव प्रथितोऽद्भुतेऽपि ।
विधौ धृतश्रीरमरस्य संघे, प्रतूयतेऽसौ मुनिभि समस्तै. ॥

अन्वयः—अय (श्रीज्येष्ठमल्लो मुनि) मुनिपु विशिष्ट, क्रियासु प्रवीण', अद्भुतेऽपि विधौ प्रथित, असौ धृतश्री समस्तै मुनिभि अमरस्य सङ्घे प्रस्तूयते।

अर्थ—ये श्रीज्येष्ठमल्लजी मुनिराज, जो अमर सम्प्रदाय के सघ के नेता थे, मुनियो मे असाधारण, क्रियाओ मे प्रवीण, अद्भुत कृति के विषय मे विख्यात और श्रीधर, वे समस्त मुनिमहाराजो के द्वारा श्रीअमरसिंहमुनि महाराज के सघ मे प्रार्थित हैं। अर्थात सभी मुनिजन उनकी स्तुति करते हैं और उनको आदर्श मुनि के रूप मे प्रस्तुत करते हैं।

(३)

अथ प्रभाते मुनिषु प्रभुं तम्, नमन्ति भक्ता· परमप्रसन्ना ।
समाप्नुवन्ति प्रभुतां प्रभूताम्, न कोऽपि नैराश्यफलं दधाति ॥

अन्वय—अथ प्रभाते परमप्रसन्ना भक्ता त मुनिषु प्रभु नमन्ति। ते भक्ता प्रभूता प्रभुता समाप्नुवन्ति, कः अपि (च) नैराश्यफल न दधाति।

अर्थ—सर्वप्रथम प्रभात मे उन आत्मार्थी श्री को परमप्रसन्न भक्त प्रणाम करते है, और वे ही प्रसाद प्राप्त करने पर अत्याकर्षक प्रभुत्व को प्राप्त करते हैं अथवा उसकी समाप्ति करते हैं। देखा गया है कि उनका कोई भी भक्त आज तक निराश नही हुआ।

(४)

अहन्तु पश्यामि मरोर्धरायाः, सुराजवंश्या अपि राजपुत्रा' ।
गुरुं स्वकीयं मुनिमेव मत्त्वा, विशेषभक्त्या परमादरन्ति ॥

अन्वय —अह तु पश्यामि यत् मरो. धराया सुराजवश्या राजपुत्राः अपि (एन) मुनि स्वकीय गुरुं मत्त्वा विशेषभक्त्या परम् आदरन्ति ।

अर्थ—मैं देखता हूँ कि मारवाड की भूमि के अच्छे राजघरानो के राजपूत सरदार भी इन मुनि महाराज को अपना गुरु मानकर विशेष भक्ति से (आपश्री का) वडा आदर करते थे ।

(५)

कियन्महत्त्वं ननु तस्य नाम्नः, जपेऽस्ति तावद् यदि दृश्यतां तत् ।
न केवलं प्रत्यय एव वाचः, जपे फलप्रत्यय एव हेतुः ॥

अन्वयः—ननु तस्य नाम्न , जपे कियत् महत्त्वम् अस्ति ! तावत् यदि (तत् न दृश्यते) (तर्हि) तत् दृश्यताम् । केवलं वाच प्रत्यय एव न (अस्ति)। जपे सति फलप्रत्यय हेतु (अस्ति) ।

अर्थ—आत्मार्थी श्रीजेष्ठमल्लजी अथवा श्रीजेठमलजी मुनि महाराज के नाम के जप मे कितना क्या महत्त्व है, ऐसी शङ्का हो कि वह नही देखा जाता, तो फिर देखिए, केवल कहने का विश्वास नही है, तो नाम जप कीजिए—जप करने पर फल का विश्वास ही हेतु है, अर्थात् फल अवश्य प्राप्त होगा ।

(६)

अतः शुभां तस्य मुने' स्तुतिं ताम्, करोम्यहं भक्तजनैः सहैभिः ।
शिवं भवेद् येन मनीषितं तत्, यतो गुरुर्देवदयालुरेषः ॥

अन्वयः—यत एष गुरु देवदयालु (अस्ति) । अत अह तस्य मुने' तां शुभा स्तुतिम् एभि भक्तजनै सह करोमि, येन तत् मनीषित शिव भवेत् ।

अर्थ—क्योकि ये गुरु महाराज देवो के समान दयालु हैं । इससे मैं उन मुनिराज की उस मङ्गलमय स्तुति को इन भक्त पुरुषो के साथ करता हूँ, जिससे कि वह मनचीता फल प्राप्त हो ।

(७)

भजतु निरन्तरमति कलिवीरम् ।
वचनसिद्धगुरुदेवगभीरम् ॥

अन्वयः - हे भक्त ! भवान् अतिकलिवीर वचन-सिद्ध-गुरुदेवगभीर भजतु ।

अर्थ—अजी भक्तजी ! आप कलिसमय के वीर अर्थात् मुनिजन को अतिक्रमण न करते हुए वचनसिद्ध गुरुदेवो मे गम्भीर मुनिवर श्रीजेठमलजी महाराज को भजिए ।

(८)

ज्येष्ठमल्ल गुरुवरमतिकूपम् । सिद्धं भवति कठिनतररूपम् ।
भजतु निरन्तरमति कलिवीरम् । वचनसिद्धगुरुदेवगभीरम् ॥

अन्वय —अतिकूपं कार्यं पुन कठिनतररूपम् अपि भवेत्, तत् सिद्धं भवति अत हे भक्त ! भवान् ज्येष्ठमल्लगुरुवरम् अतिकलिवीर गुरुदेव-गभीर भजतु ।

अर्थ—कुए की गहराई को मात करने वाला कार्यं फिर कठिन से कठिन रूप का क्यो न हो ! वह सिद्ध हो जाता है । अत अजी भक्तजी ! आप श्री जेठमलजी गुरुश्रेष्ठ जो कलिसमय के वीर वचनसिद्ध हुए है, उनको भजिये ।

(९)

कार्यं किमपि न दुष्करमेवम् । स्मरति सन्ततं यो गुरुदेवम् ।
भजतु निरन्तमति कलिवीरम् । वचनसिद्धगुरुदेवगभीरम् ॥

अन्वयः - य सन्तत गुरुदेव स्मरति, (तस्य कृते) कार्यं किम् अपि एव न अस्ति, यत् दुष्कर भवेत् ! अत हे भक्त ! भवान् अतिकलिवीर वचनसिद्धगुरुदेव गभीर भजतु ।

अर्थ – जो निरन्तर गुरुदेव का स्मरण करता है, उसके लिए कार्य कोई भी ऐसा नही है, जो न हो सके अथवा कठिन हो ! इसलिए अजी भक्तजी ! आप कलि समय के वीर गुरुदेवो मे गम्भीर श्रीजेठमलजी मुनि महाराज को भजिए ।

---

० चतुष्पदी—अथवा चौपाई इति ज्ञेया ।

(१०)

नाम्नः सत्यमेवमुपगीतम् । क्षयति कष्टमतिशयि प्रतीतम् ।
भजतु निरन्तरमति कलिवीरम् । वचनसिद्धगुरुदेवगभीरम् ॥

अन्वय.—यस्य नाम्न सत्यम् एवम् उपगीतम् (अस्ति)। य. अतिशयि प्रतीत कष्टं क्षयति । अत हे भक्त ! भवान् अतिकलिवीर वचनसिद्ध गुरुदेवगभीर भजतु ।

अर्थ—जिनके नाम की सचाई इस प्रकार वन गई है कि वडे से वडा समझे जाने वाले कष्ट को नष्ट कर देता है । अत ओ भक्तवर ! आप कलिसमय के वीर वचनमिद्ध गुरुदेवो मे गम्भीर श्रीजेठमलजी मुनिराज को भजिए ।

(११)

जपति नाम यो गुणशृङ्गारम् । श्रयति सन्ततं सुखभण्डारम् ।
भजतु निरन्तरमति कलिवीरम् । वचनसिद्धगुरुदेव गभीरम् ॥

अन्वय.—य तस्य नाम जपति, स सन्तत सुखभण्डार श्रयति । अत. हे भक्त ! भवान् निरन्तरम् अति कलिवीर वचनसिद्धगुरुदेवगभीरं गुण-शृङ्गार श्रीमन्त ज्येष्ठमल्लं मुनिराज भजतु ।

अर्थ—जो उनके नाम को जपता है, वह सदा आनन्द ही आनन्द भोगता है । अत ओ भक्तवर ! आप कलिसमय के वीर वचनसिद्ध गुरुदेवो मे गम्भीर गुणो के शृङ्गार श्रीजेठमलजी मुनि महाराज को भजिए ।

(१२)

कुरुते राजमान्यजनसूच्यम् । नित्यं यः श्रयते मुनिपूज्यम् ।
भजतु निरन्तरमतिकलिवोरम् । वचनसिद्धगुरुदेवगभीरम् ॥

अन्वयः—य (भक्तः) नित्य मुनिपूज्यं श्रयते, त भक्त राजमान्य-जन सूच्य कुरुते । अत हे भक्त ! भवान् अतिकलिवीर वचनसिद्ध गुरुदेवगभीरं मुनिपूज्य श्रीज्येष्ठमल्ल मुनिराज भजतु ।

अर्थ—जो भक्त नित्य मुनियो से पूज्य गुरुदेव का आश्रय लेता है, उसको गुरुदेव राजमान्य पुरुषो का अभिवन्दनीय वना देते हैं । अतः ओ भक्तवर ! आप कलिसमय के वीर वचनसिद्ध गुरुदेव श्रीजेठमलजी मुनि महाराज को भजिए ।

(१३)

ज्येष्ठमल्लगुरुदेवं श्रयते । भक्त जनोविजनोऽपि विजयते ॥
भजतु निरन्तरमतिकलिवीरम् । वचनसिद्ध गुरुदेव गभीरम् ॥

अन्वय—यः ज्येष्ठमल्लगुरु व श्रयते, स विजन. अपि भक्तजनः विजयते। अत हे भक्त ! भवान् अतिकलिवीर वचनसिद्धगुरुदेवगभीर भजतु।

अर्थ—जो श्रीजेठमलजी गुरुदेव को आश्रय समझता है, वह एकाकी ही भक्त पुरुष विजय प्राप्त करता है। इसलिए ओ भक्तवर ! आप कलिममय के वीर वचनसिद्ध गुरुदेव श्री जेठमलजी मुनि महाराज को भजिये।

(१४)

महिमानं लभते रमणीयम् । श्रिया शरण्यं गुणभजनीयम् ॥
भजतु निरन्तर मतिकलिवीरम् । वचनसिद्ध गुरुदेवगभीरम् ॥

अन्वय.—य भक्त. गुणभजनीय शरण्य भजते, स रमणीय श्रियाः महिमान लभते । अतः हे भक्त ! अतिकलिवीर वचनसिद्धगुरुदेवगभीर भजतु।

अर्थ—जो भक्त गुणो से भजन करने योग्य शरण्य मानता है, वह अतिरमणीय लक्ष्मी के गौरव को प्राप्त करता है। अत ओ भक्तवर ! आप कलिसमय के वीर वचनसिद्ध गुरुदेव श्रीजेठमलजी मुनिराज को भजिए।

(१५)

रोगान् क्षणशो नाशयितारम् । प्रेतभूतबाधा. दमितारम् ॥
भजतु निरन्तरमतिकलिवीरम् । वचनसिद्ध गुरुदेवगभीरम् ॥

अन्वय—य भक्ताना रोगान् नाशयति, प्रेतभूतबाधा. च दमति, त रोगान् क्षणश नाशयितारम्, प्रेतभूतबाधा (च) दमितारम् निरन्तरम् अतिकलिवीरम् वचनसिद्ध गुरुदेवगभीर हे भक्त ! भवान् भजतु।

अर्थ—जो भक्तो के रोगो को क्षणमात्र मे नष्ट कर देता है और उनकी प्रेत-भूत की बाधाओ को दबा देता है, ऐसे उस रोगो को क्षण मे नष्ट करने वाले और प्रेतभूत की बाधा को दबाने वाले अतिकलिवीर वचनसिद्ध गुरुदेव गम्भीर श्री जेठमलजी मुनिराज को, ए भक्तवर ! आप भजिए।

(१६)

ज्येष्ठमल्ल-गुरुदेवं भजताम् । विजने विपिने मङ्गलमवताम् ।
भजतु निरन्तरमतिकलिवीरम् । वचनसिद्ध गुरुदेवगभीरम् ॥

अन्वय—भक्तः ज्येष्ठमल्लगुरुदेव भजताम्, विजने विपने मङ्गलम् अवताम् । हे भक्त ! भवान् निरन्तरम् अतिकलिवीर वचनसिद्धगुरुदेव गभीरम् श्रीमन्त ज्येष्ठमल्ल मुनिराज भजतु ।

अर्थ—भक्त श्रीजेठमलजी गुरुदेव का भजन करे और सूने वन मे मङ्गल का लाभ उठाएँ । इसलिए हे भक्त ! आप सदा अतिकलिवीर वचनसिद्ध गुरुदेव गम्भीर श्री मुनिराज को भजिए ।

(१७)

जन्मजन्मनां पापसमूहम् । क्षिपति जनस्य प्रतिदिनमूहम् ॥
भजतु निरन्तरमतिकलिवीरम् । वचनसिद्धगुरुदेवगभीरम् ॥

अन्वयः—(तस्य नामजप जनस्य जन्मजन्मना पापसमूहम् प्रतिदिन क्षिपति, इति वयम् ऊह कुर्म । अत हे भक्त ! भवान् अतिकलिवीर वचनसिद्धगुरुदेवगभीर श्रीमन्त ज्येष्ठमल्ल मुनिराज भजतु ।

अर्थ—उनका नाम जप मनुष्य के जन्म जन्म के पापसमूह को प्रतिदिन हटाता है, यह हम तर्क करते है । इसलिए ओ भक्तवर ! आप अतिकलिवीर वचनसिद्ध गुरुदेवगभीर श्रीजेठमलजी मुनिमहाराज को भजिए ।

(१८)

नाममात्रमत्यद्भुतफलदम् । जपतु निरन्तरमतः शर्मदम् ॥
भजतु निरन्तरमतिकलिवीरम् । वचनसिद्धगुरुदेवगभीरम् ॥

अन्वयः—तस्य मुनेः नाममात्रम् अत्यद्भुतफलदम् (अस्ति) । अत. तस्य शर्मद नाम भवान् भक्त जपतु । अत हे भक्त ! भवान् अतिकलिवीर वचनसिद्धगुरुदेवगभीर श्रीमन्त ज्येष्ठमल्ल मुनिराज भजतु ।

अर्थ—उन मुनिश्री का केवल नाम ही अद्भुतफल देने वाला है । इसलिए उनके कल्याणकारक नाम को आप जपिए । अत हे भक्त ! आप अतिकलिवीर वचनसिद्धगुरुदेवगभीर श्रीमान् मुनिराज को भजिए ।

(१९)

प्रातर्नित्य नाम गृहीतम् । नवनिधितुल्यं फल प्रभूतम् ॥
भजतु निरन्तरमतिकलिवीरम् । वचनसिद्धगुरुदेवगभीरम् ॥

अन्वयः—नित्य प्रात गृहीत तस्य नाम नवनिधितुल्य प्रभूत फल ददाति। अत हे भक्त ! अतिकलिवीर वचनसिद्धगुरुदेवगभीर श्रीमन्त ज्येष्ठमल्ल मुनिमहाराज भवान् भजतु।

अर्थ—नित्य प्रात लिया हुआ उनका नाम नवनिधि के समान बहुत फल देता है। अत ओ भक्तवर ! अतिकलिवीर वचनसिद्धगुरुदेवगम्भीर श्रीजेठमलजी मुनिमहाराज का भजन कीजिए।

(२०)

श्रयति न चित्रं देवसभाया । पारं याति न गुरोः कृपायाः ॥
भजतु निरन्तरमतिकलिवीरम् । वचनसिद्धगुरुदेवगभीरम् ॥

अन्वय. कोऽपि देवसभाया चित्र न श्रयति। एवमेव गुरो. कृपाया अपि पार न याति। अत हे भक्त ! अतिकलिवीर वचनसिद्धगुरु-देवगभीर भजतु।

अर्थ—कोई भी देवो की सभा का आश्चर्य नही मानता, क्योकि वे चाहे जैसा कर डालते है। इसी प्रकार गुरुदेव की कृपा का कोई पार नही पा सकता। इसलिए हे भक्तवर ! आप अतिकलिवीर वचनसिद्ध गुरुदेव गम्भीर श्रीजेठमलजी मुनिमहाराज की सेवा कीजिए।

(२१)

मुरलिर्ध्वनति शमो दिनरात्रम् । ज्येष्ठगुरोर्यदि करुणापात्रम् ॥
भजतु निरन्तरमतिकलिवीरम् । वचनसिद्धगुरुदेवगभीरम् ॥

अन्वयः—यदि कोऽपि भक्त ज्येष्ठगुरो करुणापात्र विद्यते, तर्हि तस्य गृहे दिनरात्र शम मुरलि ध्वनति। अत हे भक्त ! भवान् अतिकलिवीर वचनसिद्धगुरुदेवगभीर श्रीमन्त ज्येष्ठमल्ल मुनिराज भजतु।

अर्थ—यदि कोई भक्त श्रीजेठमलजी गुरुदेव का कृपापात्र वन जाता है, तो उसके घर पर रात दिन सुख की मुरली झनकार देने लगती है। इसलिए ए भक्त-वर ! आप अतिकलिवीर वचनसिद्धगुरुदेव गम्भीर श्रीजेठमलजी मुनिमहाराज की सेवा कीजिए।

(२२)

ताराचन्द्रगुरो: करुणाया: । पुष्कर एक: शिष्यसभाया: ॥
भजतु निरन्तरमतिकलिवीरम् । वचनसिद्धगुरुदेवगभीरम् ॥

अन्वय:– ताराचन्द्रगुरो करुणाया शिष्यसभाया अहमेक. पुष्कर. अस्मि । अत हे भक्त ! भवान् अतिकलिवीर वचनसिद्धगुरुदेवगभीर श्रीमन्त मुनिराज ज्येष्ठमल्ल महाराज निरन्तर भजतु ।

अर्थ– गुरुदेव श्रीताराचन्द्रजी महाराज की कृपा मे उत्पन्न शिष्यो के मण्डल का एक शिष्य पुष्कर हूँ, जो गुरुदेव श्रीजेठमलजी मुनिमहाराज का भक्त हूँ। अत ओ भक्तवर ! आप और मैं अतिकलिवीर वचनसिद्ध गुरुदेव गम्भीर श्रीजेठमलजी मुनिमहाराज की सेवा करे ।

(२३)

लब्ध्वा तस्य कृपासम्भारम् । तरि तारयन्नेमि सुपारम् ॥
भजतु निरन्तरमतिकलिवीरम् । वचनसिद्धगुरुदेवगभीरम् ॥

अन्वय:—तस्य कृपासम्भार लब्ध्वा अह तरि तारयन् सुपारम् एमि । अत: हे भक्त ! भवानपि अतिकलिवीर वचनसिद्धगुरुदेवगभीर श्रीमन्त ज्येष्ठमल्लं मुनिराज भजतु ।

अर्थ—गुरुदेव श्रीजेठमलजी मुनिमहाराज की कृपा के सम्भार को प्राप्त कर मैं जीवन नौका को तैराता हुआ ही पार पहुँच रहा हूँ ।

(२४)

ओमिति पूर्वं यदि शुभमन्त्रम् । ज्येष्ठं गुरुं जपति सहतन्त्रम् ॥
जपन सफलं भवति जनानाम् । सुफलं कथनं साधुजनानाम् ॥

अन्वय:—यदि (य. भक्त) ओम् इतिपूर्वं (कृत्वा) सहतन्त्र शुभमन्त्र गुरु ज्येष्ठं ज्येष्ठमल्ल जपति, तदा जनाना जपन सफल भवति—इति साधुजनाना कथनम् (अस्ति) । अत सुफल भवेत् ।

अर्थ—यदि जो भक्त ओम् पहले लगाकर तन्त्र के साथ शुभमन्त्र 'ओ ज्येष्ठ गुरु नमामि' को जपता है तो भक्तजन का जाप सफल होता है—ऐसा साधुसन्तो का कथन है ।

(२५)

दिव गते ज्येष्ठगुरौ शुभेऽस्मिन्, महामुनौ श्रीस्थविरप्रशस्तिः ।
महातपास्तारकचन्द्रकोऽसौ, मुनिर्बभूवास्य पदस्य योग्यः ॥

अन्वयः—अस्मिन् शुभे महामुनौ ज्येष्ठगुरौ दिव गते सति अस्य पदस्य योग्य श्रीस्थविरप्रशस्ति महातपा असौ तारकचन्द्रक. अर्थात् श्रीताराचन्द्रः मुनि बभूव ।

अर्थ—इन कल्याणकारी आत्मार्थी श्रीजेठमलजी गुरुदेव के स्वर्गारोहण पर आप श्री के स्थान के योग्य महास्थविर परमतपस्वी वे ताराचन्द्र मुनिमहाराज हुए ।

(२६)

सतीर्थ्य एवायमथातिसेवी, गुणाग्रणीर्धीरवरस्तपस्वी ।
बभूव शक्तोऽमरपट्टधारी, तदाऽष्टमस्तारकचन्द्र एषः ॥

अन्वय—अथ अय सतीर्थ्य, गुणाग्रणी, धीरवर, अतिसेवी, तपस्वी, शक्त सन् एष ताराचन्द्र मुनि एव अष्टम अमरपट्टधारी बभूव ।

अर्थ—क्योकि ये सतीर्थ्य अर्थात् गुरुभाई, गुणविशिष्ट, महाधीर, अतिसेवा-वृत्तिपरायण तपस्वी एव समर्थ होकर मुनिश्रीताराचन्द्रजी महाराज ही आचार्य श्रीअमरसिंहजी महाराज के आठवे पाट के अधिकारी हुए ।

(२७)

प्रसिद्धगुन्देचकुलप्रसूते, महाजनात् श्रीशिवलालनाम्न ।
अयं हि लेभे जनिमेवमङ्के, सुमातृकाज्ञानकुमारिकाया ॥

अन्वय—अय हि प्रसिद्धगुन्देचकुलप्रसूते महाजनात् श्रीशिवलाल-नाम्न सुमातृकाज्ञानकुमारिकाया अङ्के एव जनि लेभे ।

अर्थ—आपश्री ने प्रसिद्ध गुन्देचा कुल मे उत्पन्न हुए महाजन श्रीशिवलालजी से पवित्र माता ज्ञानकुमारी की गोदी मे जन्म प्राप्त किया था ।

(२८)

महाजनोऽय शिवलालनामा, बभूव बम्बोरपुरोऽधिवासी ।
प्रसिद्धमेवाडधराधिपस्य, प्रतापसिहस्य तदास्य भूमे ॥

अन्वय.—अय श्रीशिवलालनामा महाजन अस्य प्रसिद्धमेवाडधरा-धिपस्य प्रतापसिहस्य भूमे तदा बम्बोरपुर अधिवासी बभूव ।

अर्थ—ये शिवलालजी गुन्देचा ओसवाल महाजन प्रख्यात मेवाडभूमि के महाराज प्रतापसिह की भूमि की उस बम्बोरा नगरी के अधिवासी थे ।

(२९)

महामुनेरस्य सुशासनेवा, सुशिक्षणे द्वौ परमौ सुशिष्यौ ।
बभूवतु. पुष्करहीरकौतौ, सुविप्रसु क्षत्रियजातिसूतौ ॥

अन्वयः—अस्य महामुने. सुशामने वा सुशिक्षणे द्वौ परमौ सुशिष्यौ यौ ब्राह्मणक्षत्रियजातिसूतौ तौ पुष्करहीरकौ बभूवतु ।

अर्थ—इन महास्थविर श्रीताराचन्द्रजी महाराज के सुशासन मे अथवा सुशिक्षण मे तो दो वडे शिष्य जो ब्राह्मण और क्षत्रिय जाति मे उत्पन्न वे पुष्करमुनि और हीरामुनि हुए ।

(३०)

परन्तु शिष्यास्त्रय एवमासन्, मुनेस्तु ताराशशिनो गुरोर्मे ।
क्रमेण नामानि वदामि चैवम्, सुपुष्करो हीरक एव भैरु ॥

अन्वयः—परन्तु मे ताराशशिन· मुने गुरो एवं तु त्रय. शिष्या आसन् । अह क्रमेण (त्रयाणा शिष्याणा) नामानि एव वदामि—सुपुष्करः, हीरक. भैरुश्च (इति) ।

अर्थ—परन्तु मेरे श्रीताराचन्द्र मुनिजी गुरुदेव के वास्तव मे तो तीन शिष्य थे । मैं क्रम से तीनो शिष्यो के नाम ऐसे वताता हूँ कि पुष्कर मुनि, हीरामुनि और भैरु मुनि ।

(३१)

अयं मुनिर्भैरवशुद्धनामा, महातपस्वी गुरुदेव भक्तः ।
विभुज्य दीर्घायुरतीव सोऽन्ते, दिवं प्रयातः सहसाक्षणेन ॥

अन्वयः—अयं भैरवशुद्धनामा महातपस्वी गुरुदेवभक्त च (आसीत्) अन्ते सः अतीव दीर्घायु विभुज्य क्षणेन सहसा दिव प्रयातः ।

अर्थ—ये भैरव शुद्ध नामवाले मुनिजी वडे तपस्वी और गुरुदेवश्री के भक्त थे । अन्त मे वे दीर्घायु को भोगकर कुछ ही क्षणो के साथ सहसा स्वर्गवासी हुए ।

(३२)

अय कनीयान् मुनिरेव चासीत्, गुरो प्रिय. शिष्यगणे तपस्वी ।
दिव प्रयान्त प्रसमीक्ष्य सन्तम्, मनस्विनोऽन्ये मुनयो विषेदुः ॥

अन्वयः—अय मुनि शिष्यगणे कनीयान् एव किन्तु गुरो· तपस्वी सन् प्रिय आसीत् । सन्त दिव प्रयान्त प्रसमीक्ष्य अन्ये मनस्विन मुनय. विषेदु ।

अर्थ—ये मुनि शिष्यो के समुदाय मे सबसे छोटे थे, किन्तु गुरुदेवश्री को तपस्वी होने के कारण प्रिय थे । उनको काल करते हुए देखकर दूसरे मुनिजन भावुकतावश दु खी हुए ।

(३३)

यतो हि संस्तारपथा प्रयान्तम्, मुनि न सन्तः परिदेवयन्ति ।
निरीक्ष्य सन्त सहसा प्रयान्तम्, गुरोः प्रियायास्ति विषाद-हेतुः ॥

अन्वय—यतो हि सन्त· सस्तारपथा प्रयान्त मुनि न परिदेवयन्ति । (किन्तु परिदेवनस्य कारणमन्यत्)—स हि गुरोः प्रिय आसीत्—अत सहसा प्रयान्त मुनि निरीक्ष्य गुरोः प्रियाय विषाद-हेतु अस्ति ।

अर्थ—क्योकि मुनिजन सस्तारमार्ग से स्वर्गारोहण करने वाले मुनि के लिए कोई परिदेवन नही करते । किन्तु परिदेवन का कारण कोई और था—वे मुनि गुरुदेव के लिए प्रिय थे । अत यह विषाद का कारण था ।

(३४)

अय मदीय परम. सतीर्थ्य., मुनिस्तपस्वी समधीरवृत्ति ।
सुमध्यमो हीरक एव सत्सु, ततो गुरुस्त मुनिहीरमाह ॥

अन्वय—अय मदीय परम. सतीर्थ्य , सत्सु समधीरवृत्ति तपस्वी सुमध्यम हीरामुनि एव विद्यते । (अतएव) तत· त गुरु मुनिहीरम् आह ।

अर्थ—ये मेरे वडे सतीर्थ्य हैं और मुनियो मे समधीरवृत्ति, तपस्वी और मेरे गुरुदेवश्री के तीन शिष्यो मे से मध्यम हैं । अतएव इन कारणो से गुरुदेव इनको मुनिहीर अर्थात् मुनियो मे हीरा कहते थे ।

(३५)

गुरुस्तु हीरामुनिमेवमेवम्, मुनिं मदीयं गुरुबन्धुमेनम् ।
समाह्वयन्नेवमुवाच नाम्ना, ततोऽहमेवं वचसा ब्रवीमि ॥

अन्वयः—एव गुरुः तु हीरामुनिम् एव मुनिहीरम् एवम् उवाच, तत. अहम् एन मदीय गुरुबन्धु मुनिहीर समाह्वयन् हीरामुनिम् एवं वचसा ब्रवीमि ।

अर्थ—इस प्रकार गुरुदेवश्री तो हीरामुनिजी को मुनिहीरा इस प्रकार कहते ही पुकारा करते थे, किन्तु मैं भी इन अपने गुरुबन्धु को हीरामुनि को मुनिहीरा पुकारते हुए ही इस प्रकार वाणी से व्यक्त करता हूँ ।

(३६)

दिवं प्रयाते मम देवतुल्ये, गुरौ मुनौ तारकचन्द्रदेवे ।
अहं वरिष्ठो गुरुशिष्यसंघे, ततोऽभवं शिष्यजनेषु पूज्यः ॥

अन्वय.—मम देवतुल्ये गुरौ तारकचन्द्रदेवे मुनौ दिव प्रयाते तत. गुरुशिष्यसघे वरिष्ठ अह शिष्यजनेषु पूज्य अभवम् ।

अर्थ—मेरे देवतुल्य गुरु महाराज श्रीताराचन्द्र मुनिराज के स्वर्गारोहण पर तदनन्तर गुरुदेव के शिष्यो के समुदाय मे वरिष्ठ होने से मैं ही शिष्यजन का आदरणीय हुआ ।

इति श्रीमता राजस्थानकेसरिणा पण्डितरत्नेन
उपाध्याय पदालङ्कृतेन पुष्करमुनिना विरचिते
श्रीमदाचार्यामरसिंह महाकाव्ये
द्वादश. सर्गः

❀

त्रयोदश; सर्गः

(१)

महान्तमर्हन्तमिमं जितेन्द्रियम्, तपस्विनं केवलिनं सुशासनम्।
प्रतिक्षणं वीरमहिंसकं विभुम्, नमाम्यहं सन्मतिवर्द्धमानम् ॥

अन्वय—अहम् इम महान्त वीरम् अर्हन्त जितेन्द्रिय तपस्विनविभुम् अहिंसक केवलिन सन्मति-वर्द्धमानक प्रतिक्षण नमामि ।

अर्थ—मैं इन महान् वीर अर्हन् जितेन्द्रिय तपस्वी व्यापक अहिंसक केवली श्री सन्मति वर्द्धमान स्वामी को प्रतिक्षण नमन करता हूँ ।

(२)

इयंतु रीतिर्जिनशासनेऽस्मिन्, क्षमो भवेद्यः कुशलः क्रियासु ।
सुदीक्षितश्चापि गुरोः प्रियोऽसौ, महामुनिर्गण्यत एव सङ्घे ॥

अन्वय—अस्मिन् जिनशासने तु इय रीति (अस्ति) य गुरो प्रिय, क्रियासु कुशल, सुदीक्षित, क्षमश्च अपि भवेत्, असौ एव सघे महा मुनि अथवा आचार्य वा पूज्य. गण्यते ।

अर्थ—इस जिनशासन मे तो यह रीति है, कि जो अपने गुरुदेव का प्रिय, क्रियाओ मे निपुण, सुदीक्षित और समर्थ भी हो, वह सघ के विपय मे आचार्य गिना जाता है ।

(३)

क्रमेण सम्प्राप्तविशेषदृष्टि, गुरोः प्रिय शिष्यगणे विशिष्ट. ।
अतोऽभवं संघविधायकोऽहम्, स्थितोऽस्मि पट्टे नवमोऽमरस्य ॥

अन्वय—अत गुरो प्रिय शिष्यगणे सम्प्राप्तविशेषदृष्टि विशिष्ट सन् अह सघ-विधायक अभवम् । क्रमेण अहम् नवम (अधिकर्त्ता) अमरस्य पट्टे स्थित अस्मि ।

अर्थ—उक्त रीति के आधार पर, गुरुदेवश्री का प्रिय अधिकृत विषयो का ज्ञाता विशेष शिष्ट होकर सघ का विधायक बना । एव क्रम से मैं नवम अधिकर्त्ता के रूप मे आचार्य श्री अमरसिहजी महाराज के पाट पर स्थित हूँ ।

(४)

ममास्य संघस्य समेऽपि सन्तः, इमे महान्तो मुनिवृत्तिनिष्ठाः ।
निरन्तरं संयमिनोऽनुरक्ताः, वशंवदा ज्ञानरताश्च सन्ति ॥

अन्वयः—अस्य मम सङ्घस्य इमे समे सन्त. महान्त सयमिन निरन्त-रम् अनुरक्ता· अपि मुनिवृत्तिनिष्ठा , वशवदा. अपि ज्ञानरता सन्ति ।

अर्थ—और उस मेरे सघ के ये सभी सन्त बडे सयमी है । निरन्तर अनुरक्त रहते हुए भी मुनिवृत्ति मे निष्ठा रखते हैं, आज्ञाकारी रहते हुए भी ज्ञान मे लगे रहते हैं ।

(५)

समे विनीता मुनयो ममैते, सदा श्रुतज्ञानविधौ निमग्नाः ।
उपासतेऽमी जिनधर्मतत्त्वम्, भवन्तु शक्ता अपि भक्तिमन्तः ॥

अन्वय —मम एते समे मुनय विनीता सन्ति । अमी सदा श्रुत-ज्ञानविधौ निमग्ना जिनधर्मतत्त्वम् उपासते । (येन) भक्तिमन्त अपि (जैन-बन्धव) (जिनधर्मतत्त्वे) शक्ता भवन्तु ।

अर्थ—मेरे ये सभी सन्त विशेष नम्र है । ये सदा श्रुत के ज्ञान की विधि के विषय मे तल्लीन रहकर जिनधर्म के तत्त्वो की उपासना करते रहते है । (जिससे कि) भक्तिमान रहते हुए जो जैनबन्धु जिनधर्म के तत्त्व को नहीं जानते, वे जिनधर्म के तत्व के विषय मे समर्थ हो ।

(६)

क्रियारतास्ते विधिमेत्य सेच्छम्, विशेषतः पुस्तकलेखनेऽपि ।
प्रचारपत्रेष्वपि जैनधर्मम्, निबन्धदानेन विवर्द्धयन्ते ॥

अन्वय.—क्रियारता अपि ते सेच्छ विधिम् एत्य पुस्तक विशेषत पुस्तक लेखने (सलग्ना सन्ति) अन्ये च ते मुनय प्रचारपत्रेषु अपि निबन्ध-दानेन जैनधर्मं विवर्द्धयन्ते ।

अर्थ—मुनिक्रियाओ मे रत रहते हुए भी वे मुनिजन इच्छा से जैनधर्म की विशेष पुस्तको के लेखन मे लगे रहते है और दूसरे मुनिजन जैनधर्म के प्रचार के समाचार पत्रो मे भी निबन्ध देकर जैनधर्म को वृद्धिगत करते रहते हैं ।

(७)

तथाप्यहं मे मनसि स्मरंस्तु, प्रसिद्धसिद्धे सकलान् गुरोस्तान् ।
गुणान् यथानुक्रममेव वक्तुम्, लभे न सन्तोषममुं विनाऽहम् ॥

अन्वय —प्रसिद्धसिद्धे: गुरो. तान् सकलान् गुणान् अहं मे मनसि स्मरन् अपि तु सन्तोप तथापि न लभे। अत अमु सन्तोप विना अह स्थातु न शक्नोमि, अत यथानुक्रमम् तान् गुणान् वक्तु स्थित. अस्मि इतिशेप ।

अर्थ— प्रसिद्ध है सिद्धि जिनकी ऐसे गुरुदेव के उन सभी गुणो को मैं अपने मन मे याद करता हुआ भी सन्तोष को फिर भी प्राप्त नही कर पाता। इसलिए उस सन्तोष के विना मैं रुकने के लिए उद्यत नही हूँ। इससे अनुक्रम के साथ उन गुणो को कहने के लिए उठ वैठा हूँ।

(८)

अतोऽहमेवं विवृणोमि सेवाम्, गुरोर्मदीयस्य तपस्विनोऽस्य ।
परोपकाराय धृतव्रतस्य, शुभस्य ताराशशिनो मुनीनाम् ॥

अन्वय:—अत अह मुनीनाम् अस्य परोपकाराय धृतव्रतस्य तपस्विन. शुभस्य मदीयस्य गुरो ताराचन्द्रस्य एवम् अह सेवा विवृणामि।

अर्थ—इसलिए मैं मुनियो के वीचमे इन पर-उपकार के लिए व्रत धारण करने वाले तपस्वी कल्याणकारी मेरे गुरुदेव श्रीताराचन्द्र जी महाराज की सेवा-शुश्रूषा को विवृत करता हूँ।

(९)

यदा शिवाणागढजन्मभूमे:, सतस्तपस्याचरणात् कठोरात् ।
मुनेस्तदा हिन्दुमलस्य भारम्, समुह्य तत्स्थानमवाप सोऽयम् ॥

अन्वय –यदा शिवाणागढजन्मभूमे. हिन्दुमलस्य मुने कठोरात् तपस्याचरणात् तस्य सत. भार समुह्य अय स ताराचन्द्र मुनिः एव तत्स्थानम् अवाप।

अर्थ—जब शिवाणागढ के श्रीहिन्दुमलजी मुनि के कठोर तपस्या करने के कारण वे इतने दुर्बल हो गए थे कि वे चल-फिर नही पाते थे, अत. उन सन्त के भार को ढोकर उनके स्थान पर आप श्री ताराचन्द्रजी महाराज ने ही पहुँचाया।

(१०)

यतः स आसीद् गुरुबन्धुरेष, कथं हि मार्गे परिवर्जनीयः ।
अतः स्वय कष्टमवाप्य सेवाम्, तदा विधातुं परितः प्रवृत्तः ॥

अन्वयः—यतः स एषः गुरुबन्धु आसीत्, अत. मार्गे हि परिवर्जनीय. कथ भवेत् ! अत. (अयं) स्वय कष्टम् अवाप्य तदा परितः सेवा विधातु प्रवृत्त· (अभवत्) ।

अर्थ—क्योंकि ये ही श्रीहिन्दुमलजीमुनि गुरुभाई थे । इसलिए उनको मार्ग मे तो कैसे छोडा सकता था ? अत· स्वय कष्ट उठाकर उस समय सेवा करने के लिए उद्यत हुए ।

(११)

न केवलं मे गुरुदेव एषः, शुभं हि सन्तं पृथुलांसकेन ।
समूढवान् हिन्दुमलं मुनि तम्, स्वयं सिषेवे खलु पञ्चवर्षम् ॥

अन्वयः–एष· मे गुरुदेव. न केवलं तं शुभ सन्त हिन्दुमल मुनि पृथुलांसकेन हि समूढवान्, अपि तु स्वय खलु पञ्चवर्ष सिषेवे ।

अर्थ—इन मेरे गुरुदेवश्री ने न केवल उन शुभ हुए श्रीहिन्दुमलमुनिजी को मोटे कन्धे से ही ढोया, अपितु स्वय ने उनकी पाँच वर्ष तक सेवा की ।

(१२)

यतो मुनिःस स्थिरवास आसीत्, न्युवास पुर्यां समदारिकायाम् ।
गुरुर्मदीयः प्रविहाय चिन्ताम्, असेवतायं मुनिजीवनान्तम् ॥

अन्वयः—यतः सः (हिन्दुमलमुनि.) स्थिरवास. आसीत्, स च समदारिकायां पुर्यां न्युवास । मदीय· अय गुरु चिन्तां विहाय मुनिजीवनान्तम् असेवत ।

अर्थ—क्योंकि वे श्रीहिन्दुमलमुनिजी महाराज स्थिरवास थे अत वे समदडी पुरी मे रहे थे । मेरे इन गुरुदेवश्री ने चिन्ता को छोड मुनि हिन्दुमलजी महाराज जव तक जीवित रहे, तव तक सेवा की ।

(१३)

अथायमन्यानपिताननेकान्, गुरुर्मुनीन्मे समसेवतालम् ।
विहाय भावं परकीयमन्त,—गण न चिन्तन्ति तपस्विनोऽन्ये ॥

अन्वय—अथ अय मे गुरु. तान् अनेकान् अन्यान् मुनीन् परकीयम् अन्तर्गण भाव विहाय अलम् असेवत। अन्ये तपस्विन परकीय न चिन्तन्ति।

अर्थ— इसके पश्चात् भी इन मेरे गुरुदेव ने उन अनेक दूसरे मुनियो की पर्याप्त सेवा की। कभी आपने दूसरे गण के भाव को नही सोचा। क्योकि दूसरे तपस्वी परकीय की चिन्ता नही करते।

(१४)

न नाम नाम्ना गणनां विधातुम् सतामहं स्यां गुरुसेवकः सन् ।
परोपकारव्रतमानसस्य, स्वयं गुरोर्गौरविमेव हन्मि ॥

अन्वयः—सता नाम्ना गणना विधातु गुरुसेवक. सन् अह नाम न स्याम्। यदि अह नाम्ना गणना विधातु भवेयम् तर्हि अह स्वय परोपकार-व्रतमानसस्य गुरो· गौरवम् एव हन्मि।

अर्थ—सन्तो के नामो की गणना करूँ कि उन-उन सन्तो की सेवा मेरे गुरुदेव ने की, तो मैं गुरुभक्त होकर सन्तो के नामो की गिनती करने के लिए तैयार होता हूँ, तो परोपकार के व्रत के हृदय वाले गुरुदेव के गौरव को नष्ट करूँगा। क्योकि जब उन्होने ही सेवा के विषय मे अपने-तेरे की चिन्ता नही की तो मुझे फिर उनके नाम गिनाने की क्या आवश्यकता है!

(१५)

नमः सुमन्त्रस्य सपादकोटें, जप विधायापि जपन् सुमन्त्रम् ।
कदापि कालं व्यतिवाहयन् मे, न जातु शान्तो गुरुरेवमासीत् ॥

अन्वय—सपादकोटे नम सुमन्त्रस्य जप विधाय अपि सुमन्त्र जपन् आसीत्। मे गुरु कदापि काल व्यतिवाहयन् एव जातु शान्त न (अभवत्)।

अर्थ— सवा करोड नमस्कार मन्त्र के जप को करके भी इस सुमन्त्र को जपते ही रहे। मेरे गुरुदेव कभी समय को अतिवाहित करते हुए कभी शान्त रहे हो! ऐसा कभी नही देखा।

(१६)

महोपकर्त्तारममुं गुरुं मे, स्मरन्नहं यामि निराश एष. ।
सपर्ययाऽलंकृतमानसं तम् गुरुं न पश्यामि हसन्तमेनम् ॥

अन्वयः—अहमेप मे अमु महोपकर्त्तार गुरु स्मरन् निराश. यामि। (यत) सपर्यया अलकृतमानस तम् एन गुरु हसन्तम् अह न पश्यामि।

अर्थ—यह मैं मेरे परम उपकारी गुरुदेव की याद करता हुआ निराश हो जाता हू। क्योकि सत्कार से अलकृत हृदय के उन गुरुदेव को हँसते हुए इनको अव नही देख पाता।

(१७)

तथापि मे मानसिकं सुकायम्, गुरोरदो वर्त्तत एव नित्यम् ।
तदेव रूपं ननु चक्षुषोर्मे, सदैव चित्रायित मेवमस्ति ॥

अन्वयः—तथापि मे गुरो अद मानसिक सुकाय नित्यम् एव वर्त्तते, मे चक्षुषो ननु तत रूप वर्त्तते। वस्तुत सदा एव तत् गुरो सुकायम् एव चित्रायितम् अस्ति।

अर्थ—तो भी मेरे गुरुदेव का वह मानसिक सुन्दर शरीर सदा ही मेरी आँखो मे रहता है और वही रूप मेरी आँखो मे समाया रहता है। वास्तव मे सदा ही गुरुदेव का सुन्दर शरीर ऐसा हो गया है जैसे कोई चित्र हो।

(१८)

अहं गुरोरेव सदाशिषा मे, निरन्तरं ध्यानविधिं दधामि ।
जिनप्रभोः शासितमेव धर्मम्, प्रवक्तुमेव विहरामि देशे ॥

अन्वयः—अह मे गुरो. एव आशिषा निरन्तर ध्यानविधिं दधामि, एव सदा जिनप्रभो. शासित धर्मम् एव प्रवक्तु देशे विहरामि।

अर्थ—मैं मेरे गुरुदेव के आशीर्वचन से ही निरन्तर ध्यान की विधि को पोषण दे रहा हूँ, और इसी प्रकार सदा भगवान् जिनके शापित धर्म का ही प्रवचन करने के लिए स्थान-स्थान पर विहार कर पहुँच रहा हूँ।

(१९)

विहारमुद्दिश्य गुरोः प्रसङ्गम्, स्मराम्यहं यद् घटितं दहल्याम् ।
जगामवान्यैर्मुनिभिः सहायम्, जवाहरं दर्शयितुं गुरुर्मे ॥

अन्वय —अह विहारम् उद्दिश्य यद् दहल्या घटित गुरो. प्रसङ्ग स्मरामि । अयम् मे गुरु अन्यै मुनिभि सह मन्त्रिण जवाहरम् दर्शयितु जगाम ।

अर्थ—मैं विहार के उद्देश को लेकर जो दिल्ली मे घटित हुआ ऐसे गुरुदेव के प्रसङ्ग का स्मरण कर रहा हूँ। आप श्री अन्य मुनियो के साथ प्रधानमन्त्री श्री प० जवाहरलालजी को दर्शन देने को पधारे ।

(२०)

गुरुं निरीक्ष्यैव जवाहरोऽयम्, प्रसन्नचेता कुरुतेऽभिलाषम् ।
भवादृशाऽह मुनिना सहैव, लषामिकाष्टुं प्रतिबिम्बचित्रम् ॥

अन्वयः—अय जवाहर गुरु निरीक्ष्य एव प्रसन्नचेता सन् अभिलाष कुरुते यत् अह भवादृशा मुनिना सह एव प्रतिबिम्बचित्र काष्टुं लषामि ।

अर्थ—इन प० जवाहरलालजी प्रधानमन्त्री ने गुरुदेव को देखते ही प्रसन्नचित्त होकर इच्छा प्रकट की कि मैं आप जैसे मुनिराज के साथ फोटो खिचाने के लिए चाहता हूँ ।

(२१)

यतो गरुस्तं कुरुते निषेधम्, मुनेः कृते चित्रमिद निषिद्धम् ॥
अतस्त्वयाऽहं न हि शोचनीय, भवेयमेवं मुनिधर्मवृत्ते ॥

अन्वयः—अस्मिन् समये गुरु त निषेध कुरुते, यत मुने कृते इद चित्र निपिद्ध वर्त्तते । अत त्वया अह मुनिधर्मवृत्ते शोचनीय न भवेयम्—इति गुरु स्पष्टयति ।

अर्थ—इस समय गुरुदेव श्री ने उनको मना कर दिया, और बताया कि यह फोटो खिचाना मुनि के लिए निषिद्ध है। इसलिए आपके द्वारा मैं मुनिधर्म के व्यवहार के कारण अफसोस करने के योग्य नही हो सकूगा । अत आप कोई अन्यथा न सोचें ।

(२२)

धृतस्मयो नेहरुरेवमूचे, महानयं साधुषु साधुरेकः ।
अणुव्रती चित्रमुपेतुमीदृक्, समेत्यसौ मे तुलसीमुनीश ॥

अन्वयः—धृतस्मय नेहरू (जवाहरलाल प्रधानमन्त्री) एवम् ऊचे, यत् अय साधुपु महान् एकः साधु (अस्ति)। (अन्यथा तु) मे असौ अणुव्रती तुलसीमुनीश ईदृक् चित्रम् उपेतु समेति।

अर्थ—आश्चर्यचकित प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलालजी नेहरू इस प्रकार कहने लगे कि ये साधुओ मे से महान एक साधु हैं। अन्यथा तो मेरे वे अणुव्रती वाले तुलसीजी आचार्य ऐसे फोटो के लिए आते रहते हैं।

(२३)

अथ प्रसङ्गादनुवर्णयामि, प्रधानमन्यच्चरितं गुरोर्मे ।
अहो ममाग्रे निखिलात्मवृत्तम्, समालुलोचैष गुरुर्मदीयः ॥

अन्वयः—अथ प्रसङ्गात् मे गुरोः अन्यत् प्रधान चरितम् अनुवर्णयामि। अहो एष मदीय गुरु मम अग्रे निखिलात्मवृत्तं समालुलोच।

अर्थ—अव प्रसङ्ग को लेकर मैं अपने गुरुदेव का दूसरा मुख्य चरित अनुवर्णित कर रहा हूँ कि इन मेरे गुरुदेव ने मेरे ही सामने सम्पूर्ण आत्मवृत्त की समालोचना की।

(२४)

अयं स्वयं मृत्युमबोधयन्माम्, यतो य आयाति मरिष्यतीति ।
अतो मदीयं खलु जीवनान्तम्, भवेदवश्यं ननु मास्सु षट्सु ॥

अन्वयः—अय स्वय मा मृत्युम् अवोधयत्—यत य आयाति खलु स मरिष्यति इति—अत मदीयं जीवानान्ते ननु मास्सु षट्सु अवश्य भवेत्।

अर्थ—इन गुरुदेव ने स्वय मुझे अपनी मृत्यु को वताया था कि जो उत्पन्न होता है, वह निश्चय के साथ मृत्यु प्राप्त करेगा—ऐसा है, इससे मेरे जीवन का अर्थात् मृत्यु निस्सन्देह छह मासो मे अवश्य होगी।

(२५)

अथ तु सन्तं मदनादिलालम्, न्यवेदयन्मृत्युदिनं मिषेण ।
अतो मुनिं त स्वयमेव पूर्वम्, न भावि मृत्योरभिभाषणं श्वः ॥

अन्वयः—अथ मिषेण मदनादिलाल (मदनलाल) सन्त तु मृत्युदिन-न्यवेदयत्—अत. असौ मृत्यो पूर्व स्वयमेव उक्तवान् यत् श्व' अभिभाषणं न भावि विद्यते ।

अर्थ—इन्होने मुनि श्री मदनलालजी महाराज को बहाने से निवेदन कर दिया कि कल व्याख्यान भावी नही है । इसलिए उन्होने मृत्यु से पूर्व स्वयं ही कहा था । अर्थात् मेरी कल मृत्यु हो जायेगी, अत व्याख्यान नहीं होगा । यह दूसरी बात है कि वे समझ पाये या नही । किन्तु दूसरे दिन जब उन्होंने सुना कि महाराज काल कर गए, तो वे समझे कि कल व्याख्यान नही होगा, इसका अर्थ मुनिश्री का आज मृत्युदिन है ।

(२६)

अहं मदीयस्य गुरोर्महत्त्वम्, व्यवर्णयं हेतुपरं परन्तु ।
अतोऽप्यनेके ननु सन्त्युदन्ता, भवेयुरन्येऽपि तु तर्कयेयुः ॥

अन्वय—अह मदीयस्य गुरो हेतुपरं महत्त्व व्यवर्णयम्, परन्तु अतः अपि अनेके उदन्ता सन्ति । अन्ये अपि उदन्ता भवेयु इति तु भवन्त (एव) तर्कयेयु ।

अर्थ मैंने अपने गुरुदेवश्री का कारणपरक महत्त्व वर्णित किया । परन्तु इनसे भी अनेक उदन्त हैं । दूसरे भी उदन्त हो सकते हैं, यह तो अब आप ही तर्क करेंगे ।

(२७)

अतोऽहमन्ते कथनीयमेकम्, कथानकं ख्यामि यथाश्रुतं तत् ।
यतः स्वयं सिद्ध्यति निस्स्पृहत्वम्, गुरोर्मदीयस्य महात्मनोऽस्य ॥

अन्वय.—अत. अहम् अन्ते एक तत् कथनीय यथाश्रुत कथानक ख्यामि । यत अस्य महात्मन मदीयस्य गुरो निस्स्पृहत्व स्वय सिद्ध्यति ।

अर्थ—अब मैं अन्त मे एक उस कहने के योग्य जैसा कि सुना गया है, कथानक बताता हूँ । जिससे इन महात्मा मेरे गुरुदेव का निस्स्पृहत्व स्वय सिद्ध होता है ।

(२८)

प्रसिद्धवंशे खलु दुग्गडाख्ये, प्रसूत एको धनिको वदान्यः ।
महाजनः सोहनलालनामा, समागतोऽभूदथ बङ्गदेशात् ॥

अवन्यः—अथ खलु प्रसिद्धवशे दुग्गड़ाख्ये प्रसूत. वदान्य एकः सोहनलालनामा महाजन. वङ्गदेशात् समागत अभूत् ।

अर्थ—अब आगे की वात है कि दुग्गड कहे जाने वाले प्रसिद्ध खानदान मे जन्मे दानी धनाढ्य एक श्रीसोहनलाल नाम महाजन वङ्गाल देश से आये हुए थे ।

(२९)

विराजमान स्थविरं महान्तम्, गुरुं मदीयं शुभदर्शनार्थम् ।
तत· समाकर्ण्य तदाऽगमत्सः, परं शुभादेशमथार्थयत्तम् ॥

अन्वयः—अथ त मदीय गुरु महान्त स्थविर विराजमान समाकर्ण्य तदा शुभदर्शनार्थम् आगमत् । स तत· परं शुभादेशम् आर्थयत् ।

अर्थ—तदनन्तर उन मेरे गुरुदेव महास्थविर श्रीताराचन्द्र मुनि महाराज को विराजमान सुनकर तव श्रेष्ठिवर सोहनलालजी दुग्गड गुरुदेव के शुभ दर्शन करने के लिए पहुँचे । दर्शन करने के वाद उन्होने उनसे विशेप सेवा योग्य आदेश के लिए प्रार्थना की ।

(३०)

गुरोः शुभादेशमयं न लब्ध्वा, तदाग्रहे सत्यपि दानवीर ।
निवृत्य वृत्तं घटित ततोऽसौ, न्यवेदयत्तं श्रमणं गणेशम् ॥

अन्वय—आग्रहे सति अपि अय दानवीर. गुरो. शुभादेश न लब्ध्वा तदा तत. निवृत्य असौ घटित वृत्त त श्रमण गणेश न्यवेदयत् ।

अर्थ—आग्रह के रहने पर भी ये दानवीर गुरुदेव के मङ्गलमय सेवा योग्य आदेश को न प्राप्त कर पाए तव वहाँ से लौटकर उन्होने उन उपाचार्य्य श्री गणेशीलालजी महाराज को जो वहाँ हुआ उस वृत्त को निवेदित किया ।

(३१)

अयं तदाचार्यवरो गणेश:, स्वयं गुरु मे समशसतालम् ।
मुनिस्स्पृहं तारकचन्द्रदेवम्, तदेतदन्येऽपि विदन्ति वृत्तम् ।

अन्वयः—तदा अयम् आचार्यवर गणेश स्वय मे गुरु-तारकचन्द्रदेव मुनिस्स्पृह (मत्वा) अल समशसत । (सहैव आचार्यवर उक्तवान्–) तत् एतत् वृत्त तु अन्ये अपि विदन्ति ।

अर्थ—तब इन उपाचार्यवर श्रीगणेशीलालजी महाराज ने स्वय मेरे गुरुदेव श्रीताराचन्द्रजी महाराज को परम निस्स्पृही मानकर पर्याप्त प्रशसा की, और साथ ही यह भी आचार्य वर ने फरमाया कि इस सवको तो और दूसरे भी जानते है ।

(३२)

अहो किमेते ननु वर्णिता ये, त एव सन्तीति गुणा न चान्ये ।
न चेत्तदैवं न हि तर्कयेयु गुणा गुरोर्मे वहवो भवेयु: ॥

अन्वय.—ननु ये गुणा वर्णिता सन्ति, ते एव अहो किम् एते सन्ति न च अन्ये इति चेत् तदा भवन्त एव न तर्कयेयु, यतो हि मे गुरो. वहव गुणा भवेयु । साम्प्रत यान् अहम् अस्मार्सम् तानेव अवर्णयमितिभाव. ।

अर्थ—क्या ये ही गुण, जो वर्णित हुए है वे ही सव गुण आपके गुरुदेव के है और दूसरे नही ? यदि आप सव ऐसा सोचते है तो ऐसा नही सोचिए। क्योकि मेरे गुरुदेव के और अनेक गुण हो सकते है। अव मैं जिन गुणो को स्मरण कर पाया, उनको बता पाया हूँ, यह व्यङ्ग्यार्थ है ।

(३३)

मया तु पूर्व कथितं यदुक्तम्, यथाधि किञ्चिन्ननु वक्तुमीहे ।
तथापि दोष समुपैति कस्मिद्, ममैव सोऽस्तीति विचारयन्तु ॥

अन्वय —मया तु पूर्व कथित यत् किञ्चित् ननु उक्त विद्यते, तत् यथाधि वक्तुम् ईहे इति कृत्वा उक्तम् । तथापि वर्णने यदि कस्मिद् दोष समुपैति, स ममैव दोष अस्ति, इति भवन्तो विचारयन्तु ।

अर्थ—मैंने तो पहले ही कह दिया है कि वर्णन यथामति किया चाहता हूँ। अत इसमे फिर भी कोई दोप रहता है तो मेरा ही दोष समझना चाहिये, न कि वर्णन का ।

(३४)

ततोऽप्यहं वच्मि गुरोगुणान् मे, प्रशंसनीयान् मम धर्म एव ।
महानुभावैर्गुरुभिः सदेयम्, गुणेषु शिष्यस्य मतास्ति भक्ति. ॥

अन्वयः—तत. अपि अह मे गुणो प्रशसनीयान् गुणान् वच्मि मम (अय) धर्म एव (अस्ति)। शिष्यस्य गुणेपु महानुभावै. गुरुभि. सदा इय भक्ति: मतः अस्ति।

अर्थ—तदनन्तर भी मैं अपने गुरुदेव के प्रशसा के योग्य गुणो का वर्णन करता हूँ तो यह मेरा धर्म ही है। (जहाँ तक मैं समझता हूँ), एक शिष्य के गुणो मे महानुभाव गुरुदेवो ने सदा यह भक्ति मानी है।

(३५)

गुरो· प्रसादादुपलब्धकीर्त्ति, भ्रमामि सद्भि सह भारतेऽस्मिन् ।
प्रभोर्महावीर जिनेश्वरस्य, प्रणोदितं धर्ममिमं दिशन्नहम् ॥

अन्वयः—गुरो प्रसादात् उपलब्धकीर्त्ति अह सद्भिः सह अस्मिन् भारते प्रभो महावीरजिनेश्वरस्य प्रणोदितम् इम धर्मं दिशन् भ्रमामि।

अर्थ – गुरुदेवश्री के प्रसाद से प्रसिद्ध होकर मैं मेरे सन्तो के साथ इस भारत में श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा प्रज्ञप्त इस धर्म का उपदेश करता हुआ घूमता रहता हूँ।

(३६)

इमे मदीया मुनय. प्रशस्ता., प्रदीक्षिताः सन्ति गुरोरनुग्रहात् ।
सुशिक्षिता धर्मधुरन्धरास्ते, जिनप्रभोः शासनमावहन्ति ॥

अन्वयः—गुरो अनुग्रहात् इमे मदीया प्रदीक्षिता सुशिक्षिता. प्रशस्ता. मुनय सन्ति। सम्प्रति ते धर्मधुरन्धरा सन्त जिनप्रभो· शासनम् आवहन्ति।

अर्थ – गुरुदेवश्री के अनुग्रह से ये मेरे प्रदीक्षित, सुशिक्षित और प्रशस्त मुनिजन है। अव वे धर्म के दायित्व को सँभालते हुए जिनेश्वर भगवान् के शासन को महका रहे है।

(३७)

अहन्तु नामानि वदामि तेषाम्, क्रमेण दीक्षानुनयेन येन ।
प्रतीति वैशिष्ट्यगुणेन साकम्, जना मुनीस्तान् परिचेतुमेयुः ।।

अन्वय—अहं तेषां नामानि दीक्षानुनयेन क्रमेण वदामि । येन जनाः प्रतीतिवैशिष्ट्यगुणेन साकं तान् मुनीन् परिचेतुम् एयुः ।

अर्थ—मैं उनके नाम दीक्षा के अनुनय के क्रम से बता रहा हूँ । जिससे कि कौन-किस प्रकार की योग्यता रखता है, इसके साथ उन मुनियों से परिचित हो सके ।

(३८)

मुनी तु देवेन्द्रगणेशमुख्यौ, मुनी रमेशश्च मुनिर्दिनेशः ।
समे मिलित्वा मुनयो विनीता,, भवन्ति शिष्या अधुना समैते ।।

अन्वयः—अधुना मम समे मिलित्वा तु एते, देवेन्द्रगणेशमुख्यौ मुनी, रमेश मुनिः, दिनेश मुनिः च, विनीताः मुनयः मम शिष्याः भवन्ति ।

अर्थ— अब मेरे सब मिलकर तो ये देवेन्द्रमुनि, गणेशमुनि, रमेशमुनि और दिनेशमुनि ये विनीत मुनिजन मेरे शिष्य हैं ।

(३९)

अयं तु देवेन्द्रमुनिर्विनीतः, निरन्तरं सम्प्रति साधकोऽसौ ।
विशालसाहित्यसुधासमुद्रम्, शनैर्विमथ्नल्लभते प्रवालम् ।।

अन्वयः—अयम् असौ विनीतः देवेन्द्रमुनिः सम्प्रति साधकः सन् विशालसाहित्य सुधा समुद्रं शनैः विमथ्नन् निरन्तरं प्रवालं लभते ।

अर्थ—ये ही विनयी वे देवेन्द्रमुनि हैं, जो अब साधक होकर विशाल साहित्य-सुधा के समुद्र को धीरे-धीरे निरन्तर मथते हुए मोती को ढूंढ ही लेते हैं ।

(४०)

अथास्य वैशिष्ट्यमहं वदेयम्, जना अवश्यं कथयेयुरन्यत् ।
परन्तु याथार्थ्यनिगूहनं किम्, कदापि तत्स्तुत्यमहं न मन्ये ॥

अन्वय—अथ अहम् अस्य (यदि) वैशिष्ट्यं वदेयम् तदा जना अवश्यम् अन्यत् कथयेयु । परन्तु किं याथार्थ्यनिगूहन स्तुत्य (भवेत्) ! अह कदापि तत् न मन्ये ।

अर्थ—अब मैं इनकी विशेषता बताऊँ तो लोग अवश्य ही कुछ कहेगे। परन्तु क्या वास्तव को छिपाना स्तुत्य होगा ? कभी स्तुत्य नही हो सकता। अत मैं कभी वास्तव को छिपाना स्तुत्य नही समझता।

(४१)

दिवानिशं यो रमतेऽधिसेवम्, ममैव नैवं कथयेयमित्थम् ।
परन्तु मन्ये मम सेवयालम्, स सेवते ग्रन्थपथा मुनीस्तान् ॥

अन्वय – य दिवानिश मम एव अधिसेव रमते, मम् अहम् एव न कुरु इत्थ कथयेयम् ? अर्थात् न हि। परन्तु ममसेवया अलम् इत्थम् अहं कथयेयम्—इति अह मन्ये। यत. स ग्रन्थपथा तान् (बहून्) मुनीन् सेवते ।

अर्थ—जो दिनरात मेरी ही सेवा मे तल्लीन रहते है, उनको मैं ही ऐसा कहूँ कि ऐसा न करो—ऐसा मैं कह नही सकता। परन्तु मेरी सेवा करने से कोई कार्य नहीं हो सकता—ऐसा मैं कह सकता हूँ। यह मैं मानता हूँ। क्योकि वे ग्रन्थ-लेखन के मार्ग से सभी मुनियो की सेवा कर रहे है।

(४२)

न केवलं स्वीयगुरुं तथायम्, परन्तु सर्वानपि साधुवर्य्यान् ।
परे समे सत्यसृतेः प्रशस्ताः, समीक्षका एवमिमं नमन्ति ॥

अन्वयः—न केवल स्वीयगुरु तथा (सेवते), परन्तु अय सर्वान् साधु-वर्यान् अपि सेवते। (अत) एवम् परे समे सत्यसृतेः प्रशस्ता समीक्षका. (सन्ति), ते (तु साहित्य दृष्ट्वा) इम नमन्ति ।

अर्थ—न केवल वे सब मुनियो की सेवा कर रहे हैं, परन्तु ये सब जैनजन की सेवा कर रहे हैं। इस सबसे ही दूसरे सब सत्य के मार्ग के प्रशस्त गवेषक इनका अभिनन्दन कर रहे हैं।

(४९)

विचारदृष्ट्या सरलो विनोदी, हितैषिता वाचि न चेतसैव ।
न छद्मवृत्ति जनमीक्षतेऽयम्, पुनर्भवेत्कोऽपि भयङ्करोऽसौ ॥

अन्वयः—(अय) विचारदृष्टया सरल विनोदी वर्त्तते। अस्य हितैषिता वाचि न विद्यते, किन्तु चेतसा हितम् अनुभूय तद्वत् एव आचरति येन हित जायते। अर्थात् अय हितम् आचरति, किन्तु न वदति। अय छद्मवृत्ति जन न ईक्षते, पुन· असौ कोऽपि भयङ्कर. भवेत् अर्थात् तस्मात् न बिभेति।

अर्थ—विचार की दृष्टि से भोले विनोदी है। इनकी भलाई की चाह कहने मे नही है, अपितु हृदय से ही अनुभव करने मे है। ये किसी छली को देखना तक नही चाहते, बात की बात तो दूर है। फिर चाहे वह कितना भी जालिम क्यो न हो।

(५०)

कविस्वभाव: कुशलो निबद्धा, प्रतिष्ठते संस्कृतपण्डितेषु ।
स्वभावमौन समये च खिन्नः, सुसेवते मां विनयेन नुन्नः ॥

अन्वयः—अय कविस्वभाव, कुशल. निबद्धा, सस्कृत-पण्डितेपु-प्रतिष्ठते। अय स्वभावमौन तिष्ठति, समये च अय खिन्न भवति, किन्तु अय विनयेन नुन्न सन् मा सुसेवते।

अर्थ—ये मुनि कवि जैसे स्वभाव के हैं, कुशल निबन्ध लेखक है और सस्कृत के पण्डितो मे जमकर बैठते हैं अथवा प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं और ये स्वभाव से मौन रहते है, तथा समय-समय पर खिन्न हो उठते हैं, वस्तुत यह इनका स्वभाव ही है। किन्तु विनय के हेतु से प्रेरित हो मेरी खूब सेवा करते हैं।

(५१)

अयं दिनेशो मुनिरेवमेवम्, समभ्यसन् स्तोककदम्बकं न· ।
उपैति सम्यक् जिनधर्मबोधम्, शनैः शनैरेति मुनिप्रभावम् ॥

अन्वय.—अय दिनेश मुनि एवम्-एवम् नः (अस्माक) स्तोककदम्बक समभ्यसन् जिनधर्मबोध सम्यक् उपैति, शनै:शनै च मुनिप्रभावम् एति।

अर्थ—ये दिनेशमुनि हैं जो जैसे-तैसे कर हमारे थोकडो को गिनते हुए जिन-धर्म के ज्ञान को बढ़ा रहे है और धीरे-धीरे मुनिवृत्ति को जगाते चल रहे हैं।

(५२)

अयं तु देवेन्द्रमुने सुशिष्य., महाविनीतोऽपि विचारधीरः ।
सुसेवको मे प्रियप्रौत्रकोऽसौ, बुधेषु राजेन्द्र इवाधिकोऽस्ति ॥

अन्वय—अय तु (राजेन्द्रमुनि) देवेन्द्रमुने सुशिष्यः महाविनीतः अपि विचारधीर मे प्रियपौत्रकः सुसेवक (अस्ति) असौ बुधेषु इव अधिक अस्ति ।

अर्थ—ये तो राजेन्द्रमुनि है, जो प्रसिद्ध साहित्यकार श्रीदेवेन्द्रमुनि के सुशिष्य हैं, अत्यन्त विनीत होते हुए भी काफी अच्छे विचारवान् हैं। वे मेरे प्रिय पौत्रमुनि होते हैं और वहुत ही सेवापरायण हैं और वस्तुत ज्ञाताओ मे अधिक के समान जैसे ही हैं। स्पष्ट विशेषण इसलिए कहना नही चाहता, क्योकि सेवक, लेखक, व्याख्यानी और अध्ययनरत है। अत मेरी दृष्टि मे अभी अधिक विशेषण उपयुक्त जमा सो कह दिया ।

(५३)

सुलेखको ग्रन्थचयस्य वाग्मी, विभुः प्रभाविष्वपि सज्जनेषु ।
प्रभाषको धर्मसभासु नीतौ, उदीयमानो मुनिरेव सोऽयम् ॥

अन्वयः—(अयं) ग्रन्थचयस्य सुलेखकः, सज्जनेषु वाग्मी प्रभाविषु अपि विभु., धर्मसभासु प्रभाषक , स अयम् एव य. नीतौ उदीयमानः मुनि. (अस्ति) ।

अर्थ—ये अनेक पुस्तको के अच्छे लेखक हैं, सज्जनो मे वाग्मी हैं, प्रभावियो मे व्यापक हैं, धर्म की सभाओ मे प्रवक्ता है और वे ही ये मुनि हैं, जो नीति के विषय मे होनहार मुनि हैं।

(५४)

अयं मुनी राष्ट्रियतत्त्वदर्शी, हितं परं वेत्ति सुमानवीयम् ।
दृष्टौ मुनेर्धर्ममुपास्यमेवं, निधाय राजेन्द्रमुनि. स्थितोऽसौ ॥

अन्वयः—अय मुनिः सन् राष्ट्रियतत्त्वदर्शी विद्यते, अय सुमानवीय परं हितं वेत्ति, असौ राजेन्द्रमुनि दृष्टौ मुनेः उपास्यम् एव धर्मं निधाय स्थितः (विद्यते) ।

अर्थ—ये मुनि रहते हुए राष्ट्रीय तत्त्व के द्रष्टा है, ये जनता के विशिष्ट हित को पहचानते हैं। धर्म की दृष्टि के विषय मे उपास्य मुनिधर्म, जैसा कि चाहिए, को स्थिर करके मुनिधर्म के पालन मे तत्पर हैं।

(४३)

क्रियानयं प्रेमवशो विरक्त', सुसयमी किन्तु सदाऽनुरक्तः ।
क्रियासु नित्य क्षमते प्रसक्त', गुरौ तु सेवानियमस्य भक्तः ।।

अन्वय—अहो अय देवेन्द्र प्रेमवश. सन् अपि विरक्त कियान् अस्ति । किन्तु अनुरक्त सन् अपि सुसयमी क्रियासुप्रसक्त नित्य क्षमते । गुरौ तु सेवानियमस्य भक्त अस्ति एव ।

अर्थ—अरे ये देवेन्द्रमुनि प्रेम के वश मैं रहते हुए भी विरक्त है । किन्तु अनुरक्त होकर भी सच्चे सयम के साथ मुनि क्रियाओ मे लगे रहते हैं और नित्य ही सव सहते रहते है । गुरु के विपय मे सेवा के नियम के भक्त तो वे हैं ही ।

(४४)

अयं गणेशोऽपि समुन्नतश्री , कवि' प्रवक्ता रचनाप्रवीणः ।
सता गणे लव्धयशा मनस्वी, विराजते चन्द्र इवाधितारम् ।।

अन्वयः—अय गणेश. अपि समुन्नतश्री कवि , रचनाप्रवीण , प्रवक्ता च (अस्ति) । अय मनस्वी सन् सता गणे लव्धयशाः अधितार चन्द्र इव राजते ।

अर्थ—ये गणेशमुनि भी पूर्णउन्नत होकर कवि, परमलेखक, प्रभावी प्रभापक सव कुछ है । ये मनस्वी रहकर सन्तो के समुदाय मे यशस्वी हैं । अतएव ये तारागण मे चन्द्रमा के समान शोभा पा रहे हैं ।

(४५)

ममाज्ञयाऽय सुसतां गणेशः, करोति धर्मस्य पथा प्रचारम् ।
विहृत्य दूरं लभते प्रसिद्धिम् , प्रभाषणादस्य परं प्रसन्नः ।।

अन्वय—अय सुसता गणेश गणेश मुनि. मम आज्ञयापथा धर्मस्य प्रचार करोति, दूर च विहृत्य प्रसिद्धि लभते, तस्मात्त् अह प्रसन्नोऽस्म्येव), किन्तु अस्य प्रभापणात् अहम् तत अपि पर प्रसन्न (अस्मि) ।

अर्थ—ये सच्चे सन्तो के सघ के स्वामी गणेश मुनि मेरे आदेश से ही मार्ग से वर्म को दीप्त कर रहे हैं और लम्वे-लम्वे विहार कर स्थान-स्थान पर पहुँच, यश प्राप्त कर रहे है । इससे तो पहले मैं प्रसन्न हूँ ही, किन्तु व्याख्यान की विशेष उपलव्धि से मैं उससे भी अधिक प्रसन्न हूँ ।

(४६)

अयं रमेशो मुनिरेव नित्यम्, नयेन शास्त्रस्य चिनोति तत्त्वम् ।
जिनस्य धर्मस्य विवेकपूर्णः, प्रतत्त्वसूत्रेण दृढीकरोति ॥

अन्वय —अय रमेश मुनि नित्यम् एव नयेन शास्त्रस्य तत्त्व चिनोति विवेकपूर्ण सन् अय जिनधर्मस्य तत्त्व प्रतत्त्वसूत्रेण दृढीकरोति ।

अर्थ—ये रमेशमुनि सदा न्यायशास्त्र के द्वारा शास्त्र के तत्त्वो को एकत्र करते हैं, और नैपुण्य के साथ ये उस चुने हुए तत्त्व को तत्त्वार्थसूत्र से कमकर के मजबूत बना देते हैं ।

(४७)

असौ प्रबुद्धोऽतिवृतागमश्रीः, यशोधर स्तोक कलाविलासे ।
विराजते शिष्यगणे प्रसन्न., तपस्विधाराधर एव धर्मे ॥

अन्वय.—असौ प्रबुद्ध. अतिवृतागमश्री , स्तोक कलाविलासे यशोधर , धर्मे शिष्यगणे प्रसन्न. सन् तपस्विधाराधर. एव राजते ।

अर्थ—ये ही जाग्रत आगम के ज्ञाता है और थोकडो की कला के विलास मे विशेषज्ञ है । मेरे शिष्यो के समुदाय मे धर्म के विषय मे गरज-गरज कर वरसनेवाले तपस्वी मेघ ही हो ऐसी शोभा पा रहे हैं ।

(४८)

न केवलं तोषमुपैति तावत्, न यावदायाति पुरोऽस्य हेतु. ।
स्वयं प्रसन्नो रमते विचारे, न कोऽपि तं ज्ञातुमत. प्रपन्न. ॥

अन्वयः—अय तावत् केवल तोष न उपैति, यावत् अस्य पुरः हेतु न आयाति । स्वयप्रसन्न अय विचारे रमते, अत कोऽपि त ज्ञातु प्रपन्न न भवति ।

अर्थ—ये मुनिजी तव तक सन्तोष नही लेते, जव तक कि इनके सामने कारण उपस्थित नही होता, क्योकि ये विना कारण के किसी वात को ठीक नही मानते । इसलिए आपके सन्तोष के लिये केवल हेतु है । दूसरे आत्माराम होकर अपने विचार मे रमते रहते हैं । इसलिए कोई भी इनको जानने का अधिकारी नही हो पाता ।

(५५)

यमी, श्रमी, वीरमुनिर्विनीत , गुरु' स्वकीयं प्रति भावभक्तिम् ।
दधाति मां प्रत्यपि निर्विशेपम् ममाशिपायुष्यमशेपमेतु ॥

अन्वय —अय यमी, श्रमी, वीरमुनि विनीतश्च अस्ति। अयं स्वकीय गुरु प्रति एव मा प्रति अपि भावभक्ति निर्विशेप दधाति। (अत) अह हृदयेन प्रसन्नोऽस्मि) मम आशिषा अयम् अशेषम् आयुष्यम् एतु।

अर्थ - ये सयम-शील के पालक, विद्याभ्यास मे रत, दृढश्रद्धा के भक्त और अत्यन्त नम्र हैं। अपने गुरुदेव के प्रति एव मेरे प्रति भी विना किसी भेदभाव के श्रद्धा-सेवा का सदा ध्यान रखते हैं। अत मैं हृदय से प्रसन्न हूँ—मेरे आशीर्वचन से चाहता हूँ कि ये अशेप आयुष्य प्राप्त करें।

(५६)

इमौ गणेशस्य मुने सुशीलौ, प्रियौ हि तौ सम्प्रति शिष्यकौरत. ।
तयोरतुसंज्ञे गणयामि मुन्योः, यतो भवन्तोऽवगता भवेयुः ॥

अन्वय —सम्प्रति गणेशस्य हि मुने तौ सुशीलौ प्रियौ शिष्यौ स्त'। तयो मुन्यो तु अह सज्ञे गणयामि। यत भवन्त अवगता भवेयु।

अर्थ—सम्प्रति श्री गणेशमुनिजी के वे सुशील, और प्रिय दो शिष्य हैं। उन दोनो मुनियो के नाम गिनाता हूँ। जिससे कि आप अवगत हो सकें।

(५७)

मुनिर्जिनेन्द्रः प्रथमस्तपस्वी, मुनिर्द्वितीयोऽस्त्यपर· प्रवीण ।
इमौ मिलित्वा च समौ तथैतौ, मुनेर्गणेशस्य मुनी भवेताम् ॥

अन्वयः—मुनि जिनेन्द्र प्रथम अस्ति, अपर मुनि तपस्वी प्रवीणः अस्ति। तथा इमौ मिलित्वा एतौ समौ (अर्थात् द्वावेव) गणेशस्य मुने. मुनी भवेताम्।

अर्थ—मुनि जिनेन्द्रजी प्रथम हैं और दूसरे मुनि तपस्वी प्रवीणजी द्वितीय हैं। इस प्रकार ये मिलकर के समान ही होते हैं अर्थात द्विवचन होने से दो ही होते हैं। ये ही दोनो मुनि श्रीगणेशमुनिजी के शिष्य है।

(५८)

मुनिर्जिनेन्द्रोऽपि गुणैर्विशिष्टः, प्रभावपूर्णोऽपि विनीत एव ।
कृतश्रमोऽय जिनधर्मतत्त्वे, सुशोभते पण्डितमण्डलेऽपि ॥

अन्वय.—अय जिनेन्द्र मुनि अपि गुणैर्विशिष्ट अस्ति, अय विनीत अपि प्रभावपूर्ण. अस्ति । अय जिनधर्मतत्त्वे अपि कृतश्रम विद्यते । अत· अयं पण्डितमण्डले अपि सुशोभते ।

अर्थ—ये जिनेन्द्रमुनि भी वडे गुणी है । ये अधिक नम्र होते हुए भी अपना पर्याप्त प्रभाव रखते हैं । इन्होने जैनधर्म के तत्वज्ञान मे भी पूर्णश्रम किया है, अन्य विपय जैसे भाषा, साहित्य, व्याकरण, न्याय आदि तो पढे हैं । अतः विद्वज्जनों मे भी आप शोभा पाते है ।

(५९)

अतो मदीयं मुनिपौत्रवृन्दम्, शुभाशिषाऽहं परियोजयामि ।
भवन्तु सर्वे मुनयो धुरीणाः, विवोढुमेन जिनधर्मसंघम् ॥

अन्वय—अत. अह मदीय मुनिपौत्रवृन्द शुभाशिषा परियोजयामि । मम सर्वे मुनय एन जिनधर्मसघ वोढुं धुरीणा (समर्था) भवन्तु ।

अर्थ—अत अव मैं अपने मुनिपौत्र-वृन्द को हार्दिक-आशीर्वचन से परियोजित कर रहा हूँ कि मेरे ये सव मुनिजन इस श्रमणभगवान् महावीर जिनेश्वर के धर्मसघ के दायित्व को वहन करने के लिए समर्थ हो ।

(६०)

विमल कमलशोभं काव्यकर्मप्रवीणः ,
रचयति कविरेवं पुष्करोऽयं नवीनम् ।
अमरमुनिदिनेशो रञ्जयन् साधुपद्मम् ,
निखिलमुनिसरस्सु श्रीधरं द्योततेऽलम् ॥

अन्वय—काव्यकर्मप्रवीण कवि पुष्कर. मुनि अयम् नवीन विमल-कमलशोभ साधुपद्म रचयति, अमरमुनिदिनेश तत् इद श्रीधर साधुपद्म रञ्जयन् निखिलमुनि सरस्सु अल द्योतते ।

अर्थ—काव्य की रचना मे निपुण कविपुष्करमुनि ने नूतन विमल कमल हैं, शोभा जिसकी, ऐसे नये साधुरूप पद्म को अथवा श्रेष्ठ कमल को रचा, जिसको अमर-सिहमुनिरूप सूर्य अपने किरणसमूह से उस श्रीधर साधुपद्म को रञ्जित करता हुआ सम्पूर्णमुनिरूप तडागो मे पर्याप्त दीप्त हो रहा है ।

(६१)

केवल काव्यसौख्याय, सौविध्यायाथवा सताम् ।
ताराचन्द्रमुने शिष्य, पुष्करोऽह व्यवर्णयम् ॥

अन्वयः—अह ताराचन्द्र मुने शिष्य पुष्कर. केवल काव्यसौख्याय अथवा सता सौविध्याय व्यवर्णयम् ।

अर्थ—श्री ताराचन्द्र मुनि महाराज का शिष्य पुष्कर मुनि, यह जो गुरुदेव का वर्णन किया है, वह केवल काव्य आनन्द के लिए तथा सुज्जनो की सुविधा की दृष्टि से किया है। वास्तव मे उनका उदात्त चरित शब्दो द्वारा अवर्णनीय ही है।

इति श्रीमता राजस्थानकेसरिणा पण्डितरत्नेन
उपाध्यायपदालङ्कृतेन पुष्करमुनिना विरचिते
श्रीमदाचार्यामरसिह महाकाव्ये अन्तिम :
त्रयोदशः सर्ग

—शुभम्—

